एमएएचआई –602

मास्टर ऑफ आर्ट्स (हिस्ट्री)

तृतीय सेमेस्टर

भारत का इतिहास: चतुर्थ सदी ईस्वी से सातवीं सदी ईस्वी के मध्य तक

अध्ययन मण्डल

अध्यक्ष,

कुलपति,

उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय,हल्द्वानी

अध्ययन मण्डल के सदस्यों के नाम

1. प्रोफेसर गिरिजा प्रसाद पाण्डे, निदेशक समाज विज्ञान विद्याशाखा, उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी
2. प्रोफेसर रामेश्वर प्रसाद बहुगुणा, इतिहास विभाग एवं संस्कृति विभाग, जामिया मिल्लिआ इस्लामिय विश्वविद्यालय , दिल्ली
3. प्रोफेसर शन्तन सिंह नेगी , इतिहास एवं पुरातत्व विभाग, एच.एन.बी. गढ़वाल केन्द्रीय विश्वविद्यालय,गढ़वाल
4. प्रोफेसर वी.डी.एस. नेगी , इतिहास विभाग, कुमाऊँ विश्वविद्यालय, एस.एस.जे. परिसर, अल्मोड़ा
5. डॉ. मदन मोहन जोशी, समन्वयक इतिहास विभाग, उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी

पाठ्यक्रम समन्वयक: डॉ. मदन मोहन जोशी

इकाई लेखन-

ब्लॉक एक

इकाई एक- गुप्त वंश का उद्भव, प्रारम्भिक इतिहास एवं चन्द्रगुप्त प्रथम, डा.ज्योति साह,इतिहास विभाग ,दीनदयाल उपाध्याय राजकीय स्नात. महाविद्यालय, सीतापुर

इकाई दो - समुद्रगुप्त एवं उसकी उपलब्धियां, डा.ज्योति साह, इतिहास विभाग ,दीनदयाल उपाध्याय राजकीय स्नात. महाविद्यालय, सीतापुर

इकाई तीन- चन्द्रगुप्त द्वितीय एवं उसकी उपलब्धियां, डॉ. नूतन सिंह,,इतिहास विभाग, वाई.डी. कालेज, लखीमपुर, उत्तर प्रदेश

ब्लाक दो

इकाई एक - कुमार गुप्त प्रथम, स्कन्ध गुप्त उसकी उपलब्धियां , डॉ. संतोष कुमार,इतिहास विभाग, एम. बी. पी. जी. स्नात. महाविद्यालय,हल्द्वानी।

इकाई दो - गुप्त प्रशासनिक व्यवस्था, डॉ. संतोष कुमार,इतिहास विभाग,एम.बी.पी.जी.स्नात. महाविद्यालय,हल्द्वानी।

इकाई तीन - गुप्त साम्राज्य का पतन, डॉ. संतोष कुमार,इतिहास विभाग,एम.बी.पी.जी.स्नात. महाविद्यालय,हल्द्वानी।

ब्लॉक तीन

इकाई एक - वाकाटक एवं उनके गुप्त शासकों के साथ सम्बन्ध, , डॉ. आनन्द शर्मा, बालाजी विहार, लश्कर, ग्वालियर

इकाई दो - मौखरी राज्य, डॉ. आनन्द शर्मा, बालाजी विहार, लश्कर, ग्वालियर

इकाई तीन - हर्ष कालीन भारत, डॉ. आनन्द शर्मा, बालाजी विहार, लश्कर, ग्वालियर

आई.एस.बी.एन.	:
कॉपीराइट	: उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय
प्रकाशन वर्ष	:
Published by	: उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी, नैनीताल-263139
Printed at	:

सर्वाधिकार सुरक्षित। इस प्रकाशन का कोई भी अंश उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय की लिखित अनुमति लिए बिना मिमियोग्राफ अथवा किसी अन्य साधन से पुन: प्रस्तुत करने की अनुमति नहीं ह□

ब्लाक एक

इकाई एकः गुप्त वंश का उद्‌भव– प्रारम्भिक इतिहास एवं चन्द्रगुप्त प्रथम

1.1 प्रस्तावना

1.2 उद्‌देश्य

1.3 प्रमुख स्रोत

1.4 गुप्त वंश के उदय के समय उत्तर भारत

1.5 गुप्त वंश की उत्पत्ति

1.6 प्रारम्भिक शासक

1.6.1 श्री गुप्त– मूल स्थान एवं समय

1.6.2 घटोत्कच गुप्त

1.7 चन्द्रगुप्त प्रथम

1.7.1 राज्यारोहण–गुप्त संवत का प्रारम्भ

1.7.2 वैवाहिक सम्बन्ध

1.7.3 साम्राज्य विस्तार

1.8 मूल्यांकन

1.9 सारांश

1.10 स्वमूल्यांकित प्रश्न एवं उत्तर

1.11 संदर्भ ग्रंथ

1.12 सहायक उपयोगी पाठ्‌य पुस्तकें

1.13 निबन्धात्मक प्रश्न

1.1 प्रस्तावना

कुषाणों और सातवाहन के पश्चात लगभग तीसरी शताब्दी में भारत में तीन नए राजवंशों का उदय हुआ– मध्य भारत के पश्चिम में नाग वंश, मध्य भारत के पूर्व में गुप्त वंश और दक्कन में वाकाटक वंश। इन राज्यों ने साम्राज्यवादी प्रतिद्वन्दिता के स्थान पर आपसी सहयोग की राजनीति को महत्व दिया। शीघ्र ही गुप्तों के नेतृत्व में भारत को भौगोलिक एकता में बांधने का प्रयत्न किया गया। गुप्त वंश का साम्राज्य मौर्य साम्राज्य की तरह विशाल नहीं था, परन्तु हिन्दू धर्म से सम्बन्धित संस्थाओं के विकास एवं हिन्दू संस्कृति की दृढ़ता पूर्वक स्थापना तथा कला, शिल्प, साहित्य, व्यापार और आर्थिक क्षेत्र में नवीन प्रयोगों और प्रवृत्तियों के विकास के कारण भारतीय इतिहास में गुप्त युग का महत्वपूर्ण स्थान है। गुप्त वंश के समय उत्तर भारत की राजनैतिक एकता, सामाजिक सांस्कृतिक स्थिति तथा आर्थिक समृद्धि के कारण कई विद्वान इस युग को क्लासिक युग अथवा स्वर्ण युग कहते हैं।

1.2 उद्‌देश्य

इस इकाई में आप जान सकेंगे–

1. उन ऐतिहासिक साधनों को जिनसे गुप्त वंश के विषय में महत्वपूर्ण जानकारियां मिलती हैं।
2. गुप्त वंश के उदय के समय भारत की राजनैतिक परिस्थितियों को जान सकेंगे।
3. गुप्त वंश के प्रारम्भिक शासकों की पृष्ठभूमि और उनके राज्य के बारे में जान सकेंगे।
4. चन्द्रगुप्त प्रथम के साम्राज्य के विषय में जानते हुए समझ सकेंगे कि परवर्ती महान सम्राटों के लिए किस प्रकार अनुकूल परिस्थितियां स्थापित की गयीं।

1.3 प्रमुख स्रोत

गुप्त वंश के इतिहास को जानने के लिए साहित्यिक साधनों की प्रचुरता के साथ साथ पुरातात्विक साधन भी पर्याप्त उपलब्ध हैं।–

साहित्यिक साधन– गुप्त वंश का इतिहास जानने के लिए जो साहित्य उपलब्ध है, उसमें शासकों के राजनीतिक कार्यों की अपेक्षा सांस्कृतिक इतिहास पर अधिक जानकारी प्राप्त होती है।

गुप्त वंश के इतिहास की संरचना की दृष्टि से विष्णु पुराण, वायु पुराण तथा ब्रह्माण्ड पुराण निश्चित रूप से उपयोगी प्रमाणित हुए हैं।

बौद्ध महायान सम्प्रदाय का ग्रन्थ मंजुश्री मूलकल्प, जिनसेन सूरि रचित हरिवंश पुराण, यति वृषभ रचित तिलोय पण्णति, वज्जिका रचित कौमुदी महोत्सव, विशाखदत्त रचित देवी चन्द्रगुप्तम् एवं मुद्राराक्षस, प्रवरसेन रचित सेतुबन्ध, सुबन्धु रचित वासवदत्ता , परमार्थ रचित वसुबन्धु चरित, चक्रपाणिदत्त रचित आयुर्वेद दीपिका टीका, शूद्रक रचित मृच्छकटिकम्, सोमदेव कृत कथा सरित्सागर, कमन्दक रचित नीतिसार तथा कालिदास की रचनाएं– अभिज्ञान शाकुन्तलम्, मालविकाग्निमित्रम्, रघुवंश, मेघदूत, विक्रमोर्वशीय, ऋतु संहार आदि साहित्यिक और धार्मिक रचनाओं में गुप्त वंश के विषय में महत्वपूर्ण जानकारियां मिलतीं हैं।

चीनी यात्रियों फाहयान, हवेन सांग एवं ईत्सिंग आदि के संस्मरण आदि गुप्तों के इतिहास तथा उनकी राज्य सीमा, समाज और संस्कृति के विविध पक्षों पर महत्वपूर्ण प्रकाश डालतें हैं।

पुरातात्विक साधन– गुप्त काल में लगभग बयालिस अभिलेख प्राप्त हुए हैं। इनमें से सत्ताईस पत्थरों, चटटानों, स्तम्भों या मूर्ति आसनों पर अंकित हैं। इनमें बाईस निजी दान पत्र, चार प्रशस्तियाँ तथा एक राज शासन हैं। अन्य पन्द्रह अभिलेखों में एक लौह स्तम्भ तथा शेष ताम्रपत्र हैं। यह अभिलेख संस्कृत भाषा में हैं।

इनमें प्रमुख सरकारी अभिलेख हैं– हरिषेण रचित प्रयाग प्रशस्ति, एरण प्रशस्ति, चन्द्रगुप्त द्वितीय कालीन मथुरा स्तम्भ लेख, उदयगिरि के गुहा लेख, महरौली प्रशस्ति, कुमारगुप्त कालीन मन्दसौर शिलालेख, गढ़वा के शिलालेख तथा स्कन्दगुप्त कालीन जूनागढ़ प्रशस्ति तथा भितरी प्रशस्ति।

समसमायिक वंशों के अभिलेख – वाकाटक वंश और कदम्ब वंश के अभिलेख तथा मिहिरकुल और यशोधर्मन के अभिलेख भी महत्वपूर्ण जानकारी देते हैं।

गुप्तकाल की दृष्टि से भितरी से प्राप्त धातु मुहर तथा बसाढ़ और नालन्दा से प्राप्त मिट्टी की मुहरें विशेष महत्व रखती हैं। इनके अतिरिक्त गुप्त काल में बहुत मात्रा में सोना, चांदी और तांबे के सिक्के मिले हैं। सर्वाधिक मात्रा में सोने के सिक्के प्राप्त हुए हैं, जो चन्द्रगुप्त प्रथम से लेकर विष्णुगुप्त तक लगभग सभी गुप्त शासकों के हैं। इन सिक्कों की सहायता से गुप्त शासकों की शक्ति, समृद्धि, व्यक्तित्व आदि का ज्ञान होता है। गुप्तकालीन मन्दिर, स्मारक, मूर्तियाँ, गुफाएँ आदि से भी विभिन्न जानकारियाँ प्राप्त होती हैं।

1.4 गुप्त वंश के उदय के समय उत्तर भारत

उत्तरी भारत में मौर्यों के पश्चात किसी एक राजवंश का साम्राज्य नहीं रहा। उत्तर भारत कई स्वतन्त्र राज्यों में विभक्त हो गया था, जिनमें राजतंत्रात्मक तथा गणतंत्रात्मक दोनों प्रकार के राज्य विद्यमान थे। उत्तरी पश्चिमी सीमा से बाह्य शक्तियां निरन्तर भारत में प्रवेश कर रहीं थीं। पश्चिमी और उत्तर भारत के कई क्षेत्रों में मालव, यौधेय और अजुर्नायन आदि गणतंत्रात्मक राज्य शक कुषाण आदि का सामना कर रहे थे । मगध में कुछ समय तक शुंग और कण्वों ने राज्य किया। तत्पश्चात उत्तरी भारत के बहुत बड़े क्षेत्र पर कुषाण वंश का अधिकार हो गया। विशाल क्षेत्र के बावजूद कुषाण साम्राज्य 100 वर्ष से अधिक नहीं रह सका। दक्कन में सातवाहन और उत्तर भारत में कुषाण वंश समाप्ति पर थे। राजनैतिक अस्थिरता के इस युग मे दक्कन में वाकाटकों ने सातवाहन का और पश्चिम में नागों तथा पूर्व में गुप्तों ने कुषाणों का स्थान ले लिया। पूर्वी उत्तर प्रदेश के एक छोटे से क्षेत्र से उदय होकर गुप्त वंश शीघ्र ही एक महान शक्ति बन गया।

1.5 गुप्त वंश की उत्पत्ति

'गुप्त कौन थे' इस सम्बन्ध में इतिहासकारों के अनेक मत हैं। काशी प्रसाद जायसवाल के अनुसार गुप्त सम्राट जाट और मूलरूपेण पंजाब के निवासी थे। दशरथ शर्मा ने भी धारण गोत्र के कारण गुप्तों को जाट माना है क्योंकि धारण गोत्र जाटों में प्रचलित है। गौरी शंकर ओझा एवं डा0 पांथरी ने गुप्तों को क्षत्रिय बताया है। उनके अनुसार गुप्तों के वैवाहिक सम्बन्ध लिच्छवी और वाकाटकों के साथ थे, जो क्षत्रिय वंश के थे। बाद के अभिलेखों में गुप्तों को चन्द्रवंशी क्षत्रिय कहा गया है। हेमचन्द्र रायचौधरी ने गुप्तों को ब्राह्मण और शुंग वंश की महारानी धारिणी के वंश का माना है। अल्तेकर, एलन, आयंगर, रामशरण शर्मा, सत्यकेतु विद्यालंकर आदि विद्वानों के अनुसार गुप्त वैश्य थे, क्योंकि स्मृतियों के अनुसार नाम के उत्तरांश में गुप्त शब्द जोड़ा जाना वैश्यों की विशेषता है तथा वैश्यों में अग्रवाल धारण गोत्र के हैं, जो गुप्तों का भी गोत्र था।

परमेश्वरी लाल गुप्त का मानना है कि जिस युग में गुप्तवंशी शासक हुए उस युग में वर्ण और जाति की अपेक्षा कर्म और गुण का महत्व अधिक था। गुप्त शासक किसी प्राचीन राजवंश या कुल से सम्बन्धित हों या न हों अथवा उनकी सामाजिक स्थिति कैसी भी रही हो वह सफल शासक सिद्ध हुए।

1.6 प्रारम्भिक शासक

गुप्त शासकों के अभिलेख में वंशावली उपलब्ध हैं, उनके अनुसार गुप्त वंश की स्थापना श्री गुप्त ने की थी। अभिलेखों में गुप्त वंश के प्रारम्भिक शासक गुप्त तथा उसके पुत्र घटोत्कच को 'महाराजा श्री' उपाधि से सम्मानित किया गया है, जबकि तीसरे सम्राट चन्द्रगुप्त के लिए 'महाराजाधिराज' शब्द का प्रयोग किया गया है। महाराजा उपाधि परवर्ती गुप्त शासकों के अभिलेखों में छोटे सामन्तों के लिए प्रयुक्त हुयी है। अतः अधिकांश विद्वान मानते हैं कि प्रारम्भिक गुप्त शासक सामन्त अथवा छोटे जमींदार थे। रामशरण शर्मा ने इन्हें कुषाणों का सामन्त बताया है। परन्तु गुप्तों के उदय के समय महाराज शब्द का प्रयोग कौशाम्बी के मघों, भारशिवों तथा वाकाटकों में स्वतंत्र शासकों द्वारा किया जा रहा था। सम्भवतः प्रारम्भिक गुप्त शासक स्वतंत्र शासक रहे हों, परन्तु उनका राज्य बहुत बड़ा नहीं था। रोमिला थापर का मानना है कि यह धनी भूस्वामियों का परिवार था, जिसने धीरे–धीरे राजनीतिक सत्ता प्राप्त कर ली थी।

1.6.1 श्री गुप्त– मूल स्थान एवं समय

गुप्त अभिलेखों में श्री गुप्त के शासन काल अथवा राज्य का कोई उल्लेख नहीं मिलता। चीनी यात्री ईत्सिंग ने श्री गुप्त नामक एक शासक का उल्लेख किया है, जिसने चीनी यात्रियों के लिए एक मन्दिर का निर्माण मृगशिखावन में कराया था और उसके खर्च के लिए चौबीस गाँव दान किए थे। इसे कुछ विद्वान गुप्त वंश का संस्थापक मानते हैं।

गुप्तों के मूल स्थान के विषय में विद्वानों में मतभेद हैं। मृगशिखावन के आसपास का क्षेत्र गुप्तों का मूल स्थान रहा होगा, लेकिन यह कौन सा क्षेत्र है, इसके सम्बन्ध में अनेक मत हैं। दिनेशचन्द्र गांगुली और रमेश चन्द्र मजुमदार आदि इसे बंगाल के मुर्शिदाबाद जिले में मानते हैं। परमेश्वरी लाल गुप्त का मानना है कि मृगशिखावन मृगदाव (आधुनिक सारनाथ) था तथा वाराणसी के समीप का क्षेत्र श्री गुप्त का मूल स्थान रहा होगा। वायु पुराण तथा विष्णु पुराण में गुप्तों का राज्य प्रयाग से मगध तक बताया गया है। गुप्तों ने वाराणसी के आस पास के क्षेत्र से पश्चिम की ओर प्रयाग तथा साकेत और पूर्व की ओर मगध तक राज्य का विस्तार किया होगा।

गुप्त वंश के संस्थापक श्री गुप्त के समय पर भी अनेक विचार प्रचलित हैं। इतिहासकार राधाकुमुद मुखर्जी श्री गुप्त का समय 240 से 280 ई0 के मध्य मानते हैं। परन्तु विन्सेन्ट स्मिथ ने 319 को चन्द्रगुप्त प्रथम का प्रारम्भिक वर्ष मानते हुए श्री गुप्त का समय 277 से 300 ई0 के मध्य माना है, जिसे अधिकांश विद्वानों ने स्वीकार किया है।

1.6.2 घटोत्कच गुप्त

महाराज श्री गुप्त के पश्चात उसका पुत्र महाराज श्री घटोत्कच का नाम वंशावली में मिलता है। स्कन्दगुप्त के समय के सुपिया अभिलेख में घटोत्कच को ही गुप्त वंश का आदिराज कहागया है। वाकाटकों के अभिलेखों में भी गुप्त वंश की वंशावली घटोत्कच से ही प्रारम्भ की गयी है।

विद्वानों के अनुसार घटोत्कच ने लगभग 300 ई0 से 319 ई0 तक शासन किया होगा। गुप्त अभिलेखों में इसके विषय में अधिक जानकारी नहीं मिलती है।

1.7 चन्द्रगुप्त प्रथम

चन्द्रगुप्त प्रथम इतिहासकारों के अनुसार गुप्त वंश का प्रथम स्वतंत्र शासक था। गुप्त वंश को एक साम्राज्य के रूप में स्थापित करने का कार्य उसने ही किया। अभिलेखों में चन्द्रगुप्त प्रथम के लिए महाराजाधिराज पदवी का प्रयोग हुआ है। पूर्ववर्ती दोनों शासकों की अपेक्षा उसकी पदवी बड़ी है और उसके बड़े राज्य का शासक होने का प्रतीक लगती है। उसके सोने के सिक्के भी प्राप्त हुए हैं। इस आधार पर अधिकांश विद्वान उसे गुप्त वंश का वास्तविक संस्थापक मानते हैं।

1.7.1 राज्यारोहण – गुप्त संवत का प्रारम्भ

चन्द्रगुप्त प्रथम के राज्यारोहण और गुप्त अभिलेखों में उल्लिखित संवत के विषय में भी विद्वानों में मतभेद हैं। फ्लीट का मानना है कि लिच्छिवियों के संवत को ही गुप्तों ने अपना लिया था। परन्तु अधिकांश इतिहासकार इस संवत को गुप्तों का ही मानते हैं। विन्सेन्ट स्मिथ इसका आरम्भ चन्द्रगुप्त प्रथम के राज्यारोहण से मानते हैं। अधिकांश इतिहासकार बाद की दो जनश्रुतियों जिनका उल्लेख जिनसेन के हरिवंशपुराण तथा अल्बरूनी के वर्णन में मिलता है, के आधार पर गुप्त संवत का आरम्भ 319 ई0 से और गुप्त वर्ष 1 का आरम्भ 320 ई0 से मानते हैं। अधिकांश इतिहासकारों के अनुसार इस संवत को चन्द्रगुप्त प्रथम ने अपने राज्यारोहण की स्मृति में जारी किया था।

1.7.2 वैवाहिक सम्बन्ध

गुप्त अभिलेखों में वंश सूचियों में चन्द्रगुप्त प्रथम की पत्नी कुमारदेवी का नाम लिखा मिलता है। कुमारदेवी लिच्छिवी वंश की राजकुमारी थी। चन्द्रगुप्त प्रथम के चलाये सोने के सिक्कों में भी एक तरफ चन्द्रगुप्त के साथ उसकी रानी कुमारदेवी का चित्र और नाम अंकित है और दूसरी ओर सिंह पर सवार देवी का चित्र तथा लिच्छिवी नाम लिखा है। गुप्त वंशावलियों में समुद्रगुप्त को भी गर्व से 'लिच्छिवियों की पुत्री का पुत्र' कहा गया है, जबकि अन्य किसी शासक की माता के वंश का उल्लेख नहीं मिलता।

इस आधार पर अधिकांश इतिहासकार मानते हैं कि चन्द्रगुप्त प्रथम और कुमारदेवी के विवाह का गुप्तों के उत्थान में विशेष महत्व रहा होगा। के0पी0जायसवाल का मानना है कि गुप्तों ने लिच्छिवियों की सहायता से किसी क्षत्रिय राजा को पराजित कर मगध प्राप्त किया था। एलन के अनुसार लिच्छिवियों का वंश प्राचीन क्षत्रिय वंश था, जिसके सामाजिक और राजनैतिक रूप से सम्मानित होने के कारण गुप्तों को उनसे वैवाहिक सम्बन्ध होने पर गर्व हुआ होगा। इसी कारण वह बार–बार इस वैवाहिक सम्बन्ध का उल्लेख करते हैं। विन्सेण्ट स्मिथ के अनुसार चन्द्रगुप्त प्रथम की पत्नी के सम्बन्धियों का राज्य मगध और आस–पास के क्षेत्र पर था और इस विवाह के कारण चन्द्रगुप्त प्रथम राजसत्ता का उत्तराधिकारी बना। परमेश्वरी लाल गुप्त के अनुसार लिच्छिवी नरेश पुत्रहीन मरे होंगे और पुत्र के अभाव में पुत्री तथा उसके पति को उनका राज्य प्राप्त हुआ होगा। स्मृतियों में कहा गया है कि पुत्र न होने पर पुत्री के पुत्र को उत्तराधिकारी स्वीकार किया जा सकता है। इस आधार पर लिच्छिवी के वैध उत्तराधिकारी समुद्रगुप्त के वयस्क होने तक चन्द्रगुप्त प्रथम ने अपनी रानी कुमारदेवी के साथ संयुक्त रूप से राज्य किया और समुद्रगुप्त के वयस्क होने पर उसे राज्य सौंप कर सन्यास लिया होगा।

चन्द्रगुप्त प्रथम और कुमारदेवी के इस वैवाहिक सम्बन्ध से पूर्वी भारत के दो राज्यों का एकीकरण हुआ और चन्द्रगुप्त प्रथम को एक बड़ा साम्राज्य प्राप्त हुआ।

1.7.3 साम्राज्य विस्तार एवं समय

चन्द्रगुप्त प्रथम का कोई स्वयं का जारी अभिलेख प्राप्त नहीं हुआ है, जिससे उसके राज्य विस्तार का पता चल सके। उसके उत्तराधिकारियों और पुराणों के आधार पर उसका साम्राज्य विस्तार आधुनिक बिहार,बंगाल के कुछ इलाके और पूर्वी उत्तर प्रदेश के अधिकांश भागों में माना जाता है।

पुराणों में मगध, साकेत और प्रयाग को गुप्तों का क्षेत्र बताया गया है। परमेश्वरी लाल गुप्त के अनुसार उसके पुत्र समुद्रगुप्त के द्वारा विजित क्षेत्रों पर चन्द्रगुप्त प्रथम का राज्य उत्तर में वाराणसी के आगे गंगा के उत्तर में नहीं होगा, लेकिन उसके राज्य में मध्यप्रदेश के बिलासपुर, रायपुर ,सम्भलपुर और गंजाम जिले के कुछ हिस्से सम्मिलित होंगे। पश्चिम में विदिशा की सीमा तक तथा पूर्व की ओर पूरा बिहार और बंगाल का कुछ क्षेत्र चन्द्रगुप्त प्रथम के राज्य में शामिल थे।

उसने 319 ई0 से लेकर लगभग 335 ई0 तक राज्य किया। एलन, फ्लीट एवं स्मिथ मानते हैं कि चन्द्रगुप्त प्रथम की मृत्यु 335 ई0 में हुयी। रमेश चन्द्र मजूमदार और परमेश्वरी लाल गुप्त के अनुसार 338 ई0 से 345 ई0 के मध्य चन्द्रगुप्त प्रथम ने अपने पुत्र के पक्ष में राज्य त्याग दिया। उसके पश्चात वह कितने समय जीवित रहा, इसका कोई प्रमाण नहीं है।

1.8 मूल्यांकन

श्री गुप्त और घटोत्कच के द्वारा स्थापित गुप्त वंश को चन्द्रगुप्त प्रथम ने अपने वैवाहिक सम्बन्ध के द्वारा विस्तार प्रदान किया। अपने पितामह और पिता की तरह महाराज की जगह उसने महाराजाधिराज उपाधि धारण की। अपने राज्यारोहण के समय एक नया संवत चलाया। गुप्त वंश के प्रारम्भिक सिक्के भी चन्द्रगुप्त प्रथम द्वारा ही चलाये गए। इस प्रकार गुप्त वंश को एक मजबूत नींव प्रदान करने का कार्य प्रारम्भिक गुप्त शासकों ने किया।

1.9 सारांश

तीसरी सदी में भारत अनेक छोटे राज्यों में बँटा था, जिनमें से पूर्वी भारत में गुप्त वंश का उदय हुआ। गुप्त वंश का इतिहास उसके अभिलेखों , सिक्कों और तत्कालीन साहित्य विशेष रूप से पुराणों से ज्ञात होता है। गुप्त वंश के संस्थापक श्री गुप्त और उसके पुत्र घटोत्कच महाराज की उपाधि धारण करने वाले छोटे राजा या भू स्वामी थे। इनका मूल निवास वाराणसी के आस पास का क्षेत्र था। घटोत्कच के पुत्र चन्द्रगुप्त प्रथम ने प्राचीनकाल से विख्यात लिच्छिवी वंश की राजकुमारी कुमार देवी से विवाह किया तथा गुप्त वंश की प्रतिष्ठा को बढ़ाया। दो राजवंशों के मिलने से गुप्तों के अधीन बिहार, बंगाल और उत्तर प्रदेश का बहुत बड़ा क्षेत्र आ गया। अभिलेखों में चन्द्रगुप्त प्रथम के लिए महाराजाधिकार उपाधि का प्रयोग, उसके द्वारा नये संवत का प्रवर्तन तथा सोने के सिक्के चलाना इस बात का द्योतक है कि उसने गुप्त वंश को एक प्रतिष्ठित राजवंश के रूप में स्थापित कर दिया था। इसी कारण उसे गुप्त वंश का वास्तविक संस्थापक भी माना जाता है। प्रारम्भिक गुप्त शासकों ने परवर्ती गुप्तों के लिए एक सशक्त राज्य की आधारशिला रखी।

1.10. स्वमूल्यांकित प्रश्न एवं उत्तर

1. तीसरी शताब्दी ई0 में उत्तर भारत में किन तीन शक्तियों का उदय हुआ?
2. गुप्त वंश के इतिहास की जानकारी देने वाले प्रमुख पुराण कौन से हैं।
3. गुप्तों के मूल स्थान के विषय में क्या मत प्रचलित हैं।
4. रिक्त स्थान भरो।–

क. गुप्त अभिलेखों में .....को गुप्त वंश का संस्थापक बताया गया है।

ख. सुपिया अभिलेख में ..... को गुप्त वंश का आदिराज कहा गया है।

ग. कुमारदेवी .....वंश की थी।

घ. गुप्त संवत का प्रारम्भ.....से हुआ।

उत्तर–

1. नाग, वाकाटक एवं गुप्त वंश
2. वायु और विष्णु पुराण
3. 1.6.1 का द्वितीय पैराग्राफ देखें
4. क. श्रीगुप्त

ख. घटोत्कच

ग. लिच्छवी वंश

घ. 319 ई0

1.11 सन्दर्भ ग्रन्थ

1. रायचौधरी, हेमचन्द्र–पॉलिटिकल हिस्ट्री ऑफ एन्शियेंट इंडिया, नई दिल्ली,1996
2. स्मिथ, विन्सेंट–अर्ली हिस्ट्री ऑफ इंडिया, आक्सफोर्ड, 1924
3. गुप्त, परमेश्वरी लाल–गुप्त साम्राज्य, वाराणसी, 2011
4. मजूमदार, रमेशचन्द्र एवं अल्तेकर, ए.एस.– सम्पादित द वाकाटक–गुप्त एज़, दिल्ली, 1946
5. बनर्जी, राखाल दास– द एज़ ऑफ इम्पीरियल गुप्ताज़,वाराणसी, 1933

1.12 सहायक उपयोगी पाठ्य पुस्तकें

1. मजूमदार, रमेश चन्द्र–श्रेण्य युग, नई दिल्ली,1984
2. उपाध्याय, वासुदेव– गुप्त साम्राज्य का इतिहास, 1957
3. थापर, रोमिला– भारत का इतिहास, नई दिल्ली,1975
4. शर्मा, रामशरण–प्रारम्भिक भारत का परिचय, नई दिल्ली, 2009
5. झा, द्विजेन्द्र नाथ एवं श्रीमाली,के.एम.– प्राचीन भारत का इतिहास, दिल्ली,1994

1.13 निबन्धात्मक प्रश्न

1. गुप्त वंश के उदय के समय उत्तर भारत की राजनैतिक स्थिति पर प्रकाश डालिए।
2. गुप्त कौन थे? उनके प्रारम्भिक इतिहास पर विस्तार से लिखिए।
3. चन्द्रगुप्त प्रथम के समय की प्रमुख घटनाओं पर टिप्पणी लिखिए।
4. चन्द्रगुप्त प्रथम गुप्त वंश का वास्तविक संस्थापक था, विश्लेषण कीजिए।

लॉक एक

इकाई दोः समुद्र गुप्त और उसकी उपलब्धियां

2.1 प्रस्तावना

2.2 उद्देश्य

2.3 प्रयाग प्रशस्ति एवं समुद्रगुप्त के सिक्के

2.4 परिवार और राज्यारोहण

2.5 साम्राज्य विस्तार

2.5.1 आर्यावत का प्रथम अभियान

2.5.2 दक्षिणापथ अभियान

2.5.3 आर्यावत का द्वितीय अभियान

2.5.4 आटविक राज्य

2.5.5 सीमान्त प्रदेश

2.5.6 विजित प्रदेशों के प्रति नीति

2.5.7 विदेशी राज्यों से सम्बन्ध

2.6 मूल्यांकन

2.7 सारांश

2.8 स्वमूल्यांकित प्रश्न एवं उत्तर

2.9 सन्दर्भ ग्रन्थ

2.10 सहायक उपयोगी पाठ्य पुस्तकें

2.11 निबन्धात्मक प्रश्न

2.1 2.1 प्रस्तावना

चन्द्रगुप्त प्रथम ने अपने और कुमारदेवी के पुत्र समुद्रगुप्त को अपना उत्तराधिकारी नियुक्त किया था, तथापि शासन प्राप्ति के लिए समुद्रगुप्त को अपने सम्बन्धियों से संघर्ष करना पड़ा। वह गुप्त वंश का शक्तिशाली और साम्राज्यवादी शासक सिद्ध हुआ, जिसने अपनी विजयों से न केवल एक विशाल साम्राज्य का निर्माण किया, वरन् गुप्त साम्राज्य को अपनी नीतियों से दृढ़ता भी प्रदान की।

2.2 2.2 उद्देश्य

इस इकाई के माध्यम से हम जान सकेंगे । –

- गुप्त वंश के साम्राज्यवादी शासक समुद्रगुप्त के राज्यारोहण तथा तत्सम्बन्धी विभिन्न धारणाओं को जान सकेंगे।
- प्रयागप्रशस्ति तथा उसके द्वारा जारी किए गए सिक्कों के विषय में जान सकेंगे, जिसमें समुद्रगुप्त के विषय में विस्तार से महत्वपूर्ण जानकारी मिलती है।

- उसके विजय अभियानों तथा विभिन्न राज्यों के सम्बन्ध में उसकी नीतियों को जान सकेंगे।
- समुद्रगुप्त के व्यक्तित्व तथा चरित्र का विश्लेषण कर प्राचीन भारतीय शासकों में उसके स्थान का मूल्यांकन कर सकेंगे

2.3 प्रयाग प्रशस्ति एवं समुद्रगुप्त के सिक्के

गुप्त काल के सबसे पहले अभिलेख समुद्रगुप्त के समय के प्राप्त हुए हैं। दो प्रशस्तियाँ – प्रयाग और एरण तथा दो ताम्रपत्र– वर्ष चार का नालन्दा ताम्रपत्र और वर्ष नौ का गया ताम्रपत्र। इनमें स्तम्भ लेख प्रयाग प्रशस्ति सबसे महत्वपूर्ण है।

प्रयाग प्रशस्ति 35 फुट ऊँचे पत्थर के एक गोल स्तम्भ पर अंकित है। यह एक चम्पू काव्य है, जिसकी रचना समुद्रगुप्त के सान्धिविग्रहक, कुमारामात्य, दण्डनायक हरिषेण ने की थी। हरिषेण महादण्डनायक ध्रुवभूति का पुत्र था।

यह प्रशस्ति प्रयाग में गंगा यमुना के संगम तट पर स्थित दुर्ग में है। किन्तु चीनी यात्री युवांग च्वांग के प्रयाग वर्णन में इस स्तम्भ का उल्लेख न होने के कारण विद्वान मानते हैं कि यह स्तम्भ पहले कौशाम्बी में था, जहां अशोक के लेख के नीचे यह प्रशस्ति लिखी गयी। इस अभिलेख को सर्वप्रथम 1834 ई0 में ए ट्रायर ने प्रकाशित किया। फ्लीट द्वारा इसका सम्पादन किया गया।

इसमें समुद्रगुप्त के गुणों और सैनिक सफलताओं का वर्णन है। प्रशस्ति के प्रथम छ श्लोंको में समुद्रगुप्त की शिक्षा ,उत्तरदायित्व तथा राजपद ग्रहण करने के सम्बन्ध में उल्लेख है। प्रथम दो श्लोक स्पष्ट नहीं दिखते। तीसरे में उसकी विद्वता का वर्णन है। चौथे और पांचवे श्लोक में शासक बनाने एवं भाईयों के विद्रोह का वर्णन है। सातवें श्लोक से समुद्रगुप्त की सामरिक सफलताओं का वर्णन है। अठाईसवें एवं उन्तीसवें श्लोक में समुद्रगुप्त के वंश, माता पिता आदि का उल्लेख है। अन्तिम पंक्तियों में हरिषेण ने अपना परिचय दिया है। कुछ पंक्तियों में समुद्रगुप्त की चारित्रिक विशेषताओं का भी वर्णन है।

समुद्रगुप्त की एरण प्रशस्ति के विषय में विद्वानों द्वारा माना गया कि वह उसके नाग राजाओं पर विजय के पश्चात अंकित की गयी थी। अन्य दानों ताम्रपत्रों की मौलिकता को लेकर विद्वानों में मतभेद हैं।

समुद्रगुप्त के सोने के सिक्के 7.65–7.77 (118–120 ग्रेन) के हैं। इनमें दण्डधारी, अश्वमेध, व्याघ्र निहन्ता, धनुर्धर, वीणवादक आदि सिक्के प्रमुख हैं। इन पर दूसरी ओर देवी के विभिन्न रूप जैसे सिंहासनासीन देवी, मंचासीन देवी, चामरधारिणी देवी, जल में मकर के साथ देवी आदि का अंकन है। सिक्कों पर बाँयी ओर समुद्र अथवा समुद्रगुप्त लिखा है। साथ ही अश्वमेध पराक्रमः, व्याघ्र पराक्रमः, अप्रतिरथः, कृतान्तपरशु आदि लेख भी अंकित हैं।

इन प्रशस्तियों और सिक्कों से ही समुद्रगुप्त के विषय में प्रामाणिक जानकारी प्राप्त होती है। यद्यपि उसके दरबारी कवि द्वारा लिखी होने के कारण प्रशस्ति और उसके स्वयं के चलाये सिक्कों में कुछ अतिश्योक्तिपूर्ण वर्णन हो सकता है, किन्तु इनके महत्व को पूर्ण रूप से नकारा भी नहीं जा सकता।

2.4 परिवार और राज्यारोहण

समुद्रगुप्त चन्द्रगुप्त प्रथम और कुमारदेवी का पुत्र था । उसकी माता कुमारदेवी प्रतिष्ठित लिच्छवी वंश की थी। उसका विवाह दत्तदेवी के साथ हुआ था जो सम्भवतः कदम्ब वंश के शासक कुकुत्स्थवर्मन की पुत्री थी। परमेश्वरी लाल गुप्त का मानना है कि उसका विवाह दत्तदेवी से दक्षिण भारत के अभियान के समय हुआ होगा। एरण अभिलेख में कहा गया है कि समुद्रगुप्त के अनेक पुत्र और पौत्र थे, जिनमें रामगुप्त और चन्द्रगुप्त द्वितीय का उल्लेख ही अभिलेखों और साहित्यिक कृतियों में मिलता है।
प्रयाग प्रशस्ति में चन्द्रगुप्त प्रथम द्वारा समुंद्रगुप्त को भरी सभा में राज्य प्रदान करने का वर्णन किया गया है। परमेश्वरी लाल गुप्त के अनुसार 338 और 345 ई0 के मध्य चन्द्रगुप्त प्रथम ने समुद्रगुप्त को राज्य सौंपा होगा। रमेश चन्द्र मजूमदार के अनुसार समुद्रगुप्त के राज्यारोहण की तारीख 340 से 350 ई0 के मध्य मानी जा सकती है। हेरास तथा रैप्सन आदि इतिहासकारों का मानना है कि यद्यपि चन्द्रगुप्त प्रथम ने समुद्रगुप्त को अपना उत्तराधिकारी नियुक्त किया था, किन्तु उसको सिंहासन प्राप्ति के लिए भाईयों से युद्व लड़ना पड़ा था। समुद्रगुप्त के सिक्कों से मिलते सोने के कुछ सिक्कों पर 'काच' नाम अंकित है। कुछ विद्वानों के अनुसार काच समुद्रगुप्त का भाई था, जिसके साथ उसे राजसत्ता पाने के लिए संघर्ष करना पड़ा।

2.5 साम्राज्य विस्तार–

समुद्रगुप्त गुप्त वंश का एक महान सेनानायक, कुशल राजनीतिज्ञ तथा अजेय योद्धा समझा जाता है। अपनी विजयों के द्वारा उसने एक विशाल साम्राज्य का निर्माण किया। प्रयाग प्रशस्ति में उसे 'धरणि–बन्ध' कहा गया है, जिसका अर्थ भारत का एकराट् सम्राट बनने से था। सिंहासन पर बैठते ही उसने दिग्विजय की योजना बनाई। वह विविध प्रकार की युद्धकलाओं का ज्ञाता था एवं उसने सैकड़ों युद्धों में भाग लिया था (**विविधसमरशतावतरणदक्षस्य**)। जैसा आपको पहले बताया जा चुका है , उसकी विजयों का विस्तृत वर्णन प्रयाग प्रशस्ति में मिलता है।

2.5.1 2.5.1 आर्यावर्त का प्रथम अभियान

प्रयाग प्रशस्ति की तेरहवीं तथा चौदहवीं पंक्ति के अनुसार समुद्रगुप्त ने अच्युत, नागसेन, ग तथा कोतकुलज को पराजित किया था। अच्युत को अहिच्छत्र (बरेली) का नागवंशी शासक, नागसेन को पद्मावती (ग्वालियर) का शासक , ग (गणपतिनाग) को विदिशा आथवा मथुरा का शासक, कोतकुलज को पुष्यपुर (कन्नौज) का शासक माना जाता है। यह सभी नाग वंश के शासक थे। इन राजाओं पर विजय को आर्यावर्त का प्रथम अभियान कहा जाता है।
काशी प्रसाद जायसवाल के अनुसार इन राजाओं के संघ ने समुद्रगुप्त पर आक्रमण किया था और यह युद्ध कौशाम्बी में हुआ था।

2.5.2 दक्षिणापथ अभियान

प्रयाग प्रशस्ति की उन्नीसवीं और बीसवीं पंक्ति में समुद्रगुप्त के दक्षिण राज्यों पर अभियान का वर्णन है, इसके अनुसार उसने महाकान्तार का व्याघ्रराज,कोराल का मण्टराज, पिष्टपुर का महेन्द्रगिरि, कोट्टूर का स्वामिदत्त, एरण्डपल्ल का दमन, कांची का विष्णुगोप, अवमुक्त का नीलराज, वेंगी का हस्तिवर्मा, पालक का उग्रसेन, देवराष्ट्र का कुबेर तथा कुस्थलपुर का धनन्जय को पराजित किया था।

यह राज्य उसके राज्य के दक्षिण में आधुनिक मध्यप्रदेश के एरण (सागर) एवं डभाल (जबलपुर) से लेकर कांची तक स्थित थे। इन राजाओं को पराजित करने के बाद समुद्रगुप्त ने उन्हें कृपापूर्वक छोड़ दिया था। उसकी इस नीति को प्रयाग प्रशस्ति की बीसवीं पंक्ति में दया दिखाते हुए मुक्त कर देना (मोक्षानुग्रह) कहा है। फ्लीट के अनुसार समुद्रगुप्त दक्षिण से लौटते समय पश्चिमी तटवर्ती राजाओं को विजित करते हुए राजधानी पहुँचा होगा। इसके विपरित इतिहासकार द्रुबिया का मानना है कि समुद्रगुप्त के दक्षिणापथ अभियान के समस्त विजित प्रदेश पूर्वी तट पर थे और वह उसी मार्ग से वापिस आया। पश्चिमी घाट पर वाकाटक राज्य कर रहे थे, जिनसे संघर्ष से बचने के लिए समुद्रगुप्त पूर्वी घाट से ही वापस आ गया था।

2.5.3 आर्यावर्त का द्वितीय अभियान

दक्षिणापथ विजय के बाद हरिषेण पुनः आर्यावर्त के नौ राजाओं का उल्लेख करता है, जिन्हें समुद्रगुप्त ने पराजित किया था। यह नौ राजा थे–

रूद्रदेव, मतिल, नन्दि नागदत्त, चन्द्रवर्मा, गणपतिनाग, नागसेन, अच्युत, बलवर्मा।

इनमें से गणपतिनाग, नागसेन एवं अच्युत के नाम का प्रथम आर्यावर्त युद्ध में भी उल्लेख है। शेष नाम नए हैं और उनके विषय में पर्याप्त जानकारी का अभाव है। इतिहासकार रैप्सन के अनुसार ये पुराणों में उल्लिखित नव नाग हैं। समुद्रगुप्त के द्वारा प्रयोग किए जाने वाले गरूड़ चिह्न से भी सिद्ध होता है कि उसने इन नाग राजाओं को पराजित किया होगा।

प्रयाग प्रशस्ति के अनुसार समुद्रगुप्त ने आर्यावर्त में इन राजाओं के अतिरिक्त कुछ अन्य राजाओं को भी पराजित किया था (अनेकार्यावर्त–राज–प्रसभोद्धारण)।

2.5.4 2.5.4 आटविक राज्य

प्रयाग प्रशस्ति में समुद्रगुप्त द्वारा वन प्रदेश पर विजय का उल्लेख है, उसने वन प्रदेश के समस्त राजाओं को अपना दास बनाया (परिचायकीकृतसर्वाटविकराज्यस्य)। इतिहासकार फ्लीट के अनुसार यह वन प्रदेश गाजीपुर से जबलपुर तक विस्तृत था। कुछ विद्वान मानते हैं कि आर्यावत के प्रथम युद्ध के पश्चात जब समुद्रगुप्त दक्षिणापथ की विजय के लिए जा रहा था, तो उसने मार्ग में पड़ने वाले वन प्रदेशों के राजाओं को अपनी अधीनता स्वीकार करने को विवश किया होगा। परन्तु हरिषेण ने इनका उल्लेख आर्यावर्त के द्वितीय युद्ध के पश्चात तथा पूर्वी अभियान से पहले किया है। अधिकांश इतिहासकारों के अनुसार आटविक राज्यों का तात्पर्य उन्हीं राज्यों से होगा जो आर्यावर्त और पूर्वी सीमान्त प्रदेशों के मध्य रहे होंगे।

2.5.5 2.5.5 सीमान्त प्रदेश

समुद्रगुप्त ने आन्तरिक क्षेत्र पर विजय प्राप्त करने के पश्चात सीमान्त प्रदेश की विभिन्न जातियों पर ध्यान दिया। प्रयाग प्रशस्ति में पूर्वी और पश्चिमी सीमान्त प्रदेशों का अलग–अलग उल्लेख किया गया है।

'क' पूर्वी सीमान्त प्रदेश– 1. समतट – पूर्वी बंगाल का समुद्रतटीय प्रदेश
2. डवाक– सम्भवतः ढाका एवं चटगाँव जिले
3. कामरूप– वर्तमान आसाम
4. नेपाल

5. कृर्तपुर– कुमाँऊ, गढ़वाल एवं रूहेलखण्ड का कुछ भाग

इन पाँच राज्यों के बाद 'आदि' शब्द का उल्लेख है, जिससे लगता है कि कुछ अन्य छोटे राज्य भी होंगे। यह प्रदेश राजतन्त्रात्मक थे।

'ख' पश्चिमी सीमान्त प्रदेश– प्रयाग प्रशस्ति में पश्चिमी सीमा के नौ जातियों के राज्यों का उल्लेख किया गया है। –

1. मालव– यह गुप्तों के समय मन्दसौर पर राज्य करते थे तथा पंजाब से आए थे। इनकी मुद्राओं में 'मालवानां जयः' तथा 'मालवगणस्य जयः' लिखा मिलता है।
2. यौधेय–यह हरियाणा में रहते थे और इनकी मुद्राओं में 'बहुधान्यक यौधेयानाम' अंकित मिला है।
3. अर्जुनायन– यह अलवर और भरतपुर में रहते थे, जहाँ इनकी 'अर्जुनायनानां जयः' अंकित मुद्राएं प्राप्त हुयी हैं।
4. माद्रक– यह यौधेयों के उत्तर में थे तथा इनकी राजधानी शाकल (स्यालकोट) थी।
5. आभीर– यह मध्यप्रदेश के पार्वती और बेतवा नदी के बीच में आहीरवाड़ा में रहते थे।
6. प्रार्जुन– इसकी राजधानी मध्यप्रदेश में नरसिंहपुर या नरसिंहगढ़ थी।
7. सनकानीक–इनका राज्य भिलसा के पास था।
8. काक– यह सनकानीक के पड़ोस में थे।
9. खरपरिक– यह मध्यप्रदेश के दमोह में बसे थे।

इन जातियों के अन्त में भी 'आदि' शब्द लगा हुआ होने से विद्वान मानते हैं कि इनके साथ कुछ अन्य जातियां भी होंगी। यह सभी गणतन्त्रात्मक राज्य थे।

2.5.6 2.5.6 विजित प्रदेशों के प्रति नीति

समुद्रगुप्त ने विजित राज्यों के प्रति अलग–अलग नीति अपनायी। आर्यावत के राज्यों का उसने पूर्ण उन्मूलन करके उन पर अधिकार कर लिया और अपने साम्राज्य का विस्तार किया।

आर्यावर्त के राज्यों के विपरीत दक्षिणापथ के राज्यों को उसने कृपापूर्वक छोड़ दिया। उसकी दक्षिण विजय की नीति ग्रहण (शत्रु पर अधिकार), मोक्ष (शत्रु को मुक्त करना) और अनुग्रह(राज्य को लौटाकर शत्रु पर दया करना) पर आधारित थी। यह प्रतीत होता है कि सुदूर राज्यों पर नियंत्रण स्थापित करने में व्यवहारिक बाधायें आ सकती हैं, ऐसा सोचकर उसने दक्षिणापथ के राज्यों पर अधिकार नहीं किया। उसके दक्षिणापथ अभियान का उद्देश्य आर्थिक भी हो सकता था। पूर्वी घाट पर स्थित राज्यों के राजाओं का राजकोष सम्पन्न रहा होगा और समुद्रगुप्त उस कोष को प्राप्त करने के लिए ही दक्षिण गया होगा। दक्षिण के पश्चिमी घाट में वाकाटक शासकों के साथ उसने कोई संघर्ष नहीं किया, इससे प्रतीत होता है कि गुप्तों और वाकाटकों के मध्य कोई अनाक्रमण सन्धि रही होगी, जो कालान्तर तक चलती रही थी।

आटविक राज्यों को उसने अपनी अधीनता स्वीकार करने के लिए विवश किया। उसकी विजयों ने अन्य स्वतन्त्र जातियों और सीमान्त प्रदेश के राजाओं को भयभीत कर दिया था। इन सीमान्त राज्यों ने उसे कर प्रदान करके, उसकी आज्ञा का पालन करके, उसके प्रति विनीत भाव धारण करके तथा समय–समय पर समुद्रगुप्त की राजसभा में उपस्थित होकर समुद्रगुप्त को प्रसन्न किया।

इस प्रकार उसने नीति निपुणता का परिचय दिया। उसने विभिन्न प्रदेशों के लिए भिन्न– भिन्न नीतियों को अपनाया, जो उसकी सबसे बड़ी दूरदर्शिता थी।

2.5.7 विदेशी राज्यों से सम्बन्ध

हरिषेण ने कुछ विदेशी शासकों का भी उल्लेख किया है, जो समुद्रगुप्त की विजयों से भयभीत हो गए थे। उन्होंने विभिन्न कार्यों द्वारा समुद्रगुप्त को सन्तुष्ट किया। इनमें सीमान्त राज्यों के आगे भारत के उत्तर पश्चिम के विदेशी राज्य– शक , दैवपुत्रषाहिषाहानुषाहि (सम्भवतः कुषाणों के उत्तराधिकारी), मुरूण्ड (सम्भवतः अफगानिस्तान के शासक) तथा दक्षिण में सिंहल द्वीप (श्रीलंका)

एवं सर्वद्वीप वासी (द0पूर्वी एशिया के द्वीप) थे। सिंहल द्वीप (श्रीलंका) के शासक मेघवर्ण के साथ उसके मैत्री सम्बन्ध के अन्य प्रमाण भी मिलते हैं, जिनके अनुसार मेघवर्ण ने बोधगया में सिंहल के भिक्षुओं की सुविधा हेतु एक बौद्ध विहार बनाने की अनुमति मांगी थी। समुद्रगुप्त ने सहर्ष अनुमति दे दी थी और इसके बदले उसे सिंहल शासक मेघवर्ण ने अनेक बहुमूल्य उपहार भेंट में दिए थे।

हरिषेण के अनुसार इन विदेशी राज्यों ने समुद्रगुप्त के सम्मुख प्रत्यक्ष उपस्थित हो अपनी श्रद्धा भक्ति का निवेदन करके, अपनी पुत्रियों का विवाह उसके राजवंश में करके तथा गरूड़ अंकित मुद्राओं और आज्ञापत्रों का प्रयोग करके अपनी सेवा प्रदान की और उसकी प्रभुता स्वीकार की।

विदेशी राज्यों के सम्बन्ध में हरिषेण का वर्णन अतिश्योक्तिपूर्ण प्रतीत होता है , तथापि यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि इन विदेशी राज्यों के साथ समुद्रगुप्त के मैत्री सम्बन्ध रहे होंगे।
अपनी दिग्विजय के परिणामस्वरूप उसने अश्वमेघ यज्ञ भी किया, जिसके विषय में उसके सिक्कों और उसके उत्तराधिकारियों के अभिलेखों से ज्ञात होता है।

2.6 मूल्यांकन

समुद्रगुप्त एक शक्तिशाली शासक और दूरदर्शी राजनीतिज्ञ था। भारत के विशाल क्षेत्र पर विजय प्राप्त करने के बावजूद उसने उत्तर भारत के राज्यों को ही अपने केन्द्रीय शासन के अधीन रखा। उसने दूरस्थ विजित क्षेत्रों को अपने सीधे नियन्त्रण में करने का प्रयास नहीं किया, जो उसकी दूरदर्शिता को प्रकट करता है। उसने उत्तरी भारत को मजबूत केन्द्रीय शासन से एकता प्रदान कर एक महान साम्राज्य की नींव रखी। उसकी सफलता उसके सैनिक अभियानों का परिणाम थी। उसके अभिलेखों एवं सिक्कों में शत समर आदि शब्दों द्वारा उसकी निरन्तर युद्ध रतता का वर्णन किया गया है। सिक्कों में उसके लिए अप्रतिरथ, कृतान्त परशु, व्याघ्र पराक्रम, पराक्रमांक आदि विरूदों का प्रयोग किया गया है। इतिहासकार विन्सेन्ट स्मिथ ने उसे भारतीय नेपोलियन की संज्ञा दी है।

समुद्रगुप्त महान सेनानायक, कुशल राजनीतिज्ञ और शक्तिशाली शासक होने के साथ–साथ साहित्य और कला का ज्ञाता भी था। उसके सिक्कों में उसे वीणा बजाते हुए दिखाया गया है। प्रयाग प्रशस्ति में उसे कविराज और शास्त्रतत्वज्ञ आदि कहा गया है। उसके द्वारा चलाये गए सोने के सिक्कों की कलात्मक बनावट भी उसकी कलात्मक अभिरूचि को प्रकट करती है।

प्रयाग प्रशस्ति में उसे विद्वानों का महान संरक्षक बताया गया है। प्रयाग प्रशस्ति का लेखक हरिषेण उसका दरबारी कवि था। बौद्ध अभिलेखों से भी पता चलता है कि उसने बौद्ध विद्वान वसुबन्धु को अपना मंत्री नियुक्त किया था। अभिलेखों में उसकी दानशीलता और दयालुता का भी वर्णन किया गया है।

समुद्रगुप्त ने लगभग तीस वर्ष शासन किया। मथुरा स्तम्भ लेख में उसके पुत्र चन्द्रगुप्त द्वितीय की राज्यारोहण की तिथि गुप्त संवत 56 (375 ई0) की गयी है। इससे पूर्व रामगुप्त ने भी कुछ वर्ष शासन किया। इस आधार पर परमेश्वरी लाल गुप्त का मानना है कि समुद्रगुप्त ने लगभग 370 ई0 से 375 ई0 के मध्य तक शासन किया। इस प्रकार उसका राज्यकाल 338 या 345 ई0 से प्रारम्भ होकर 370 या 375 ई0 तक माना गया है।

2.7 सारांश

गुप्त वंश के शासकों में समुद्रगुप्त एक शक्तिशाली सेनानायक और साम्राज्यवादी शासक के रूप में प्रसिद्ध है। चन्द्रगुप्त प्रथम और कुमारदेवी के पुत्र होने के कारण उत्तर भारत के दो प्रमुख वंशों गुप्त और लिच्छवी वंश का राज्य उसे उत्तराधिकार में मिला था, जिसका अपनी विजयों द्वारा विस्तार करने के साथ– साथ उसे संगठित और सुरक्षित करने का महान कार्य भी समुद्रगुप्त ने किया। समुद्रगुप्त के दिग्विजय और व्यक्तित्व के बारे में प्रमुख स्रोत प्रयाग प्रशस्ति और उसके द्वारा चलाये गए सिक्के हैं। समुद्रगुप्त ने अपनी दिग्विजय से भारत की विलुप्त एकता की पुनः स्थापना की। उसकी दिग्विजय के तीन प्रमुख परिणाम हुए– 1. साम्राज्य स्थापना– गुप्त साम्राज्य में आर्यावर्त और मध्य प्रदेश प्रत्यक्ष रूप से सम्मिलित हो गए। 2. प्रभाव क्षेत्र की स्थापना–उसके साम्राज्य से अधिक विस्तृत उसका प्रभाव क्षेत्र था, जिसमें दक्षिणपथ तथा पूर्व और पश्चिम के सीमान्त प्रदेश थे, जो उसकी अधीनता स्वीकार करते थे। 3. मैत्री क्षेत्र– विदेशी शासकों से उसके मैत्री सम्बन्ध स्थापित हुए थे। महान विजेता होने के साथ–साथ समुद्रगुप्त साहित्य, कला और संगीत का ज्ञाता और संरक्षक भी था।

समुद्रगुप्त ने अपने उत्तराधिकारियों के लिए सांस्कृतिक, बौद्धिक और भौतिक सम्पन्नता से पूर्ण एक विस्तृत साम्राज्य की नींव रखी।

2.8 स्वमूल्यांकित प्रश्न एवं उत्तर

1. प्रयाग प्रशस्ति के लेखक का नाम बताइए?
2. समुद्रगुप्त के सिक्कों की विशेषता बताइए?
3. प्रथम आर्यावर्त युद्ध में पराजित शासक किस वंश के माने जाते हैं?
4. समुद्रगुप्त के माता–पिता का प्रयाग प्रशस्ति की किस पंक्ति में उल्लेख किया गया है?
5. रिक्त स्थान भरो।–

क. आर्यावर्त के द्वितीय युद्ध में कुल ..... राजाओं का उल्लेख है।

ख. द्रुबिया के अनुसार दक्षिणापथ का अभियान केवल .....घाट के राजाओं के विरूद्ध हुआ।

उत्तर–

1. हरिषेण
2. समुद्रगुप्त के सोने के सिक्के 7.65–7.77(118–120 ग्रेन) के हैं। इनमें दण्डधारी, अश्वमेध, व्याघ्र निहन्ता, धनुर्धर, वीणवादक आदि सिक्के प्रमुख हैं। इन पर दूसरी ओर देवी के विभिन्न रूप जैसे सिंहासनासीन देवी, मंचासीन देवी, चामरधारिणी देवी, जल में मकर के साथ देवी आदि का अंकन है। सिक्कों पर बाँयी ओर समुद्र अथवा समुद्रगुप्त लिखा है। साथ ही अश्वमेध पराक्रमः, व्याघ्र पराक्रमः, अप्रतिरथः, कृतान्तपरशु आदि लेख भी अंकित हैं।
3. नाग वंश
4. अठाईसवें एवं उन्तीसवें श्लोक में

क. नौ

ख. पूर्वी घाट

2.9 सन्दर्भ ग्रन्थ

1. रायचौधरी, हेमचन्द्र–पॉलिटिकल हिस्ट्री ऑफ एन्शियेंट इंडिया, नई दिल्ली,1996
2. स्मिथ,विन्सेंट–अर्ली हिस्ट्री ऑफ इंडिया, आक्सफोर्ड, 192
3. गुप्त, परमेश्वरी लाल–गुप्त साम्राज्य, वाराणसी, 2011

4. मजूमदार, रमेशचन्द्र एवं अल्तेकर, ए.एस.– सम्पादित द वाकाटक–गुप्त एज़, दिल्ली, 1946
5. बनर्जी, राखाल दास– द एज़ ऑफ इम्पीरियल गुप्ताज़,वाराणसी, 1933

2.12.10 सहायक उपयोगी पाठ्य पुस्तकें

6. मजूमदार, रमेश चन्द्र–श्रेण्य युग, नई दिल्ली,1984
7. उपाध्याय, वासुदेव– गुप्त साम्राज्य का इतिहास, 1957
8. थापर, रोमिला– भारत का इतिहास, नई दिल्ली,1975
9. शर्मा, रामशरण–प्रारम्भिक भारत का परिचय, नई दिल्ली, 2009
10. झा, द्विजेन्द्र नाथ एवं श्रीमाली,के.एम.– प्राचीन भारत का इतिहास, दिल्ली,1994

2.10 निबन्धात्मक प्रश्न

1. प्रयाग प्रशस्ति में उल्लिखित समुद्रगुप्त की उपलब्धियों का वर्णन कीजिए।
2. समुद्रगुप्त की आर्यावर्त विजयों का उल्लेख करते हुए उनके प्रति उसकी नीति पर प्रकाश डालिए।
3. समुद्रगुप्त की दक्षिण विजय पर विस्तार से लिखिए।
4. समुद्रगुप्त के साम्राज्य विस्तार का उल्लेख करते हुए बताइए कि उसने विजित राज्यों के प्रति क्या नीति अपनायी।
5. समुद्रगुप्त के समकालीन विदेशी शासकों से सम्बन्धों पर टिप्पणी लिखिए ।

इकाई तीनः चन्द्रगुप्त द्वितीय एवं उसकी उपलब्धियां

3.1 प्रस्तावना

3.2 इकाई प्राप्ति के उद्देश्य

3.3. चन्द्रगुप्त द्वितीय 375–414ई०

3.4 चन्द्रगुप्त कालीन इतिहास जानने के स्रोत

3.4.1 साहित्यिक स्रोत

3.4.2 पुरातात्विक स्रोत

3.5 सिंहासनारोहण के समय चन्द्रगुप्त द्वितीय की प्रारम्भिक कठिनाइयां

3.6. चन्द्रगुप्त द्वितीय की उपलब्धियाँ

3.6.1अन्य राजवंशों के साथ वैवाहिक संबन्ध

3.6.2 चन्द्र गुप्त द्वितीय की दिग्विजयें

3.6.3 'विक्रमादित्य' की उपाधि धारण

3.6.4 चन्द्रगुप्त का साम्राज्य विस्तार एवम मुख्य नगर

3.7 फ़ा–ह्यान (399–411ई०) द्वारा वर्णित भारत

3.7.1फ़ा–ह्यान के वृतांत के अनुसार चन्द्र्गुप्त की शासन की शासन व्यवस्था

3.8 सारांश

3.9 तकनीकी शब्दावली

3.10 स्वमूल्यांकित प्रश्नों के उत्तर

3.11 संदर्भ ग्रंथ सूची

3.12 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

3.13 निबन्धात्मक प्रश्न

3.1 प्रस्तावना

प्राचीन भारतीय इतिहास में गुप्त काल का श्रेष्ठ स्थान है। कुषाण साम्राज्य के पतन के पश्चात भारत में कई वर्षों तक सर्वत्र राजनैतिक अव्यवस्था एवम अस्थिरता फ़ैल गई थी। इस कारण लगभग 120 वर्षों का इतिहास अंध युग के नाम से जाना जाता है। इस स्थिति को समाप्त करने का कार्य गुप्त

शासकों ने किया। गुप्तों के शासन के अंतर्गत भारत ने राजनैतिक एकता और आर्थिक समृद्धि पुनः महसूस किया। जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में अतिशय प्रगति के दर्शन हुए । इन्हीं कारणों से इतिहासकारों ने गुप्त काल को प्राचीन भारत का 'स्वर्ण काल' या 'क्लासिक युग' की संज्ञा प्रदान की है।

इस अध्याय के अंतर्गत आप चन्द्रगुप्त द्वितीय के जीवन परिचय, प्रारम्भिक कठिनाइयों, उसकी कूटनीतिक योग्यता, उसकी विजयों, साम्राज्य विस्तार एवं शासन प्रबन्ध तथा फ़ाह्यान के यात्रा–वृतांत का अध्ययन करेंगे।

3.2 इकाई प्राप्ति के उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप निम्नलिखित विषयों के बारे में जानने योग्य हो जायेंगे–

- चन्द्रगुप्त द्वितीय कालीन इतिहास जानने के स्रोतों के संबन्ध में
- चन्द्रगुप्त द्वितीय के जीवन परिचय एवम उसकी राजनैतिक उपलब्धियों के सम्बन्ध में
- चन्द्रगुप्त द्वितीय द्वारा किये गये साम्राज्य विस्तार
- वैवाहिक सम्बन्धों की नीति से चन्द्रगुप्त द्वितीय द्वारा प्रभाव विस्तार के संबन्ध में
- फ़ाह्यान द्वारा वर्णित तत्कालीन भारत की स्थिति एवम शासन व्यवस्था के संबन्ध में

3.3. चन्द्रगुप्त द्वितीय (375–414ई०)

चन्द्रगुप्त द्वितीय गुप्त राजवंश का दूसरा महान शासक एवम भारत के योग्यतम शासकों में से एक था। चन्द्रगुप्त द्वितीय ही इतिहास में चन्द्रगुप्त 'विक्रमादित्य' के नाम से भी ख्याति प्राप्त है । उसका अन्य नाम 'देवगुप्त', 'देवराज', 'देवश्री' भी थे। वह समुद्रगुप्त का पुत्र था। समुद्रगुप्त की मृत्यु के पश्चात 375 ई० में चन्द्रगुप्त का बड़ा भाई रामगुप्त गद्दी पर बैठा। वह एक कमजोर शासक था। चन्द्रगुप्त द्वारा वह मारा गया और इस प्रकार चन्द्रगुप्त ने सिंहासन छीन लिया। किन्तु ऐतिहासिक रूप से रामगुप्त की इस कथा पर अभी भी संदेह है।

चन्द्रगुप्त द्वितीय गुप्त वंश का पहला शासक है जिसके राज्यारोहण की तिथि निश्चित रूप से 376–77ई० के रूप में ज्ञात है। इसके कई अभिलेखीय प्रमाण भी उपलब्ध हैं। इस बात के भी प्रमाण हैं कि अपने अनेक पुत्रों और प्रपौत्रों में से समुद्रगुप्त ने चन्द्रगुप्त को अपने जीवनकाल में ही अपना उत्तराधिकारी नियुक्त कर दिया था। तत्कालीन शिलालेखों में 'तत्परिगृहीत' शब्द पाया जाता है।जिसका तात्पर्य है कि–चन्द्रगुप्त, समुद्रगुप्त द्वारा अपने साम्राज्य का उत्तराधिकारी नियुक्त हुआ।

स्व मूल्यांकन हेतु प्रश्न

1. लघु उत्तरीय प्रश्न

प. चन्द्रगुप्त द्वितीय के राज्यारोहण की तिथि बताइये।

पप. चन्द्रगुप्त द्वितीय के पिता का क्या नाम था?

2–चन्द्रगुप्त द्वितीय के जीवन परिचय पर संक्षिप्त लेख लिखें।

3.4 चन्द्रगुप्त कालीन इतिहास जानने के स्रोत

चन्द्रगुप्त कालीन इतिहास जानने के अनेकों स्रोत उपलब्ध हैं, जिनको मोटे तौर पर दो भागों में विभक्त किया जा सकता है–

- साहित्यिक स्रोत
- पुरातात्विक स्रोत

3.4.1 साहित्यिक स्रोत

- साहित्यिक स्रोतों में सर्वोपरि चीनी यात्री फ़ाह्यान का यात्रा वृत्तांत है। फ़ाह्यान के संस्मरण का नाम 'फो–क्यो–की' है। यद्यपि वह बौद्ध धर्मानुयायी था और बुद्ध के जीवन से जुड़े स्थानों के भ्रमण के लिये भारत आया था किन्तु उसके विवरण से हमें 405 ई० से लेकर 411 ई० तक के भारत के इतिहास का पता चलता है। विशेषकर चन्द्रगुप्त द्वितीय कालीन इतिहास जानने का यह सबसे महत्वपूर्ण समकालीन अधिकारिक स्रोत है।

- दूसरा महत्वपूर्ण स्रोत है पुराण– जिनमें मुख्यतया वायु पुराण,मत्स्य पुराण,विष्णु पुराण और ब्राह्मण पुराण हैं ।

- धर्मशास्त्र–नारद स्मृति,बृहस्पति–स्मृति और कमाण्डक नीति–शास्त्र

- इनके अतिरिक्त अन्य साहित्यिक स्रोत नाटक और काव्य के रूप में उपलब्ध हैं। 'विशाखदत्त' द्वारा रचित नाटक 'देवी चन्द्रगुप्त' तथा 'मुद्राराक्षस' से हमें चन्द्रगुप्त कालीन प्रमुख घटनाओं की जानकारी प्राप्त होती है।

- इतिहासकारों (ए०बी० कीथ,ए०ए०मेक्डोनल,विंसेंट स्मिथ, हेमचन्द्र रायचौधरी,राधाकुमुद मुखर्जी, तथा पी०एल० गुप्त) की बहुमत धारणा के अनुसार कालिदास गुप्तकाल और चन्द्र्गुप्त द्वितीय के संरक्षकत्व में रहे। इस आधार पर पी०एल० गुप्त का मानना है कि कालिदास की रचनाओंदृअभिज्ञान शाकुन्तलम, माल्विकाग्निमित्रम,रघुवंशम में उस युग के लोक–जीवन का प्रतिबिम्ब सुगमता से देखा जा सकता है।

3.4.2 पुरातात्विक स्रोत

पुरातात्विक स्रोतों में सिक्के और पत्थर, ताँबे और लोहे पर अंकित अभिलेख, सील और मुहरें तथा स्मारकों के द्वारा हम तत्सामयिक इतिहास की जानकारी प्राप्त करते हैं।

चन्द्रगुप्त द्वितीय के काल के सोने, चाँदी, ताँबे और सीसे के अनेकों सिक्के प्राप्त हैं। ज्ञातव्य है कि चाँदी के सिक्कों का प्रारम्भ चन्द्रगुप्त द्वितीय के समय में ही हुआ। चन्द्रगुप्त ने कई प्रकार के सिक्के चलाये। धनुर्धर प्रकार, सिंहासन प्रकार, छत्र प्रकार, सिंह घातक प्रकार और घुड़सवार प्रकार।

- धनुर्धर प्रकार के सिक्कों का मुद्रा लेख है– " देव श्री महाराजाधिराज श्री चन्द्रगुप्तः"। मुख भाग पर गरुड़ है और पृष्ठ भाग पर लक्ष्मी ।

- सिंहासन प्रकार के सिक्कों पर मुद्रा लेख हैं–'रूपकृत' और 'विक्रमादित्यस्य'।

- छत्र प्रकार के सिक्कों पर एक बौने का चित्र है जिसने राज–छत्र उठा रखा है।

- सिंह–घातक प्रकार के सिक्कों पर मुद्रा–लेख है–राजा को सिंह विक्रम कहा गया है।

चन्द्रगुप्त द्वारा पश्चिमी छत्रपों की विजय का निर्णय सिक्कों से ही किया गया है।उन सिक्कों पर दी गई तिथियों से ही विजय का काल भी निश्चित किया गया है। पश्चिमी क्षत्रपों के सिक्कों की अन्तिम तिथि संवत 370 या 388 ई० है। इसी अवधि में पश्चिमी छत्रपों की विजय का कार्य संपूर्ण किया गया।

इतिहास जानने के स्रोतों के रूप में अभिलेखों का महत्वपूर्ण स्थान है। ये पत्थर और लौह स्तम्भ के रूप में तथा शिलालेख और ताम्रलेख के रूप में उपलब्ध हैं। चन्द्रगुप्त द्वितीय के राजकाल के अब तक 7 अभिलेख प्राप्त हैं।उनमे से एक राप्रशस्ति है तथा अन्य निजी दानोल्लेख हैं।

दिल्ली से 14कि०मी० दूर स्थित 'मेहरौली में स्थित लौह स्तंभ', उदयगिरि गुहाभिलेख (मध्य प्रदेश), 'साँची" (विदिशा, मध्य प्रदेश) और 'बसरा' के अभिलेखों से हमें चन्द्रगुप्त द्वितीय के इतिहास की महत्वपूर्ण जानकारी प्राप्त होती है।

तत्कालीन मुहरें भी इतिहास की महत्वपूर्ण घटनाओं की गवाह होती हैं। हमें चन्द्रगुप्त कालीन बहुत सी धातु व मिट्टी की मुहरें भी प्राप्त हैं।

बनारस, मथुरा और नालन्दा से अनेक गुप्त कालीन कलाकृतियों के नमूने प्राप्त हैं। स्मारक विशेषकर मंदिर, मूर्तियां और दीवारों पर अंकित चित्र निःसंदेह हमें तत्सामयिक इतिहास की जीवन्त एवम बहुउपयोगी जानकारी प्रदान करते हैं।

नोटरू प्राचीन इतिहास के छात्रों को विषय की गहन जानकारी हेतु अथवा शोध में रुचि हो तो विभिन्न संग्रहालयों जैसे कलकत्ता स्थित 'इन्डियन म्युजियम',मथुरा संग्रहालय इत्यादि, एवम ऐतिहासिक स्थलों का भ्रमण करना चाहिये।

स्व मूल्यांकन हेतु प्रश्न

1. लघु उत्तरीय प्रश्न

- फ़ाह्यान के संस्मरण का नाम क्या है?
- नाटक 'देवी चन्द्रगुप्त' तथा 'मुद्राराक्षस' किसकी रचना है?
- 'इन्डियन म्युजियम' भारत के किस राज्य में स्थित है?

2–निम्न लिखित विषयों पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिये।

- चन्द्रगुप्त कालीन इतिहास जानने के पुरातात्विक स्रोत
- 'मेहरौली का लौह स्तंभ लेख,

3.नीचे लिखे प्रश्नों के उत्तर दिजिये।

- चन्द्रगुप्त कालीन इतिहास जानने के स्रोतों का विश्लेषण कीजिये।

3.5 सिंहासनारोहण के समय चन्द्रगुप्त द्वितीय की प्रारम्भिक कठिनाइयां

चन्द्रगुप्त द्वितीय के राज्यारोहण के समय देश की राजनैतिक स्थिति असंतोषजनक थी।उसके पिता समुद्रगुप्त ने एक विशाल गुप्त साम्राज्य स्थापित किया था। उसने उत्तर में कुछ राज्यों को विजित करके उन्हें अपने साम्राज्य में मिला लिया था। समुद्रगुप्त एक व्यावहारिक साम्राज्यवादी था । वह समझता था कि संपूर्ण भारत को एक शासक के अधीन रखना संभव नहीं होगा। अतः उसने दक्षिण तथा सीमांत क्षेत्रों के कई राज्यों को अधीनता स्वीकार करने की शर्त पर उनके राज्य वापस कर दिये थे। इस प्रकार अपने शासनकाल में समुद्रगुप्त ने एक विशाल साम्राज्य और उससे भी अधिक प्रभाव क्षेत्र स्थापित किया।

किन्तु समुद्रगुप्त की मृत्यु के पश्चात गुप्त साम्राज्य की राजनैतिक स्थिति पतनोन्मुख हो गई।'शकों' की शक्ति और प्रभाव बढ़ने लगा। केन्द्रीय शक्ति के क्षीण होने के साथ–साथ प्रान्तीय शासक अपनी स्वतंत्र सत्ता स्थापित करने लगे। चुंकि चन्द्रगुप्त द्वितीय एक महत्वाकांक्षी शासक था और अपने पिता की तरह ही साम्राज्य विस्तार की उसकी महत्वाकांक्षा थी । अतः इन स्थितियों का सामना उसको करना था।शकों तथा अन्य जनजातीय शक्तियों की बढ़ती ताकत को दबाना दूसरी समस्या थी।

संक्षेप में, यह कहा जा सकता है कि चन्द्रगुप्त द्वितीय के राज्यारोहण के साथ ही उसे अनेकों समस्याओं का सामना करना था। बिखरते साम्राज्य को एकता के सूत्र में पिरोना तथा राज्य में कानून और व्यवस्था बनाये रखना सर्वप्रमुख समस्या थी।

स्व मूल्यांकन हेतु प्रश्न

1–निम्न लिखित विषय पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिये।

- सिंहासनारोहण के समय चन्द्रगुप्त द्वितीय के समक्ष कौन–कौन सी प्रारम्भिक कठिनाइयां थीं?

3.6. चन्द्रगुप्त द्वितीय की उपलब्धियाँ

3.6.1 अन्य राजवंशों के साथ वैवाहिक संबंध

चन्द्रगुप्त द्वितीय एक महान विजेता के साथ–साथ एक कुशल कूटनीतिज्ञ के गुणों से युक्त था।अपने समय की शक्तियों को अपने नियंत्रण में लाने के लिये उसने मात्र सैन्य शक्ति का प्रयोग ही नहीं किया अपितु वैवाहिक संबन्धों की कूटनीति से भी काम लिया।उसने उन अधीन राज्यों से, जो असंतुष्ट या शक्तिसंपन्न थे, वैवाहिक संबन्धों द्वारा अपना मित्र बना लिया।

यहाँ आप यह जान लें वैवाहिक सबन्धों के द्वारा अपनी स्थिति को सुदृढ़ या सुरक्षित बनाने की नीति कोई नयी नहीं थी। इससे पूर्व भी गुप्त वंश के लगभग सभी महत्वपूर्ण राजाओं ने अपनी वैदेशिक नीति में वैवाहिक संधियों को महत्वपूर्ण स्थान दिया ।

उदाहरण के तौर पर आप देखें कि लिच्छवी वंश में चन्द्रगुप्त प्रथम के विवाह से उसकी स्थिति सुदृढ़ हुई। आर्यावर्त की विजय के पश्चात गुप्त राजाओं ने अन्य राजवंशों से भी वैवाहिक संबन्ध स्थापित करने की चेष्टा की, जिससे गुप्त साम्राज्य को सुदृढ़ किया जा सके और नये प्रदेशों की विजय के लिये भी संभावना बन जाये। उसी प्रकार समुद्रगुप्त ने कुषाण तथा अन्य शासकों से कन्याओं को उपहार स्वरूप स्वीकार किया तथा शक और कुषाण वंश से मैत्री संबन्ध स्थापित किये।

इस संबन्ध में 'डा० हेमचन्द्र राय चौधरी' का मत है– "वैवाहिक संबन्ध बनाना गुप्तों की विदेश नीति का महत्वपूर्ण अंग बन गया था। अतः वैवाहिक संबन्धों की यह नीति चन्द्रगुप्त द्वितीय ने जारी रखी।"

चन्द्रगुप्त द्वितीय के समकालीन नागवंश देश की महत्वपूर्ण एवं प्रभावशाली शक्ति बन गई थी। अतएव उसने नागवंश की राजकुमारी कुबेरनागा से विवाह किया। इसके साक्ष्य हैं कि इस विवाह से गुप्त राजवंश की स्थिति सुदृढ़ हुई । कुबेरनागा ने एक पुत्री प्रभावती गुप्ता को जन्म दिया। प्रभावती गुप्ता का विवाह वाकाटक राजा रुद्रसेन द्वितीय से किया गया। इतिहासकार 'डा० स्मिथ' का मत है कि "वाकाटक राजा की भौगोलिक स्थिति गुप्त शासकों के लिये बड़े महत्व की थी। चन्द्रगुप्त ने बुद्धिमत्तापूर्वक, सावधानी के रूप में अपनी पुत्री वाकाटक शासक को दे दी और उसकी अधीनस्थ मैत्री प्राप्त कर ली।" रुद्रसेन द्वितीय का राज्य काल बहुत अल्प था। उसकी मृत्यु के पश्चात प्रभावती गुप्ता को उसके अवयस्क पुत्रों दिवाकरसेन तथा प्रवरसेन द्वितीय की संरक्षिका नियुक्त किया गया। इससे वाकाटक दरबार में गुप्त सम्राट का प्रभाव बढ़ गया। लगभग 390 ई० से 410 ई० तक प्रभावती गुप्ता ही वाकाटक राज्य की शासिका थी। इस अवसर का लाभ उठाकर चन्द्रगुप्त द्वितीय ने पश्चिमी क्षत्रपों को परास्त करके उनके राज्य को अपने साम्राज्य में मिला लिया।

इतिहासकारों का मत है कि कुन्तल के कादम्ब शासक काकुत्स्थवर्मा की पुत्रियों के विवाह गुप्त शासकों से हुए। भोज तथा क्षेमेन्द्र ने कहा है कि विक्रमादित्य ने एक दूत मंडल कुन्तल भेजा।

इस प्रकार स्पष्ट होता है कि वैवाहिक मित्रता की नीति के द्वारा चन्द्रगुप्त द्वितीय ने अपनी स्थिति सुदृढ़ कर ली। ये सभी वैवाहिक संबन्ध राजनैतिक महत्व के और गुप्त सम्राज्य को दृढ़ करने वाले थे। इससे यह प्रमाणित होता है कि चन्द्रगुप्त द्वितीय उच्च कोटि का कूटनीतिज्ञ था।

3.6.2 चन्द्रगुप्त द्वितीय की दिग्विजयें

यद्यपि समुद्रगुप्त अपने उत्तराधिकारी के लिये एक विस्तृत साम्राज्य छोड़ गया था, तथापि चन्द्रगुप्त द्वितीय ने साम्राज्य विस्तार हेतु कई युद्ध किये।

चन्द्रगुप्त द्वितीय की दिग्विजयों का सबसे महत्वपूर्ण एवं अधिकारिक स्रोत 'मेहरौली का लौह स्तम्भ लेख' माना गया है। इस पर संक्षिप्त किन्तु काव्यमय वर्णन पाया जाता है। यद्यपि इस पर उत्कीर्ण 'चन्द्र' का संबन्ध किससे है, इस संबन्ध में इतिहासकारों ने विभिन्न मत व्यक्त किये हैं। 'डा० आयंगर 'के मतानुसार–'चन्द्र' का तात्पर्य चन्द्रगुप्त प्रथम से है जबकि 'राखाल दास बनर्जी' तथा 'डा० हर प्रसाद शास्त्री' का मत है कि मेहरौली स्तम्भ के 'चन्द्र' का तात्पर्य पुशरमान (जोधपुर) के राजा चन्द्रवर्मन से है। किन्तु चन्द्रवर्मन एक प्रान्तीय और कम प्रसिद्ध राजा था। 'विन्सेंट स्मिथ' सहित अनेक इतिहासकारों का मत है कि 'चन्द्र' गुप्त वंश के चन्द्रगुप्त द्वितीय की ओर संकेत करता है। इस प्रकार अब तक हुए शोध से यह स्पष्ट है कि इस स्तम्भ के 'चन्द्र' का तात्पर्य चन्द्रगुप्त द्वितीय से ही है।

चन्द्रगुप्त द्वितीय की विजयों की विवेचना निम्नलिखित रूपों में की जा सकती है।

गणराज्यों का विनाश

उस समय पश्चिमोत्तर भारत में कुषण और अवन्ति के महाक्षत्रपों के बीच मद्र–गण से लेकर खरपरिक–गण तक बहुत से छोटे–छोटे गणराज्य थे। स्वतंत्रता प्रेमी होने के कारण ये गणराज्य असंगठित थे।किन्तु सैन्य दृष्टि से इतने दुर्बल थे कि किसी संगठित विदेशी आक्रमणकारी का सामना नहीं कर सकते थे। चन्द्रगुप्त ने इनकी दुर्बलता का पूरा लाभ उठाया। अपने विजय अभियान का पहला निशाना चन्द्रगुप्त द्वितीय ने इन्हीं गणराज्यों को बनाया। चन्द्रगुप्त द्वितीय के उदयगिरि में मिले हुए उत्कीर्ण लेखों से पता चलता है कि मध्यभारत की ओर विजय के प्रयोजन से चन्द्रगुप्त गया हुआ था। (फ़्लीटरू गुप्त अभिलेख, संख्या–11 " कृत्स्नापृथ्वी–जयार्थेन राज्ञैवेह सहागतरू") इस घटना के बाद भारत के इतिहास में गणराज्यों का अस्तित्व समाप्त हो गया। डा० राजबली पाण्डेय का मत है कि चन्द्रगुप्त न केवल 'शकारि' अपितु 'गणारि' भी था।

अवन्ति के क्षत्रपों का अन्त

मध्यभारत के गणराज्यों का विनाश करने के बाद चन्द्रगुप्त ने अपना विजय अभियान जारी रखा तथा अवन्ति के क्षत्रपों का विनाश किया। रुद्रसिंह तृतीय के 388 ई० तक के सिक्के मिलते हैं। इसके बाद का कोई सिक्का नहीं मिलता। वह अन्तिम क्षत्रप था जिसका३३.यह घटना संभवतः 395 से 400 ई० के बीच घटी। क्षत्रप सिक्कों का अनुकरण कर चन्द्रगुप्त ने मालवा में अपने चाँदी के सिक्के चलाये।

बंगाल (पूर्वी प्रत्यान्त /सीमावर्ती राज्यों) की विजय–

मेहरौली लौह स्तम्भ से ज्ञात होता है कि समुद्रगुप्त की मृत्यु के पश्चात पूर्वी भारत में स्थित गुप्त वंश के शत्रु राजे फिर से एकजुट होने लगे थे। जिनमें बंगाल प्रांत के कुछ प्रमुख सरदार–प्रत्यन्त–नृपतिसमतट, दवाक एवं कामरूप के राजा सम्मिलित थे। परन्तु चन्द्रगुप्त ने उन सभी को बलपूर्वक पराजित कर दिया। इन विजयों के द्वारा गुप्त साम्राज्य की सीमा आसाम तक विस्तृत हो गई।

मेहरौली लौह स्तम्भ अभिलेख' में कहा गया है कि–

"यस्योद्धर्तयतःप्रतीपमुरसा शत्रून्समेत्यागता–

न्वंङगेष्वाहव–वर्त्तिनोऽभिलिखता खड्गेन कीर्तिभुजे।"

राजा चन्द्र ने अपने विरुद्ध संगठित राजाओं के एक संघ को परास्त करके वंग देश को विजित किया । कालिदास की मान्यता है कि 'वंग' शब्द का अर्थ गंगा की दो शाखाओं भागीरथी और पद्मा के बीच की भूमि है।इलाहाबाद स्तम्भ अभिलेख में कहा गया है कि समतट जिसमें वंग का कुछ भाग भी सम्मिलित था, एक 'प्रत्यान्त' या सीमावर्ती राज्य था, जो समुद्रगुप्त की प्रभुता को स्वीकार करता था। सम्भव है कि कुछ राजाओं ने चन्द्रगुप्त द्वितीय को मान्यता न दी हो और उसे उनके विरुद्ध युद्ध करना पड़ा हो। संभव है कि वंग विजय चन्द्रगुप्त द्वितीय के राज्यकाल के अंत में हुई हो और इसीलिये सिक्कों तथा अभिलेखों से इस घटना का उल्लेख नहीं मिलता।

पश्चिमोत्तर भारत विजय

मेहरौली के लौह स्तम्भ लेख में यह स्पष्ट रूप से वर्णित है कि पूर्व के सीमावर्ती राज्यों को अपने राज्य में मिलाने के पश्चात चन्द्रगुप्त ने पश्चिमोत्तर भारत, जहाँ संभवतः कुषाणों के वंशज अभी भी शासन कर रहे थे, पर आक्रमण किया। लौह स्तम्भ में यह भी स्पष्ट वर्णित है कि–"तीर्त्वा सप्तमुखानि येन समरे सिन्धोजिता वाह्लिकारू" अर्थात 'सिन्धु नदी के सात मुँह' (सिन्धु नदी की सात सहायक नदियों सतलज से लेकर काबुल) पार करके उसने वाहलिक पर भी विजय प्राप्त की। डा० आर० सी० मजुमदार के अनुसार, वाहलिक हिन्दुकुश पर्वतों के पार बल्ख को ही मानना होगा। यह भी कहा गया है कि राजा चन्द्र ने अपनी भुजाओं के पराक्रम से संसार में प्रभुता प्राप्त की। उसने पंजाब और सीमान्त पर अधिकार जमाकर भारत के प्राचीन दिग्विजयी राजाओं की परिपाटी के अनुसार हिन्दुकुश के पास तक दिग्विजय करते हुए वाह्लिकों को परास्त किया।

शक क्षत्रपों पर विजय

पश्चिम भारत के शक क्षत्रपों पर विजय चन्द्रगुप्त द्वितीय की सबसे महत्वपूर्ण उपलब्धि मानी जाती है। यद्यपि चन्द्रगुप्त द्वितीय द्वारा शकों पर विजय की तिथि विवादास्पद है तथापि विभिन्न तर्कों के पश्चात विद्वान इतिहासकारों ने यह तिथि 389 ई० से 413 ई० के बीच की मानी है।

कई शताब्दी तक शक भारतीय राजनीति की विकट समस्या थे। इलाहाबाद स्तम्भ लेख से ज्ञात होता है कि समुद्रगुप्त ने शकों के साथ मैत्री संबन्ध रखे तथा उन पर अपना आधिपत्य नहीं जमाया।

स्मिथ का मत है कि जाति, धर्म और रिति–रिवाज की विभिन्नता के कारण चन्द्रगुप्त द्वितीय को पश्चिमी क्षत्रपों के राज्य को विजित करने का विषेष कारण दिखायी दिया। उसका कुछ भी उद्देश्य रहा हो उसने सत्य सिंह के पुत्र क्षत्रप रुद्रसेन पर आक्रमण किया, उसे सिंहासन से उतारा और और उसका बध किया । तत्पश्चात उसने उसका राज्य भी गुप्त साम्राज्य में मिला लिया। युद्ध अवश्य ही बहुत लम्बा रहा होगा। उस प्रदेश के विलीन किये जाने का प्रमाण सिक्कों से मिलता है,अभिलेखों से नहीं। किन्तु वीरसेन शाब के उदयगिरि गुफा अभिलेख में कहा गया है कि "वह(शाब) यहाँ (पूरवी मालवा) आया, उसके साथ स्वयं राजा (चन्द्रगुप्त) भी था जो समस्त संसार पर विजय पाने का अभिलाषी था।" यह विचार प्रकट किया गया है कि शाब पाटलिपुत्र का निवासी था और वह चन्द्रगुप्त द्वितीय का 'सचिव' या मंत्री बना। वह युद्ध तथा शान्ति विभाग का अधिकारी था। जब चन्द्रगुप्त द्वितीय ने पश्चिमी क्षत्रपों को परास्त करने का निश्चय किया तो वह भी उसके साथ गया। शकों के विरुद्ध चन्द्रगुप्त के अभियानों का केन्द्र पूर्वी मालवा था। साँची तथा उदयगिरि के अभिलेखों से प्रतीत होता है कि चन्द्रगुप्त द्वितीय ने अपने मंत्री, सेनानी और सामंत पूर्वी मालवा में विदिशा के स्थान पर या उसके निकट एकत्र किये।

बाण ने भी पश्चिमी क्षत्रपों के पतन का उल्लेख किया है, किन्तु चन्द्रगुप्त द्वारा चलाये गये चाँदी के सिक्कों का प्रमाण तो निर्णायक है। रैपसन की मान्यता है कि "अन्तिम महाक्षत्रपों के सिक्कों की तरह, जिनसे वे धातु और शैली की दृष्टि से बहुत मिलते जुलते हैं और उनके मुख भाग (वइअमतेम) पर, राजा के पीछे तिथि दी गई है जिसके साथ 'वर्ष' का कोई तुल्यार्थ शब्द भी है और यूनानी अक्षरों में पुराने मुद्रा लेख (समहमदक) के कुछ कुछ अवशेष भी हैं और पृष्ठ भाग (तमअमतेम) पर गुप्त चिन्ह (मोर) के स्थान पर चौत्य, चन्द्र और तारे को अंकित कर दिया गया है।"

दक्षिणापथ की पुनर्विजय

मेहरौली लौह स्तम्भ में वर्णित है "यस्याद्याप्ध्विवास्यते जसनिधिवीर्यानिलैद्विर्क्षणः"। इससे यह अनुमान लगाया जाता है कि रामगुप्त के शासनकाल में दक्षिण–भारत के राजाओं ने गुप्तों के साम्राज्य से निकलने का प्रयत्न किया और चन्द्रगुप्त द्वितीय ने अपनी भुजाओं के बल पर दक्षिण में पुनः अपना आधिपत्य स्थापित किया।

3.6.3 'विक्रमादित्य' की उपाधि धारण

चूंकि ऐसा माना जाता था कि शकों को पराजित करने वाले की कीर्ति चारों दिशाओं में फ़ैल जाती थी। इसलिये चन्द्रगुप्त ने शक क्षत्रपों को विजित करने में अधिक रुचि दिखायी।ऐसा अनुमान है कि शकों को पराजित करने के पश्चात चन्द्रगुप्त द्वितीय ने 'शकारि' की उपाधि धारण की। 57 ई० में उज्जयिनी के विक्रमादित्य ने शकों को हराकर संवत का प्रदर्शन किया था। चन्द्रगुप्त ने भी उत्तरापथ और अवन्ति के शक राज्यों का उन्मूलन करके 'विक्रमादित्य' का विरुद धारण किया। चन्द्रगुप्त ने अपने पराक्रम और प्रताप से पुनः अपना आधिपत्य स्थापित किया। अभिलेखों से यह ज्ञात होता है कि चन्द्रगुप्त द्वितीय ने 'देवराज', 'देवगुप्त',सिंहविक्रम',सिंहचन्द्र' इत्यादि उपादियाँ धारण कीं।

3.6.4 चन्द्रगुप्त का साम्राज्य एवम मुख्य नगर

चन्द्रगुप्त द्वितीय योग्य प्रशासक के साथ–साथ एक महान योद्धा और महान विजेता था। उसने पिता के समान ही साम्राज्य विस्तार की नीति का अनुपालन किया।उसने अपने शौर्य और पराक्रम से गुप्त साम्राज्य का प्रसार किया। उसका साम्राज्य उत्तर में हिमालय से लेकर दक्षिण में नर्मदा नदी तक तथा पूर्व में बंगाल और आसाम से लेकर पश्चिम में सौराष्ट्र तक विस्तृत था। उसने कुषाणों को पराजित कर पश्चिमोत्तर में हिन्दुकुश तक तथा गांधार एवम कम्बोज में गुप्त साम्राज्य की सीमाओं का विस्तार किया। इस प्रकार,चन्द्रगुप्त द्वितीय के शासनकाल में गुप्त साम्राज्य के अंतर्गत गुजरात,सौराष्ट्र,मालवा,उत्तर प्रदेश,बिहार, बंगाल व पंजाब का अधिकांश भाग सम्मिलित था।

अधिकांश इतिहासकारों ने यही स्वीकार किया है कि है कि चन्द्रगुप्त द्वितीय ने एक निवास स्थान मालवा में भी बना लिया था। उसके पहले संभवतः विदिशा में और फिर उज्जैन में उसका निवास था। चन्द्रगुप्त द्वितीय को 'श्रेष्ठतम नगर उज्जैन का स्वामी' और 'सर्वश्रेष्ठ नगर पाटलिपुत्र का स्वामी' कहा गया है। वसुबन्धु की जीवन–कथा के लेखक ने अयोध्या को विक्रमादित्य की राजधानी कहा है। एलन के अनुसार, "चन्द्रगुप्त द्वितीय द्वारा चलाये गये ताँबे के सिक्के प्रायः अयोध्या में और उसके निकट पाये गये हैं। इससे ज्ञात होता है कि अयोध्या भी एक राजधानी थी तथा उसमें एक टकसाल था।"

ब्लोच द्वारा बसाड़ में की गई खुदाई से बहुत–सी मिट्टी की मुहरें प्राप्त हुईं जिनसे चन्द्रगुप्त द्वितीय के इतिहास पर प्रकाश पड़ता है। एक मुहर से ज्ञात होता है कि ध्रुवस्वामिनी चन्द्रगुप्त द्वितीय की 'महादेवी' और गोविन्दगुप्त की माता थी। यह भी सिद्ध हो जाता है कि अपने पिता चन्द्रगुप्त द्वितीय के समय में गोविन्दगुप्त तीर या तीरभुक्ति का गवर्नर था।मुहरों में उस समय के कई कर्मचारियों को पदवियां दी गई हैं,जैसे'उपरिक', 'कुमारामात्याधिकरण', 'बलाधिकार',' रणभन्डाधिकरण',' दन्डपाशाधिकरण', 'महादन्डनायक', भटाश्वपति', 'महाप्रतिहार', विनयस्थितिस्थापक 'विनयसुर' तथा

'तलवार'। इन मुहरों से प्रान्तीय प्रशासन पर ही नहीं बल्कि जिला और स्थानीय प्रशासन पर भी प्रकाश पड़ता है।

प्रतीत होता है कि उज्जैन और उत्तरी भारत के बीच मुख्य मार्ग पर स्थित कौशाम्बी को भी राजा ने अपना निवास स्थान बनाकर सम्मानित किया।

स्व मूल्यांकन हेतु प्रश्न

1–लघु उत्तरीय प्रश्न

- चन्द्रगुप्त द्वितीय ने अपना विवाह किस वंश में किया?
- चन्द्रगुप्त ने अपनी पुत्री का विवाह किस वंश में किया?
- चन्द्रगुप्त द्वितीय की दिग्विजयों का सबसे महत्वपूर्ण, अधिकारिक स्रोत किसे माना गया है?
- चन्द्रगुप्त द्वितीय ने कौन सी उपाधियाँ धारण कीं?

2–निम्न लिखित विषयों पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिये।

- चन्द्रगुप्त द्वितीय द्वारा अपनायी गई वैवाहिक संबन्धों की नीति
- चन्द्रगुप्त कालीन प्रमुख नगरों की स्थिति

3– नीचे लिखे प्रश्नों के उत्तर दिजिये।

- वैवाहिक संबन्धों की नीति से क्या लाभ हुआ?
- चन्द्रगुप्त द्वितीय की विजयों पर प्रकाश डालिये।

3.7 फ़ा–ह्यान (399–411ई०)

यहाँ आपको यह जान लेना आवश्यक है कि प्राचीन काल में भारत अनेकों धर्मावलम्बियों और ऐतिहासिक दृष्टि से विदेशियों के आकर्षण का केन्द्र था।अनेकों यात्री 'ह्वेन्सांग', 'इत्सिंग', 'फ़ाह्यान' यहाँ आये। इन यात्रियों ने भारत संबन्धी जो वृतांत लिखे वह हमें राजनीतिक, आर्थिक, इतिहास तथा तत्सामयिक शिक्षा, कला एवं संस्कृति की स्थिति जानने में अत्यधिक सहायक हैं। हमारे अध्ययन हेतु इन्हीं में से एक चीनी यात्री फ़ाह्यान का यात्रा विवरण को जानना हमारे लिये आवश्यक है।

चन्द्र गुप्त द्वितीय के राज्यकाल में चीनी तीर्थयात्री फ़ा–ह्यान ने भारत यात्रा की। वह बौद्ध संयासी था। भारत आने का उसका मुख्य उद्देश्य बौद्ध–नीति की पुस्तकें प्राप्त करना था जो चीन में लगभग अज्ञात हो चुकी थीं। वह स्थल मार्ग से भारत आया। अपनी यात्रा में उसने 30 देशों का भ्रमण किया। भारत में उसने छः वर्ष 405–411ई० यात्रा और अध्ययन में व्यतीत किये। उसी बीच के तीन वर्ष संस्कृत लिखने–बोलने व नीति पुस्तकों की नकल में लगाये।

फ़ाह्यान के संस्मरण का नाम 'फो–क्यो–की' है। उसका अंग्रेजी अनुवाद 'जे०एच०लेगे' ने 1886 ई० में किया था, जिसे आक्सफोर्ड ने 'रिकार्ड आव द बुद्धिस्टिक किंगडम्स' नाम से प्रकाशित किया है।1923 ई० में एक दूसरा अनुवाद 'ट्रैवेल आव फ़ाह्यान आर रिकार्ड आव द बुद्धिस्टिक किंगडम्स' नाम से कैम्ब्रिज से प्रकाशित हुआ। बाद में 'रिकार्ड आव दि बुद्धिस्टिक कण्ट्री' नाम से तीसरा अनुवाद 1957 ई० में पेकिंग से प्रकाशित हुआ।

इस यात्रा में वह बुद्ध के जीवन से जुड़े प्रत्येक स्थल जैसे खोतान, काशगर, गांधार, तक्षशिला, पेशावर, सारनाथ, लुम्बिनी, वैशाली नालन्दा, गया, बौध–गया और राजगृह, कपिलवस्तु, आदि बौद्ध स्थानों की

उसने यात्रा की। इनके अतिरिक्त कुछ ऐतिहासिक स्थलों जैसे–पाटलिपुत्र, कन्नौज, काशी, मथुरा की यात्रायें भी कीं। श्रावस्ती में उसने कई बौद्ध स्मारक देखे। उसने लंका यात्रा भी की और वहाँ वह दो वर्ष रहा। लंका से वह जावा गया और इसके पश्चात वह समुद्री मार्ग से वापस चीन पहुँचा।

3.7.1 फ़ा–ह्यान (399–411ई०) के यात्रा वृतांत के अनुसार चन्द्रगुप्त की शासन की शासन व्यवस्था

यह उल्लेखनीय है कि फ़ा–ह्यान तीन वर्ष तक पाटलिपुत्र में ठहरा । अपने कार्य में वह इतना लीन था कि उसने शासक चन्द्रगुप्त द्वितीय के नाम का उल्लेख नहीं किया है, किन्तु उसके विवरण से गुप्त शासन व्यवस्था का पता अवश्य चलता है। लगभग संपूर्ण भारत पर अपना आधिपत्य स्थापित करने के बाद गुप्त शासन–प्रबन्ध को संगठित करने का श्रेय भी चन्द्रगुप्त द्वितीय को है। उसके आदर्श शासन की प्रशंसा चीनी यात्री फ़ाह्यान करता है।

राजनैतिक दशा

चुंकि फ़ाह्यान की यात्रा का उद्देश्य धार्मिक था अतः उसने राजनैतिक स्थिति का वर्णन करने पर अपना ध्यान कम केन्द्रित किया तथापि परोक्ष रूप से तत्कालीन प्रशासनिक व राजनीतिक स्थिति की जानकारी प्राप्त होती है। जिससे हमें ज्ञात होता है कि राजा का प्रमुख उद्देश्य जनकल्याण और जनता की समृद्धि था। प्रशासन प्रबुद्ध एवं कार्य कुशल था।

"लोग खुशहाल हैं, करों का भार कम है। उन्हें अपनी गृहस्थी के विषय में लिखवाना नहीं पड़ता,न न्यायाधीशों के सामने उपस्थित होना पड़ता है और न ही उनके नियमों का पालन करना होता है, केवल वही लोग जो राज्य की भूमि में खेती करते हैं, उससे प्राप्त लाभ का कुछ अंश देते हैं। दण्ड व्यवस्था बहुत सरल है। यदि वे जाना चाहें तो उनके अपराध की परिस्थितियों के अनुसार भारी या हल्का जुर्माना लगाया जाता है। बार बार अपराध करने पर भी केवल उनका दाहिना हाथ काट दिया जाता है।यात्रायें करना सुरक्षित है।"

सामाजिक दशा

फ़ाह्यान के विवरण से ज्ञात होता है कि उस समय राज्य के लोग शुद्ध व सात्विक जीवन जीते थे। वे सुखी एवम संपन्न थे। अधिकांशतः अहिंसा में विश्वास रखते। न ही मांसाहारी थे न ही मदिरा का प्रयोग करते थे।

समाज में जाति विशेष 'चाण्डाल' के प्रति छुआछूत की भावना थी। केवल चाण्डाल ही मांस मदिरा खाते थे। इसलिये उनका निवास स्थान नगरों से बाहर था। जब वे नगर में चलते थे तो लोगों को आगाह करने के लिये सड़क पर बांस के डंडे पीटते हुए चलते ताकि सब लोग उन्हें छूने से बच जांय।

फा–ह्यान से हमें ज्ञात होता है कि "धनी लोगों ने अपनी राजधानियों में निःशुलक औषधालय बना रखे हैं और सभी निर्धन या असहाय रोगी, अनाथ विधवायें और पंगु वहां आते हैं। वहां इनकी अच्छी देख रेख की जाती है, एक वैद्य उनकी चिकित्सा करता है और खाना तथा औषधियां उनकी आवश्यकतानुसार निःशुल्क दी जाती हैं। जब वे ठीक हो जाते हैं तो वे चले जाते हैं।"

यह भी ज्ञात होता है कि धनवान व्यक्ति निर्धनों, असहायों और धार्मिक कार्यों हेतु अस्पताल, धर्मशालायें बनवाते तथा मठों, विहारों और मंदिरों को दान में भूमि देते थे।

आर्थिक स्थिति

फ़ाह्यान ने चन्द्रगुप्त द्वितीय के राज्य में आय के स्रोतों तथा व्यापार एवम वाणिज्य की प्रगति का वर्णन किया है। हमें यह ज्ञात होता है कि भूमिकर राज्य की आय का मुख्य स्रोत था।करों की अदायगी लोग स्वतः नकद या उत्पादों के द्वारा करते थे।

फ़ाह्यान के अनुसार आंतरिक एवम विदेशी व्यापार एवं वाणिज्य अत्यंत समृद्ध था। समुद्री व्यापार बहुत विकसित स्थिति में था और विदेशों से व्यापारिक संबन्ध इस काल में स्थापित हुए। भारतीय समुद्र यात्रायें भी करते थे। उसने अनेक बंदरगाहों जैसे –काम्बे, सोपारा, भड़ौच, ताम्रलिप्ति का भी विवरण दिया है।

सरकारी कर्मचारियों को निश्चित वेतन दिये जाते थे। राजा के अंगरक्षकों तथा परिचालकों को वेतन दिया जाता था। क्रय–विक्रय में कौड़ियों का प्रयोग होता था।

वस्तुतः फ़ाह्यान के वर्णन से स्पष्टतः यह कहा जा सकता है कि आर्थिक रूप से प्रजा संपन्न थी।

धार्मिक स्थिति–

जैसा कि आपको पहले बताया जा चुका है फ़ाह्यान की भारत यात्रा का उद्देश्य पूर्णतः धार्मिक था।अतः उस काल की धार्मिक स्थिति, विशेषकर बौद्ध धर्म के बारे में हमें अधिक जानकारी प्राप्त होती है। वह बताता है कि उत्तर भारत में बौद्ध धर्म बहुत प्रचलित था, लोग बौद्ध धर्म के प्रमुख सिद्धान्तों–सत्य और अहिंसा में विश्वास करते थे। बौद्ध विहारों का विस्तृत ब्यौरा देते हुए वह लिखता है–राज्य के उत्तरी भाग पंजाब बंगाल और मथुरा में बौद्ध विहारों का जाल फैला है।मथुरा में अकेले 20 विहार हैं। जिनमें 3000 बौद्ध भिक्षु थे।

स्थायी निवासी और यात्री भिक्षुओं को बिस्तरों तथा चटाइयों और खाने तथा कपड़ों सहित रहने के लिये कमरे दिये जाते हैं, सभी स्थानों में ऐसा ही होता है। सारीपुत्र, मोगालन तथा आनन्द और अभिधम्म, विनय तथा सुत्तों के सम्मान में पगोडे बनाये जाते हैं। भिक्षुओं की वार्षिक वापिसी के पश्चात उनके लिये विभिन्न वस्त्र तथा अन्य वस्तुएं जुटाने के लिये धार्मिक परिवार चन्दा इकट्ठा करते थे।भगवान बुद्ध के निर्वाण के समय से राजा, सरदार और गृहस्थ सभी ने भिक्षुओं के लिये विहार बनवाये हैं और उनके लिये खेत,घर,बाग,सेवक और पशु दान में दिये हैं। ताम्र–पत्रों पर लिख कर विहारों की सम्पत्ति उनके लिये आरक्षित कर दी जाती है, ये ताम्र–पत्र एक राज्य के बाद दूसरे राज्य को दे दिये जाते हैं और उन्हें रद्द करने की किसी को हिम्मत नहीं होती। सभी स्थायी भिक्षु जिन्हें विहारों में कमरे दिये जाते हैं , उन्हें विस्तर चारपाईयां,खाना,पेय पदार्थ आदि मिलते हैं। वे अपना समय दया धर्म के कार्य करने, धार्मिक पुस्तकों का पाठ करने और आत्मचिन्तन में व्यतीत करते हैं। यदि कोई विदेशी यात्री किसी विहार में आता है तो वहां के उच्च पुरोहित उसे अतिथि गृह तक छोड़ने जाते हैं और उसके वस्त्र तथा दान–पात्र भी उठाते हैं।वे उसे पैर धोने के लिये पानी और मालिश के लिये तेल देते हैं और उसके लिये विशेष खाना बनाया जाता है।

दान धर्म की कई संस्थायें थीं। सड़कों के किनारों पर या उनसे दूर लोग दान गृह बनवाते थे और यात्रा करने वाले भिक्षुओं तथा यात्रियों को वहाँ बिस्तर और भोज्य पदार्थ दिये जाते थे। किन्तु वहाँ रहने का निश्चित समय प्रत्येक स्थान पर भिन्न था।

"राजाओं, वृद्धों तथा भद्र व्यक्तियों की रीति थी कि वे धार्मिक स्थान बनवायें, भूमि, घर और बाग दान में दें और खेतों के लिये बैल तथा अन्य आदमी भी दें। पक्के पट्टे लिख दिये जाते थे और बाद के राजा भी उनका उल्लंघन करने का साहस नही करते थे।"

फ़ाह्यान ने मध्य प्रदेश नामक प्रदेश की भी यात्रा की। फ़ाह्यान हमें बताता है कि मथुरा से दक्षिण की ओर का प्रदेश 'मध्य देश' (मालवा) कहलाता था। यह प्रदेश ब्राह्मण–धर्म का दृढ़ केन्द्र था।राजा विष्णु का उपासक था परन्तु हिन्दुओं और बौद्धों में परस्पर सद्भावना थी। जिससे यह स्पष्ट है कि समाज में सहिष्णुता का वातावरण था।

यद्यपि यह ध्यान देने योग्य बात है कि फ़ा–ह्यान ने सब कुछ बौद्ध दृष्टि से देखा । उसे यह भी देखना चाहिये था कि गुप्त राजाओं के संरक्षण में हिन्दू धर्म के पुनरुत्थान के कारण बौद्ध धर्म पृष्ठभूमि में आ गया था। उसके विवरण से यह पता नहीं चलता कि ब्राह्मण–धर्म भारत में मुख्यतः प्रचलित था।

पाटलिपुत्र एवम अन्य नगरों की स्थिति

अपनी भारत यात्रा के दौरान फ़ाह्यान पाटलिपुत्र में रुका था। पाटलिपुत्र से और अशोक के महल से वह अत्यंत प्रभावित हुआ।उसके विचार में कई भवनों वाला महल भूतों ने बनाया था जो पत्थरों पर पत्थर रखते गये। उन्होंने दीवारें और द्वार बनाये, चित्रकारी की और दैवी ढंग से उसमें मूर्तियां उत्कीर्ण कीं। फ़ा–ह्यान की यात्रा के समय भी अशोक का महल बना हुआ था। अशोक के बनवाये एक स्तूप के निकट फाह्यान ने दो विहार देखे जिनमें से एक में महायान शाखा के और दूसरी में हीनयान शाखा के बौद्ध भिक्षु रहते थे। दोनों विहारों में कुल छः सात सौ भिक्षु रहते थे।किन्तु अपनी विद्वता के लिये वे इतने प्रसिद्ध थे कि दूर दूर से विद्यार्थी तथा जिज्ञासु उनके भाषण सुनने आते थे। स्वयं फ़ा–ह्यान ने संस्कृत भाषा सीखने में तीन वर्ष लगाये। भिक्षुओं की नीति पुस्तकें प्राप्त करके वह अति प्रसन्न हुआ। बीस बड़े और सुसज्जित रथों वाले विशाल जुलूस की उसने बहुत सराहना की। ये जुलूस हर साल निकाले जाते हैं और दूसरे महीने की आठवीं तिथि को इन्हें शहर में घुमाया जाता है। उनमें गायक और संगीतज्ञ भी होते थे। फ़ा–ह्यान हमें बताता है कि ऐसे जुलूस और भी शहरों में भी निकाले जाते थे।

फ़ा–ह्यान हमें बताता है कि 'बोधगया' शहर वीरान और उजड़ा हुआ था। बोधगया के पवित्र स्थानों के चारों ओर जंगल बन गये थे।ईसा पूर्व पाँचवीं शताब्दी में पहाड़ की तराई में जहाँ घनी आबादी थी, अब वहाँ अल्प जनसंख्या थी। 'श्रावस्ती' में केवल 200 परिवार थे। 'कपिलवस्तु' और 'कुशीनगर' के पवित्र स्थान भी उजाड़ और खाली थे। बहुत थोड़े भिक्षु और उनके सेवक अब भी पवित्रता और अपनी श्रद्धा के कारण वहाँ रहते थे और दान पर निर्वाह करते थे।

निष्कर्षतः मौर्यों के पश्चात गुप्तों ने एक निश्चित योजना के अनुसार आदर्श शासन व्यवस्था की स्थापना की। बल्कि यह माना जाता है कि गुप्तों का शासन मौर्यों से अधिक उदार था।जिसमें प्रजा सुखी और समृद्ध थी। यह कहा जा सकता है कि फ़ाह्यान के विवरण का ऐतिहासिक महत्व है। इस विवरण से हमें गुप्तकालीन इतिहास की बहुउपयोगी और विश्वसनीय जानकारी प्राप्त होती है। उसने जो देखा और नोटिस किया उसे लिखा इस शासन प्रणाली से फ़ाह्यान बहुत प्रभावित हुआ। इतिहासकार वी० ए० स्मिथ के अनुसार प्राचीन पद्धति में इससे अच्छा शासन कभी नहीं हुआ।

स्व मूल्यांकन हेतु प्रश्न

1–निम्न लिखित विषयों पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिये।

- फ़ाह्यान के संस्मरण पर
- फ़ा–ह्यान एवम उसका यात्रा वृतांत

2.7 सारांश

उक्त अध्ययन के बाद आप समझ गये होंगे कि चन्द्रगुप्त द्वितीय एक सशक्त और प्रचन्ड शासक था और एक विस्तृत साम्राज्य की वृद्धि और उसके प्रशासन के लिये सुयोग्य था। वह बड़ी–बड़ी उपाधियों का इच्छुक था, जिनसे उसकी वीरता तथा पराक्रम का परिचय मिलता है। वह स्वयं कट्टर वैष्णव था लेकिन दूसरे संप्रदायों के अनुयायियों को भी उसने राज्य के उच्च पदों पर नियुक्त किया। समुद्रगुप्त ने विजय–कार्य आरम्भ किया और चन्द्रगुप्त द्वितीय ने उसे संपूर्ण किया। साम्राज्य की रूपरेखा में उसने केवल सीमावर्ती जातीय राज्यों तथा राजतंत्रों को ही विलीन नहीं किया बल्कि शकों और कुषाणों के राज्यों को भी साथ मिला दिया। शान्तिमय और सुगठित विशाल साम्राज्य जो उसने अपने

उत्तराधिकारी को सौंपा, यह एक महान सेनानी और सुयोग्य राजनीतिज्ञ के ही नहीं, एक प्रतिभाशाली व्यक्तित्व के प्रयत्नों का भी परिणाम था। यदि चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य को भविष्य की पीढ़ियों ने स्मरण रखा और उसके अधिक प्रतिभाशाली पिता को विस्मृत कर दिया तो इसका कारण ढूंढना कठिन नहीं है। राजनीतिक महत्ता और सांस्कृतिक पुनरुत्थान के युग को संपूर्ण करने वाला चन्द्रगुप्त द्वितीय अपनी प्रजा के हृदयों में भी स्थान प्राप्त करने में विजयी हुआ।

2.8 तकनीकी शब्दावली

- तत्परिगृहीत– पिता की इच्छानुसार सिंहासन ग्रहण करना
- शकारि– शकों का शत्रु या नाश करने वाला
- गणारि– गणों का शत्रु या नाश करने वाला

2.9 स्वमूल्यांकित प्रश्नों के उत्तर

3.3 इकाई

1– निश्चित रूप से 376–77ई० के रूप

समुद्रगुप्त

2– देखिये– इकाई 3.3

3.4 इकाई

'फो–क्यो–की'

विशाखदत्त'

कलकत्ता

2– देखिये इकाई 3.4.2

देखिये इकाई 3.4.2

3. देखिये इकाई 3.4.2

3.5 इकाई

देखिये–इकाई 3.5

3.6 इकाई

1– ') नागवंश

इ) वाकाटक नरेश

ब) मेहरौली का लौह स्तम्भ लेख'

क) विक्रमादित्य', देवराज', 'देवगुप्त',सिंहविक्रम',सिंहचन्द्र' इत्यादि

2–देखिये–

इकाई 3.6.1

प्. इकाई 3.6.4

3– देखिये–इकाई 3.6.1

3.7.

1– देखिये 3.7

देखिये 3.7.1

2.10 संदर्भ ग्रंथ सूची

- परमेश्वरी लाल गुप्त, गुप्त साम्राज्य, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, 2011.
- परमेश्वरी लाल गुप्त, प्राचीन भारत के प्रमुख अभिलेख,भाग–2 विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, 2014.
- डा० राजबली पान्डेय, प्राचीन भारत, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, 2000.
- एल पी शर्मा, प्राचीन भारत (प्रागैतिकहासिक युग से 1200 ई० तक) लक्ष्मीनारायण अग्रवाल, आगरा, 1999.
- वी०डी० महाजन, प्राचीन भारत का इतिहास, एस० चन्द एण्ड कंपनी प्रा० लि०, रामनगर, नई दिल्ली, 2016.
- डा० के०एल० खुराना, एन्शिएन्ट इन्डिया,(तिवउ मंतसपमेज जपउम जव 1206 ।.क.) चतुर्थ संस्करण , लक्शमी नारायन अग्रवाल,2000.

3.11 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

- परमेश्वरी लाल गुप्त, गुप्त साम्राज्य, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, 2011.
- परमेश्वरी लाल गुप्त, प्राचीन भारत के प्रमुख अभिलेख,भाग–2 विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, 2014.
- डा० राजबली पान्डेय, प्राचीन भारत, विश्वविद्यालय प्रकाशन,वाराणसी,2000.
- एल पी शर्मा, प्राचीन भारत (प्रागैतिकहासिक युग से 1200 ई० तक) लक्ष्मीनारायण अग्रवाल, आगरा, 1999.
- वी०डी० महाजन, प्राचीन भारत का इतिहास, एस० चन्द एण्ड कंपनी प्रा० लि०, रामनगर, नई दिल्ली, 2016.
- डा० के०एल० खुराना, एन्शिएन्ट इन्डिया,(तिवउ मंतसपमेज जपउम जव 1206 ।.क.) चतुर्थ संस्करण , लक्शमी नारायन अग्रवाल,2000.
- वी०ए०स्मिथ, अर्ली हिस्ट्री ओफ़ इण्डिया
- वासुदेव उपाध्याय, गुप्त साम्राज्य का इतिहास,भाग 1
- आर०डी०बनर्जी,दि एज आफ़ दि इम्पीरियल गुप्तज
- जे० एफ़०फ़्लीट, गुप्त अभिलेख,

- इपिग्राफिया इंडिका,जिल्द 15,
- पी वी काणे, धर्मशास्त्र का इतिहास

2.12 निबन्धात्मक प्रश्न

- चन्द्रगुप्त द्वितीय की सैन्य सफलताओं का विस्तृत विवरण दीजिये।
- चन्द्रगुप्त द्वितीय के सैन्य अभियानों पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिये।
- चन्द्रगुप्त द्वितीय के सिंहासनारोहण के समय कौन–कौन सी कठिनाइयाँ थीं, उसने उनका निराकरण किस प्रकार किया?
- भारतीय संस्कृति के पोषक के रूप में चन्द्रगुप्त द्वितीय की उपलब्धियों का वर्णन कीजिये।
- चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य के राज्यकाल की प्रमुख घटनाओं का वर्णन कीजिये। उसने भारतीय संस्कृति की समृद्धि के लिये कौन–कौन से प्रयत्न किये?
- चन्द्रगुप्त द्वितीय का इतिहास जानने में फाह्यान का विवरण कितना उपयोगी है?
- फ़ा–ह्यान कौन था? उसकी भारत यात्रा का वर्णन कीजिये।
- फ़ा–ह्यान पर एक नोट लिखिये।

लॉक दो

इकाई एकः कुमारगुप्त प्रथम, स्कन्दगुप्त की उपलब्धियाँ

1.0 उद्देश्य
1.1 कुमारगुप्त प्रथम
1.1.1 प्रस्तावना
1.1.2 कुमारगुप्त प्रथम के विषय में जानने के ऐतिहासिक स्रोत
1.1.2.1 अभिलेख
1.1.2.2 कुमारगुप्त प्रथम का कर्मदण्डा शिवलिंग अभिलेख
1.1.2.3 कुमारगुप्त प्रथम का दामोदर ताम्रपत्र अभिलेख
1.1.2.4 मन्दसोर प्रस्तर अभिलेख
1.1.2.5 बिलसद अभिलेख
1.1.2.6 गढ़वा के दो शिलालेख
1.1.2.7 मनकुँवर अभिलेख
1.1.2.8 अन्य अभिलेख
1.3 मुद्रायें
1.3.1व्याघ्र–निहन्ता प्रकार
1.3.2 अश्वमेघ प्रकार
1.3.3 वीणावादक प्रकार
1.3.4 अश्वारोही प्रकार
1.3.5 धनुर्धारी प्रकार
1.4 साहित्य
1.5 गोविन्दगुप्त का प्रश्न
1.6.1 कुमारगुप्त प्रथम की सैनिक एवं राजनैतिक उपलब्धियॉं
1.6.1.1 पुष्यमित्र जाति का आक्रमण
1.6.2 कुमारगुप्त प्रथम की सांस्कृतिक उपलब्धियाँ
1.6.2.1 सहिष्णुता और निर्माण–कार्य
1.6.2.2 अश्वमेघ यज्ञ
1.7. प्रान्तीय प्रशासन
1.8. उपाधियाँ
1.9. मूल्यांकन
1.100 स्कन्दगुप्त
1.10.1 प्रस्तावना
1.10.1.1 स्कन्दगुप्त के विषय में जानने के ऐतिहासिक स्रोत
1.10.1.1.1 जूनागढ़ अभिलेख
1.10.1.1.2 कहौम का अभिलेख
1.10.1.1.3 सुपिया स्तम्भ–अभिलेख
1.10.1.1.4 इन्दौर ताम्र पत्र
1.10.1.1.5 भितरी स्तम्भ लेख
1.10.1.2 मुद्राऐं

1.10.1.3 साहित्यिक स्रोत
1.11.0 उत्तराधिकार का युद्ध
1.12.0 स्कन्दगुप्त की सैनिक एवं राजनैतिक उपलब्धियाँ
1.12.1 पुष्यमित्रों का आक्रमण
1.12.2 हूणों का आक्रमण
1.12.2.1 भितरी अभिलेख
1.12.2.2 जूनागढ़ अभिलेख
1.12.3 चन्द्रगर्भ परिपृच्छा
1.12.4 सोमदेव रचित कथासरित्सागर
1.12.5 चान्द्र व्याकरण
1.12.6 युद्धस्थल
1.12.7 नागों से संघर्ष
1.12.8 वाकाटकों से युद्ध
1.13.0 साम्राज्य विस्तार
1.14.0 स्कन्दगुप्त की सांस्कृतिक उपलब्धियाँ
1.14.1 उपलब्धियाँ और विरुद्ध
1.15.0 शासन–प्रबन्ध
1.15.1 धार्मिक सहिष्णुता
1.15.2 लोकोपकारी कार्य
1.16.0 मूल्यांकन
1.17.0 शब्दावली **(Glossary)**
1.18 स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्न
1.19.0 निबन्धात्मक प्रश्न
1.20.0 सन्दर्भ ग्रन्थ एवं इस खण्ड के लिए उपयोगी पाठ्य–पुस्तकें

1.0 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के उपरान्त आप गुप्त वंश के दो महान् शासकों कुमारगुप्त प्रथम एवं स्कन्दगुप्त के विषय में निम्नलिखित जानकारी प्राप्त कर पायेंगे– दोनों शासकों के विषय में जानने के ऐतिहसिक स्रोतों–अभिलेख एवं मुद्राओं के विषय में जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।

- गोविन्दगुप्त एवं कुमारगुप्त प्रथम के उत्तराधिकारी सम्बन्धी प्रश्न का समझ पायेगें।
- पुष्यमित्रों के आक्रमण के विषय में जानकरी मिलेगी। पुष्यमित्रों ने कुमारगुप्त प्रथम के शासनकाल में आक्रमण किया था।
- स्कन्दगुप्त के राजनैतिक एवं सांस्कृतिक उपलब्धियों को आप समझ पायेंगे। पुरूगुप्त एवं स्कन्दगुप्त के मध्य उत्तराधिकार के विवाद को सुलझा पायेंगे।
- हूणों के आक्रमण सम्बन्धी जानकारी प्राप्त कर पायेंगे।

यह इकाई दो खण्डों में विभक्त है– खण्ड (क) कुमारगुप्त प्रथम एवं खण्ड (ख) स्कन्दगुप्त के विषय में आप पढ़ेंगे।

1.1 कुमारगुप्त प्रथम

1.1.1 प्रस्तावना

कुमारगुप्त प्रथम गुप्त वंश के महानतम् शासकों की परम्परा का वाहक था। यद्यपि उसकी उपलब्धियाँ अपने पूर्वजों समुद्रगुप्त एवं चन्द्रगुप्त द्वितीय के समकक्ष तो नहीं थीं, तथापि उसने अपने पिता द्वारा प्रदत्त विशाल साम्राज्य को अक्षुण्ण बनाये रखा। ऐतिहासिक स्रोतों से हमें पता चलता है कि चन्द्रगुप्त द्वितीय विक्रमादित्य की दो रानियाँ– कुबेरनागा एवं ध्रुवदेवी (ध्रुवस्वामिनी) थी। कुबेरनागा से चन्द्रगुप्त द्वितीय को एक पुत्री हुई थी। जिसका नाम प्रभावतीगुप्ता था। प्रभावतीगुप्ता का विवाह वाकाटक नरेश रूद्रसेन द्वितीय के साथ विवाह हुआ था। प्रभावतीगुप्ता ने वाकाटक साम्राज्य को संचालित करने में महत्वपूर्ण योगदान दिया था। जिसके कारण गुप्त–वाकाटक सम्बन्ध अत्यन्त प्रगाढ़ हुए थे। चन्द्रगुप्त द्वितीय की दूसरी रानी ध्रुवदेवी से दो पुत्र हुए जिनमें से एक का नाम कुमारगुप्त प्रथम तथा दूसरे का नाम गोविन्दगुप्त था। गोविन्दगुप्त को लेकर इतिहासकारों के मध्य विवाद रहा है। कतिपय इतिहासकारों की धारणा रही है कि चन्द्रगुप्त द्वितीय विक्रमादित्य की मृत्यु के बाद कुमारगुप्त प्रथम एवं गोविन्दगुप्त के मध्य उत्तराधिकार का युद्ध लड़ा गया जिसमें कुमारगुप्त प्रथम विजयी रहा और गुप्त साम्राज्य के सिंहासन पर बैठा।

1.1.2 कुमारगुप्त प्रथम के विषय में जानने के ऐतिहासिक स्रोत

_कुमारगुप्त प्रथम के शासनकाल की घटनाओं के विषय में जानकारी प्राप्त करने के मुख्य स्रोत अभिलेख एवं मुद्राऐं है–

1.1.2.1 अभिलेख

कुमारगुप्त प्रथम के अब तक कुल 18 अभिलेख प्राप्त हो चुके हैं। इतने अभिलेख किसी अन्य गुप्त शासक के नही मिले है। कतिपय प्रमुख अभिलेखों का विवरण निम्नलिखित है –

1.1.2.2 कुमारगुप्त प्रथम का कर्मदण्डा शिवलिंग अभिलेख

उत्तर प्रदेश के फैजाबाद जनपद से शाहगंज फैजाबाद वाली सड़क पर फैजाबाद से लगभग 12 मील दूर स्थित कर्मदण्डा गाँव के समीप भराठीडीह टीले से प्राप्त एक शिवलिंग के अठपहले आधार पर यह लेख अंकित है। इस पर गुप्त संवत् 117 (436–37) का उल्लेख है। यह कुमारगुप्त प्रथम के शासन काल का है जिसे चन्द्रगुप्त द्वितीय के मन्त्री शिखर स्वामी का पुत्र कुमारगुप्त प्रथम के कुमारामात्य पृथ्वीसेन ने उत्कीर्ण कराया है। इस अभिलेख की लिपि गुप्तकालीन ब्राह्मी तथा भाषा संस्कृत है। इसका विषय 'पृथ्वीश्वर के लिए दान' है। गुप्त अभिलेख प्रायः 'सिद्धम्' से प्रारम्भ होते हैं, परन्तु यह अभिलेख 'नमोमहादेवाय' से प्रारम्भ होता है। इससे शैव धर्म की प्रधानता स्पष्ट होती है। कुमारगुप्त प्रथम की उपाधि अभिलेखों में 'परमभागवत्' है, उसने अश्वमेघ यज्ञ करके अश्वमेघ प्रकार का सिक्का ढलवाया था। गंगाधर लेख में विष्णु मन्दिर को दान आदि उसके वैष्णवनुयायी होने की पुष्ट करते हैं। परन्तु शैव मन्त्री की नियुक्ति और शैव मंन्दिर का दान कुमारगुप्त की धार्मिक सहिष्णुता का परिचायक है। धार्मिक इतिहास के साथ–साथ यह अभिलेख गुप्तकालीन प्रशासनिक व्यवस्था पर भी प्रकाश डालता है। इस समय अधिकारियों का पद वंशानुगत था। तभी चन्द्रगुप्त द्वितीय के मन्त्री कुमारामात्य शिखरस्वामी के पुत्र पृथ्वीषेण महाराजा कुमारगुप्त के मन्त्री और बलाधिकृत नियुक्त किया गया था। सम्भवतः तब एक मन्त्री को योग्यता के अनुसार कई पद दिए जाते थे, तभी पृथ्वीषेण को कुमारामात्य और महाबलाधिकृत दोनों ही पद प्रदत्त थे। 'कुमारामात्य' एक प्रशासनिक अधिकारी था जबकि महाबलाधिकृत गुप्तकाल का प्रधान सेनापति था। उसके अधीन अनेक महासेनापति थे। यह अभिलेख नगरों के इतिहास के लिए भी

महत्वपूर्ण है, उसमें अध्योया नगर की चर्चा विद्याव्यसनी नगर के नाम से हुई है। आर.एस. शर्मा की मान्यता रही है कि गुप्तकाल से नगरों का पतन प्रारम्भ हो गया था। धार्मिक कार्य हेतु भूमि अनुदान दिए जाने का उल्लेख भी इस अभिलेख में हुआ है।

1.1.2.3 कुमारगुप्त प्रथम का दामोदर ताम्रपत्र अभिलेख

आधुनिक बंगलादेश के दिनाजपुर जिले के दामोदरपुर ग्राम से प्राप्त चार ताम्रपत्र अभिलेखों में से यह एक है। तिथि एवं अभिलेख में वर्णित शासक के अनुसार यह कुमारगुप्त (पृथ्वीपति) का है। यह अभिलेख कुमारगुप्त कालीन इतिहास जानने का महत्वपूर्ण स्रोत है। इसमें कुमारगुप्त की उपाधियाँ परमदैवत, परमभट्टारक, महाराजाधिराज अंकित हैं। ये उपाधियाँ इसके पूर्व एवं बाद के अभिलेखों से भी ज्ञात होती हैं। यह अभिलेख प्रशासन के ऊपर भी व्यापक प्रकाश डालता है। इससे ज्ञात होता है कि राज्य प्रान्तों में विभक्त था। प्रान्तों को भुक्ति कहते थे जिसका अधिकारी उपरिक (राज्यपाल) होता था। प्रान्त में कई जिले होते थे जिन्हें विषय कहा जाता था। जिला का शासक कुमारामात्य था। इसका कार्यालय प्रधान नगर में होता था जिसे 'अधिष्ठानाधिकरण' कहते थे। इसकी सहायता के लिए एक प्रतिनिधि समिति थी जिसमें चार सदस्य थे– नगरश्रेष्ठि, सार्थवाह, प्रथम कुलीक तथा प्रथम कायस्थ। यहाँ पुण्ड्रवर्धन भुक्ति के अन्तर्गत कोटिवर्ष विषय का उल्लेख है जिसका कुमारामात्य वेत्रवर्मा था। इसकी समिति में नगरश्रेष्ठि धृतपाल, सार्थवाह बन्धुमित्र, प्रथम कुलिक घृतिमित्र और प्रथम कायस्थ शाम्बपाल था।

यहाँ पुस्तपाल का भी उल्लेख है। यह सम्भवतः लेखाधिकारी या दस्तावेजों का अधिकारी था। इसके पास भूमि का पूरा विवरण क्रय–विक्रय के सम्बन्ध में रहता था तथा वह कागज के आधार पर बताता था कि भूमि की प्रकृति किस प्रकार की है? क्या उसे बेचा जा सकता है? अथवा कर रहित करने में राज्य को कोई विशेष हानि नहीं होगी।

1.1.2.4 मन्दसोर प्रस्तर अभिलेख

यह अभिलेख शिवना नदी के किनारे मध्य प्रदेश के मन्दसोर जिले में महादेव घाट की दीवाल में लगे एक काले प्रस्तर खण्ड पर उत्कीर्ण है। इसी स्थान का प्राचीन नाम दशपुर था जिसे आज मन्दसोर कहते हैं। इसमें मालव संवत 493 तथा 529 का उल्लेख है तथा कुमारगुप्त और उसके गोप्ता विश्वकर्मा एवं उसके पुत्र बन्धुवर्मा का नाम आया है। यह एक धर्मपरक लेख है जिसमें दशपुर में सूर्यमंदिर निर्माण का वर्णन है। साथ ही यह एक प्रशस्ति प्रकार का लेख है जिसकी रचना वत्सभट्टि ने की थी। वह संस्कृत का प्रकाण्ड विद्वान था। 44 श्लोकों का यह अभिलेख संस्कृत साहित्य की अक्षुण्ण निधि होने के साथ–साथ ऐतिहासिक सामग्री से परिपूर्ण है।

इस अभिलेख से निम्नांकित ऐतिहासिक तथ्य प्रकाश में आते हैं–

(1) मन्दसोर प्राचीन भारत का एक अत्यन्त महत्वपूर्ण नगर जान पड़ता है क्योंकि यहाँ से अनेक अभिलेख मिले हैं। इस अभिलेख में दशपुर के सूर्य मंदिर का निर्माण और पुननिर्माण का उल्लेख है। इससे पता चलता है कि पश्चिमी भारत के मालवा क्षेत्र में सूर्य उपासना का व्यापक प्रचलन था। इसकी पुष्टि इन्दौर के स्कन्दगुप्तकालीन ताम्रलेख से होती है जो सूर्य की अर्चना से प्रारम्भ होता है। साथ ही महाराज सर्वनाग द्वारा सूर्यमंदिर के दान का उल्लेख तथा हूण शासन मिहिरकुल द्वारा अपने शासन के 15वें वर्ष में सूर्य मंदिर का निर्माण भी पश्चिम भारत में सूर्य उपासना के प्रमाण हैं।

(2) कुमारगुप्त एक धर्मसहिष्णु शासक था इसका प्रमाण यह अभिलेख है। उसकी उपाधि परमभागवत है। यह लेख महादेव घाट पर मिला है जो शैव उपासना की ओर इंगित करता है। वह स्वयं कार्तिकेय का

पूजक था क्योंकि उसके सिक्कों पर मयूर की आकृतियाँ बहुतायत से मिली है। विहार का होना बौद्ध और जैन धर्म के प्रति सद्भाव को व्यक्त करता है।

(3) इस अभिलेख से शासन व्यवस्था पर भी प्रकाश पड़ता है। यहाँ कुमारगुप्त का गोप्ता विश्वकर्मा को बताया गया है तथा उसके बाद उसके पुत्र बन्धुवर्मा का उल्लेख है। इस अभिलेख में गोप्ता के उन्हीं गुणों की चर्चा की गयी है, जिनकी चर्चा स्कन्दगुप्त के सौराष्ट्र प्रदेश के गोप्ता पर्णदत्त के लिए जूनागढ़ अभिलेख में की गयी है। इससे पता चलता है कि गुप्तशासक अधिकारियों की नियुक्ति के पूर्व उनमें लोक कल्याणकारी गुणों की जांच करते थे। इस अभिलेख में 'लाट' विषय का वर्णन है। इससे स्पष्ट है कि राज्य विषयों में बटाँ होता था।

(4) तत्कालीन सामाजिक–आर्थिक जीवन के विषय में ज्ञान मिलता है। इस लेख में यहाँ के निवासियों के उत्तम आचरण एवं विनम्र स्वभाव का वर्णन मिलता है। इसमें श्रेणी संगठन पर भी प्रकाश पड़ता है। श्रेणियां सैनिक कार्य किया करती थीं, इसका प्रमाण इस लेखमें वर्णित 'श्रेणी–बल' शब्द से हो जाती है। श्रेणियां अपने सिक्के चलाती थीं। श्रेणियां बैंकों के कार्य भी करती थीं, लोग इनमें अपना पैसा जमा करते थे।

(5) आर्थिक जीवन में इन्हें अपना निर्णय लेने की स्वतन्त्रता थी। इस अभिलेख से ज्ञात होता है कि सिल्क बुनने वाली श्रेणी ने दशपुर जाने और वहाँ सपरिवार बसने का निर्णय स्वयं लिया था।

(6) इस लेख में मालव संवत् का भी उल्लेख है।

(7) मन्दसोर अभिलेख में वर्णित है कि कुमारगुप्त प्रथम के शासन में समुद्र उसके राज्य की मेखला बना रहा था तथा सुमेरी और कैलाश पर्वत ऐसे उन्नत थे जैसे वृहत पयोधर हों। यह पंक्ति कुमारगुप्त के साम्राज्य विस्तार की ओर संकेत करती हैं।

दामोदरपुर ताम्रपत्र से बंगाल पर तथा मन्दसोर अभिलेख से मालवा पर उसकी सत्ता का ज्ञान मिलता है।

1.2.1.2.5 बिलसद अभिलेख

बिलसद उत्तर प्रदेश के एटा जिले में स्थित है। इसमें कुमारगुप्त प्रथम तक गुप्तों की वंशावली प्राप्त होती है। इस लेख में ध्रुवशर्मा नामक एक ब्राह्मण द्वारा स्वामी महासेन (कार्तिकेय) के मंदिर तथा धर्म संघ बनवाये जाने का उल्लेख मिलता है। यह कुमारगुप्त के शासनकाल का प्रथम अभिलेख है जिस पर गुप्त संवत् 96 अर्थात 415 ई0 की तिथि अंकित है।

1.2.1.2.6 गढ़वा के दो शिलालेख

इलाहाबाद जिले में स्थित गढ़वा से कुमारगुप्त के दो शिलालेख मिले हैं। इन पर गुप्त संवत् 98 = 417 ई0 की तिथि उत्कीर्ण है। इनमें किसी दानगृह को 10 और 12 दीनारें दिए जाने का वर्णन है।

1.2.1.2.7 मनकुँवर अभिलेख

मनकुँवर इलाहाबाद जिले में स्थित है। इस लेख में गुप्त संवत् 129=448 ई0 की तिथि अंकित है। यह बुद्ध प्रतिमा के निचले भाग पर अंकित है। इस मूर्ति की स्थापना बुद्धमित्र नामक बौद्ध भिक्षु द्वारा कराई गई थी।

1.2.1.2.8 अन्य अभिलेख

उपरोक्त अभिलेखों के अतिरिक्त कुमारगुप्त प्रथम के शासन काल के प्राप्त अभिलेखों में मथुरा का लेख, सॉची अभिलेख, उदयगिरी गुहा लेख, तुमैन अभिलेख तथा धनदैह ताम्रपत्र और वैग्राम ताम्रपत्र प्रमुख हैं।

1.3.1 मुद्रायें

अभिलेखों के अतिरिक्त भारत के विशाल भू–भाग से कुमारगुप्त की स्वर्ण, रजत तथा ताम्र मुद्राऐं प्राप्त हुई हैं। उसकी स्वर्ण मुद्राओं में कतिपय कलात्मक दृष्टि से अत्यन्त उच्चकोटि की है और कुछ निम्न कोटि की। कुमारगुप्त प्रथम ने निम्नलिखित प्रकार की स्वर्ण मुद्रायें जारी करवाई–

1.3.1.1व्याघ्र–निहन्ता प्रकार

इनके पुरोभाग पर राजा व्याघ्र को धनुष–बाण से मारता हुआ अंकित किया गया है। पृष्ठ भाग पर देवी मकर की पीठ पर आसीन है। इस ओर लेख 'कुमारगुप्तोऽधिराजा' अंकित है।

1.3.1.2 अश्वमेघ प्रकार

इस प्रकार की आधे दर्जन से अधिक मुद्राऐं उपलब्ध हैं। इनके पुरोभाग पर यज्ञ–यूप से बंधे हुए तथा जीन से अलंकृत अश्व का अंकन है और पृष्ठभाग पर 'श्री अश्वमेघ महेन्द्रः' लेख अंकित है।

1.3.1.3 वीणावादक प्रकार

इस प्रकार की केवल दो ही मुद्राऐं प्राप्त है। इनके पुरोभाग पर सम्राट ऊँची पीठ वाले पर्यक पर आसीन है और गोढ़ में रखी वीणा को बजा रहा है। इसी ओर राजा का नाम उपाधि के सहित (महाराजाधिराज श्रीकुमारगुप्तः) अंकित है। इसके पृष्ठभाग पर देवी कुण्डल, हार तथा कंकण पहिने पर्यंक पर आसीन है।

1.3.1.4 अश्वारोही प्रकार

इनके पुरोभाग पर सम्राट घोड़े की पीठ पर आसीन दिखाया गया है। इस ओर लेख 'पृथिवी–तलाबरशशी कुमारगुप्तो जयत्यजितः' अंकित है।

1.3.1.5 धनुर्धारी प्रकार

ये पर्याप्त संख्या में निर्मित की गई थी। इनके पुरोभाग पर सम्राट बाई ओर दाहिने हाथ में बाण तथा बायें हाथ में धनुष लिये खड़ा है। इस ओर लेख प्रायः 'महाराजाधिराज श्री कुमारगुप्त' अंकित है। इनके अलावा कुमारगुप्त ने छत्रप्रकार, सिंहनिहन्ताप्रकार, राजारानीप्रकार, खड्गधारी प्रकार, गजारोही प्रकार, गजारोधी–सिंहनिहन्ता प्रकार, गौंडा–निहन्ता प्रकार, कार्त्तिकेय प्रकार, अप्रतिघ प्रकार स्वर्ण मुद्राऐं भी जारी करवाई जिन पर उसकी उपाधियां अंकित है। कुमारगुप्त प्रथम की रजत एवं ताम्र मुद्राऐं भी प्राप्त हुई हैं जिन पर परमभागवत् महाराजाधिराज एवं राजाधिराज उपाधियाँ अंकित है।

1.4.0 साहित्य

'आर्यमंजुश्रीमूलकल्प' में कुमारगुप्त प्रथम की चर्चा मिलती है। 'कथासरित्सागर' तथा 'चन्द्रगर्भ परिपृच्छा' जैसे ग्रंथों में वर्णित महेन्द्रादित्य एवं 'महेन्द्रसेन' उपाधि कुमारगुप्त प्रथम की प्रतीत होती हैं।

1.5.0 गोविन्दगुप्त का प्रश्न

कतिपय इतिहासकारों की मान्यता रही है कि चन्द्रगुप्त द्वितीय के उपरान्त प्रथम कुमारगुप्त नहीं बल्कि गोविन्द गुप्त शासक बना था। जो चन्द्रगुप्त का ज्येष्ठ पुत्र था। इस मत का प्रतिपादन डा0 भण्डारकर ने किया था तथा डा0 पी0 एल0 गुप्ता जैसे अनेक विद्वानों ने इसका समर्थन किया है। अपने मत के समर्थन में ये विद्वान वैशाली की राजमुद्रा का उल्लेख करते हैं, जिसमें गोविन्दगुप्त को चन्द्रगुप्त व

ध्रुवदेवी का पुत्र बताया गया है एवं उसे 'महाराज' कहा गया है। इसके अतिरिक्त ये विद्वान अपने प्रमाण के तौर पर मन्दसौर अभिलेख का भी उल्लेख करते हैं। किन्तु अधिकांश विद्वान इस तर्क से सहमत नहीं हैं तथा प्रमुख गुप्त वंशावलियों के आधार पर, जहॉ चन्द्रगुप्त द्वितीय के पश्चात् कुमारगुप्त प्रथम का नाम दिया गया है। यह मानते हैं कि गोविन्दगुप्त सम्भवतः वैशाली का स्थानीय शासक था तथा कुमारगुप्त प्रथम ही गुप्त सिंहासन का उत्तराधिकारी था।

1.6.1 कुमारगुप्त प्रथम की सैनिक एवं राजनैतिक उपलब्धियॉ

लगभग 40 वर्षों तक कुमारगुप्त ने शासन किया। उसका राज्यकाल 415 ई0 से 455 ई0 तक था। इन 40 वर्षों में कुमारगुप्त प्रथम ने कोई सैनिक सफलता तो अर्जित नहीं की, परन्तु अपने पूर्वजों से जो विशाल साम्राज्य प्राप्त हुआ था, उसे उसने अक्षुण्ण बनाये रखा। उसके राज्यकाल में शान्ति और सुव्यवस्था कायम रही। मन्दसौर अभिलेख से पता चलता है कि कुमारगुप्त का राज्य चारों ओर से समुद्र से घिरा हुआ था। जैसा कि ऊपर वर्णित किया गया है लगभग 13 अभिलेख कुमारगुप्त प्रथम के प्राप्त हुए हैं जो उसके साम्राज्य की सीमाओं को निश्चित करने में हमारी सहायता करते हैं। इन अभिलेखों के आधार पर यह स्पष्ट होता है कि उसके साम्राज्य में बंगाल, पश्चिमी भारत में पूर्वी मालवा, पश्चिमी मालवा, उत्तरप्रदेश, कामरूप प्रदेश सम्मिलित थे। डा0 रमेशचन्द्र मजूमदार और डा0 रायचौधरी का विचार है कि नर्मदा नदी के दक्षिण का कुछ क्षेत्र कुमारगुप्त प्रथम के आधिपत्य में था। 'व्याघ्र शैली' की मुद्राऐं इस विचार का मुख्य आधार हैं। उसके कुछ सिक्कों के ऊपर 'व्याघ्रवल पराक्रमः' अर्थात 'व्याघ्र के समान बल एवं पराक्रम वाला' की उपाधि अंकित मिलती है। इस आधार पर डा0 हेमचन्द्रराय चौधरी ने यह मत प्रतिपादित किया है कि कुमारगुप्त प्रथम अपने पितामह (समुद्र गुप्त) के समान दक्षिणी अभियान पर गया तथा नर्मदा नदी को पारकर व्याघ्र वाले जंगली क्षेत्रों को अपने अधीन करने का प्रयास किया सतारा जिले (महाराष्ट्र) से उसकी 1395 मुद्रायें मिली हैं। उसकी 13 मुद्राऐं एलिचपुर (बरार) से मिलती है। किन्तु मात्र सिक्कों के आधार पर ही उसकी विजय का निष्कर्ष नहीं निकाला जा सकता। राधा कुमुद मुकर्जी ने खंग–निहन्ता प्रकार के सिक्कों, जिनमें कुमारगुप्त को गैंडा का शिकार करते हुए दिखाया गया है, के आधार पर उसकी असम विजय का निष्कर्ष निकाला है क्योंकि गैंडा असम में ही पाये जाते हैं। यह मत भी काल्पनिक जान पड़ता है।

1.6.1.1 पुष्यमित्र जाति का आक्रमण

कुमारगुप्त प्रथम के अभिलेखों से पता चलता है कि उसके शासन के प्रारम्भिक वर्ष अत्यन्त शान्तिपूर्ण रहे और वह व्यवस्थित तरीके से शासन करता रहा। परन्तु उसके शासन का अन्तिम चरण शान्तिपूर्ण नहीं था। स्कन्दगुप्त के भीतरी अभिलेख से ज्ञात होता है कि इस काल में पुष्यमित्रों ने गुप्त–साम्राज्य पर आक्रमण किया। इस अभिलेख के अनुसार इस आक्रमण के परिणाम स्वरूप इस कुल की राजलक्ष्मी विचलित हो उठी। इसे स्थिर करने में स्कन्दगुप्त को कठोर प्रयास करना पड़ा पुष्यमित्रों के वेग को रोकने के लिए उसे पूरी रात्रि युद्धभूमि में ही व्यतीत करनी पड़ी। भीतरी लेख से पता चलता है कि पुष्यमित्रों की सैन्यशक्ति एवं साधन विकसित थे तथा उनसे मुकाबला करना अत्यन्त कठिन कार्य था।इसी कारण इस अभिलेख में तीन बार गुप्तों की लक्ष्मी विचलित होने का उल्लेख है। जिससे इस आक्रमण की तीव्रता का अनुमान लगाया जा सकता है। कुमारगुप्त इस समय तक वृद्ध हो चुका था। इस कारण उसके पुत्र युवराज स्कन्दगुप्त को इस युद्ध के संचालन का नेतृत्व करना पड़ा। स्कन्दगुप्त ने बड़ी कुशलता–पूर्वक पुष्यमित्रों के आक्रमण को विफल कर दिया तथा अपनी योग्यता और शक्ति को प्रदर्शित किया। स्कन्दगुप्त की यह विजय अत्यन्त महत्वपूर्ण थी, क्योंकि इस विजय से पुष्यमित्रों ने उत्पात, भय और आतंक की जो स्थिति उत्पन्न कर दी थी वह समाप्त हो गयी और उनके विचलित कर देने वाले प्रहारों से गुप्तवंश विलुप्त होने से बच गया।

अब प्रश्न यह उठता है कि ये पुष्यमित्र कौन थे? इतिहासकारों के मध्य यह विवादित प्रश्न रहा है। वस्तुतः इस आक्रमण का विवरण स्कन्दगुप्त के भीतरी अभिलेख के अलावा अन्यत्र कहीं और नहीं मिलता। डा0 राखलदास बनर्जी उन्हें हूण तथा हर्नले उन्हें मैत्रक मानते हैं। डा0 स्मिथ पुष्यमित्रों को पश्चिमोत्तर प्रदेश का निवासी तथा डा0 के0 पी0 जायसवाल उन्हें पश्चिमी मालवा का निवासी मानते हैं। फ्लीट के अनुसार वे नर्मदा नदी के तटीय प्रदेश के निवासी थे। कतिपय विद्वान वाकाटक नरेश नरेन्द्रसेन को पुष्यमित्रों का नेता मानते हैं। दिवेकर महोदय ने भितरी लेख में 'पुष्यमित्राश्च' के स्थान पर 'युद्ध मित्रांश्च' पाठ पढ़ा है तथा यह प्रतिपादित किया है कि यहॉ किसी जाति के आक्रमण का उल्लेख न होकर साधारण शत्रुओं का ही वर्णन हुआ है। लेकिन इतिहासकारों ने इस तर्क से असहमति जताई है। विभिन्न स्रोतों से पता चलता है कि प्राचीन भारत में पुष्यमित्र नामक जाति थी। वायुपुराण तथा जैनकल्पसूत्र में इस जाति का उल्लेख मिलता है। वे नर्मदा नदी के मुहाने के समीप मेकल में शासन करते थे। पुष्यमित्रों के पहचान का निर्धारण करना कठिन तो अवश्य है किन्तु इतना स्पष्ट है कि आक्रमणकारी बुरी तरह परास्त हुए और उन्हें सफलता नहीं प्राप्त हो सकी। इस विजय की सूचना मिलने से पहले ही वृद्ध सम्राट कुमारगुप्त दिवंगत हो चुका था।

1.6.2 कुमारगुप्त प्रथम की सांस्कृतिक उपलब्धियाँ

1.6.2.1 सहिष्णुता और निर्माण–कार्य

कुमारगुप्त प्रथम का शासन–काल सहिष्णुता और सार्वजनिक निर्माण कार्यों का काल था। वह अपने पूर्वजों की भॉति वैष्णव था। उसके मुद्राओं एवं अभिलेखों पर उसकी 'परमभागवत' की उपाधि मिलती है। कतिपय मुद्राओं पर विष्णु के वाहन गरूड़ की आकृति भी उत्कीर्ण है। परन्तु उसने अपने पूर्वजों की धार्मिक सहिष्णुता को कायम रखा। ह्वेनसांग ने अपने यात्रा वृतान्त में उल्लेख किया है कि शक्रादित्य (कुमारगुप्त प्रथम महेन्द्रादित्य) ने नालन्दा बौद्ध बिहार की स्थापना की थी। करमदण्डा अभिलेख से पता चलता है कि उसका एक उच्च पदाधिकारी पृथ्वीषेण, जो उसका पहले मंत्री और कुमारामात्या था तथा बाद को उसका महाबलाधिकृत (सेनापति) हो गया, शैव था। करमदण्डा अभिलेख में उसके द्वारा एक शैव–मूर्ति की स्थापना का उल्लेख मिलता है। मन्दसोर अभिलेख से ज्ञात होता है कि पश्चिमी मालवा के उसके गवर्नर बन्धुवर्मा के शासनकाल में एक तन्तुवाय–श्रेणी ने दशपुर में एक सूर्यमंदिर का निर्माण करवाया था। बिलसड़ के अभिलेख से पता चलता है कि ध्रुवशर्मा ने स्वामी महासेन (कार्तिकेय) का एक मंदिर बनवाया था। मनकुँवर के अभिलेख में बुद्धमित्र द्वारा एक बुद्ध–प्रतिमा की स्थापना का उल्लेख मिलता है। उदयगिरी के एक गुहा लेख में शंकर द्वारा जैन तीर्थकर पार्श्वनाथ की मूर्ति–स्थापना का ज्ञान प्राप्त होता है। उसके अन्यान्य उल्लेखों में इसी प्रकार के अन्यान्य निर्माण–कार्यों तथा दानों के उल्लेख मिलते हैं। इनमें प्रकट होता है कि देश में वैष्णव, शैव, सूर्योपासक, बौद्ध एवं जैन आदि सभी प्रेमपूर्वक रहते थे। उनमें किसी प्रकार का धार्मिक वैमनस्य नहीं था। जनता अपनी इच्छानुसार विभिन्न धर्मों के मंदिरों और मूर्तियों का निर्माण कराती थी तथा उन्हें दान देती थी। राजा की दृष्टि में भी कोई पक्षपात नहीं था। वह एक मात्र योग्यता के आधार पर अपने पदाधिकारियों को नियुक्त करता था, चाहे वे किसी भी सम्प्रदाय के हों।

1.6.2.2 अश्वमेघ यज्ञ

कुमारगुप्त के सिक्कों से ज्ञात होता है कि उसने अश्वमेघ यज्ञ का अनुष्ठान किया था। अश्वमेघ प्रकार के सिक्कों के मुख भाग पर यज्ञयूप में बधे हुए घोड़े की आकृति तथा पृष्ठ भाग पर 'श्री अश्वमेघमहेन्द्रः' मुद्रालेख अंकित है। लेकिन कुमारगुप्त ने किस उपलब्धि के लिए यह अनुष्ठान किया था, पता नहीं चलता।

1.7.0 प्रान्तीय प्रशासन

प्रान्त को भुक्ति कहा जाता था। कुमारगुप्त प्रथम के अभिलेखों से निम्नलिखित प्रान्तीय पदाधिकारियों के नाम ज्ञात होते हैं–

चिरादत्तः– दामोदर के ताम्रपत्र में इसे पुण्ड्रवर्धन भुक्ति (उत्तरी बंगाल) का राज्यपाल बताया गया है।

घटोत्कचगुप्तः– तुमैन (म0 प्र0) के लेख में इसे एरण प्रदेश (पूर्वी मालवा) का शासक कहा गया है।

बन्धुवर्माः– यह पश्चिमी मालवा क्षेत्र का राज्यपाल था। इसकी सूचना मन्दसोर अभिलेख में मिलती है।

पृथिवीषेणः– करमदण्डा अभिलेख से पता चलता है कि पृथिवीषेण अवध प्रदेश का सचिव, कुमारामात्य तथा महाबलाधिकृत के पदों पर कार्य कर चुका था। गुप्तकाल में प्रान्तीय शासक को 'उपरिक महाराजा' कहा जाता था।

1.8.0 उपाधियाँ

कुमारगुप्त प्रथम के लिए मुद्राओं एवं साहित्य में महेन्द्रादित्य, श्री महेन्द्र, महेन्द्रकुमार, अजितमहेन्द्र, सिंहमहेन्द्र गुप्तकुलव्योम की उपाधियाँ प्रयुक्त हुई हैं। उसकी सबसे प्रमुख उपाधि महेन्द्रादित्य थी। ह्वेनसांग ने एक राजा शक्रादित्य का उल्लेख किया है। संस्कृत में शक्र और महेन्द्र दोनों इन्द्र के पर्यायवाची हैं। विमलचन्द्र पाण्डे के विचारानुसार ह्वेनसांग के शक्रादित्य का समीकरण कुमारगुप्त प्रथम से करना चाहिए।

1.9.0 मूल्यांकन

कुमारगुप्त प्रथम अपने पूर्वजों की तरह विजेता तो नहीं था फिर उसने अपने पैतृक साम्राज्य को सुरक्षित बनाये रखा। सौभाग्य वश उसे युवराज स्कन्दगुप्त एवं प्रान्तीय पदाधिकारियों का कुशल प्रशासनिक और सैनिक सहयोग प्राप्त था। धार्मिक सहिष्णुता का अनुसरण करते हुए कुमारगुप्त ने सभी धर्मों के प्रति आदर–भाव दिखाया और बिना धार्मिक भेदभाव के वैष्णव होते हुए भी शैवों और बौद्धों को उच्च पद प्रदान किए। उसका शासन काल अधिकांशतः शान्ति एवं समृद्धि का काल था। गुप्तवंश में सबसे अधिक अभिलेख एवं मुद्राऐं कुमार गुप्त की ही हैं। उसकी मयूर शैली की मुद्रा गुप्त मुद्राओं में सबसे अधिक कलात्मक है। उसके मुद्रालेख सुन्दर पदावली के लिए प्रसिद्ध हैं। वत्सभट्टि का मन्दसोर अभिलेख संस्कृत काव्य का अनुठा नमूना है। वास्तव में कुमार गुप्त का 40 वर्षों का शासन काल स्वर्णयुग का प्रतिबिम्ब है।

1.10.0 स्कन्दगुप्त

1.10.1 प्रस्तावना

स्कन्दगुप्त गुप्त–वंश का अन्तिम प्रतापी शासक था। कुमारगुप्त की मृत्यु के उपरान्त 455 ई0 में स्कन्दगुप्त सिंहासनारूढ़ हुआ। युवराज के रूप में उसने अपनी सैनिक कुशलता एवं बाहुबल का परिचय पुष्यमित्रों को परास्त करके दे दिया था। वह योग्य पिता का सुयोग्य पुत्र था। जूनागढ़ अभिलेख में उसके शासन की प्रथम तिथि गुप्तसवंत् 136=455 ई0 उत्कीर्ण मिलती है। गढ़वा अभिलेख एवं चॉदी के सिक्कों में उसकी अन्तिम तिथि गुप्त संवत् 148=467 ई0 दी हुई है। अतः स्कन्दगुप्त ने 455 ई0 से 467 ई0 तक कुल 12वर्षों तक राज्य किया।

1.10.1.1 स्कन्दगुप्त के विषय में जानने के ऐतिहासिक स्रोत

स्कन्दगुप्त के शासनकाल पर प्रकाश डालने वाले महत्वपूर्ण स्रोत उसके अभिलेख एवं सिक्के हैं।
स्कन्दगुप्त के अभिलेखों का विवरण इस प्रकार है–

1.10.1.1.1 जूनागढ़ अभिलेख

यह स्कन्दगुप्त का सर्वाधिक महत्वपूर्ण अभिलेख है, जो गुजरात में स्थित जूनागढ़ नामक नगर के समीपवर्ती एक पर्वत की शिला पर उत्कीर्ण है। इस अभिलेख में स्कन्दगुप्त के शासनकाल की प्रथम तिथि गुप्त संवत् 136=455 ई0 अंकित है। इस अभिलेख से पता चलता है कि स्कन्दगुप्त ने हूणों को परास्त कर सौराष्ट्र प्रान्त में पर्णदत्त को अपना गोप्ता (राज्यपाल) नियुक्त किया था। उस प्रदेश में उसने लोकोपकारिता का कार्य करवाया था। इस अभिलेख में उसके गिरनार के पुरपति चक्रपालित द्वारा सुदर्शन झील के बॉध के पुननिर्माण का विवरण सुरक्षित है तथा चक्रपालित द्वारा उस झील के तट पर एक विष्णु मंदिर के निर्माण का उल्लेख मिलता है। यह भी पता चलता है कि उस समय काल गणना गुप्त–संवत् में की जाती थी।

1.10.1.1.2 कहौम का अभिलेख

यह अभिलेख उत्तर प्रदेश के गोरखपुर जिले में स्थित कहौम नामक स्थान पर एक स्तम्भ के ऊपर उत्कीर्ण है। मद्र नामक एक व्यक्ति द्वारा पॉच जैन तीर्थकरों की प्रतिमाओं के निर्माण का विवरण इस स्तम्भ लेख में उत्कीर्ण है। इसकी तिथि गुप्त संवत् 141=460 ई0 है। इस लेख के अनुसार इस समय गुप्त साम्राज्य में शान्ति स्थापित हो चुकी थी।

1.10.1.1.3 सुपिया स्तम्भ–अभिलेख

यह अभिलेख मध्य प्रदेश के रीवा जिले में स्थित सुपिया नामक स्थान से प्राप्त हुआ है, जिसमें गुप्त संवत् 141 अर्थात् 460 ई0 की तिथि अंकित है। इस अभिलेख में गुप्तवंश को घटोत्कच–वंश कहा गया है तथा इसमें स्कन्दगुप्त के 'विक्रमादित्य' उपाधि का उल्लेख भी मिलता है।

1.10.1.1.4 इन्दौर ताम्र पत्र

यह ताम्रपत्र उ0 प्र0 के बुलन्दशहर जिले में स्थित इन्दौर नामक स्थल से प्राप्त हुआ है। इस अभिलेख से पता चलता है कि एक तैलिक श्रेणी ने एक सूर्य–मंदिर में दीपक जलाने के निमित्त एक दान का प्रबन्ध किया था। इसमें गुप्त संवत् 146=465 ई0 की तिथि अंकित है। यह वर्ष स्कन्दगुप्त के अभ्युत्रतिमय एवं विजयपूर्ण शासन का वर्ष था।

1.10.1.1.5 भितरी स्तम्भ लेख

उत्तर–प्रदेश के गाजीपुर जिले में स्थित भितरी नामक स्थल से तिथि विहिन यह स्तम्भलेख प्राप्त हुआ है। यह स्कन्दगुप्त कालीन राजनैतिक इतिहास जानने का प्रमुख स्रोत है। इसमें पुष्यमित्रों एवं हुणों के साथ स्कन्दगुप्त के युद्ध का वर्णन मिलता है।

इन लेखों के अलावा गढ़वा शिलालेख, विहार स्तम्भ लेख तथा कौशाम्बी अभिलेख से भी स्कन्दगुप्त के शासन काल पर प्रकाश पड़ता है।

1.10.1.2 मुद्राऐं

स्कन्दगुप्त के शासनकाल की कतिपय स्वर्ण एवं रजत मुद्राऐं प्राप्त हुई हैं। स्वर्ण मुद्राओं के मुख भाग पर धनुष–बाण लिए हुए राजा की आकृति तथा पृष्ठ भाग पर पद्मासन में विराजमान लक्ष्मी के साथ साथ 'श्रीस्कन्दगुप्तः' उत्कीर्ण है। कतिपय सिक्कों के ऊपर गरूड़ध्वज तथा उसकी उपाधि 'क्रमादित्य' अंकित है।

स्कन्दगुप्त के रजत मुद्राओं के मुख भाग पर वक्ष तक राजा का चित्र तथा पृष्ठ भाग पर गरूड़, नन्दी अथवा वेदी बनी हुई है। इनके ऊपर स्कन्दगुप्त की उपाधियाँ 'परमभागवत्' तथा 'क्रमादित्य' उत्कीर्ण मिलती है।

1.10.1.3 साहित्यिक स्रोत

स्कन्दगुप्त के सम्बन्ध में कथासरित्सागर, चन्द्रगर्भ परिपृच्छा, चान्द्र व्याकरण तथा आर्य मंजू श्रीमूलकल्प से महत्वपूर्ण जानकारी प्राप्त होती है।

1.11.0 उत्तराधिकार का युद्ध

रमेशचन्द्र मजूमदार, गांगुली जैसे कतिपय इतिहासकारों की मान्यता रही है कि कुमारगुप्त प्रथम के उपरान्त उसके दो पुत्रों पुरूगुप्त एवं स्कन्दगुप्त के मध्य उत्तराधिकार का युद्ध हुआ था। जिसमें स्कन्दगुप्त ने पुरूगुप्त को परास्त कर गुप्त वंश के सिहांसन को प्राप्त किया था। अपने मत के समर्थन में इन इतिहासकारों ने भीतरी एवं जूनागढ़ के लेखों के साक्ष्य दिए हैं। स्कन्दगुप्त के भीतरी स्तम्भ लेख में उसके पूर्वगामी राजाओं की माताओं के नाम दिए हैं और उन्हें महादेवी (प्रधानरानी) कहा गया है। लेकिन स्कन्दगुप्त की माता का नाम नहीं है। जान पड़ता है स्कन्दगुप्त की माँ महादेवी अर्थात् प्रधान रानी नहीं थी, इसी कारण वह राज्य का वास्तविक उत्तराधिकारी न होने पर उसने बलात् राज्य प्राप्त किया था। भीतरी लेख में कहा गया है कि कुमारगुप्त की मृत्यु के उपरान्त गुप्त–वंश की लक्ष्मी चंचल हो गयी। स्कन्दगुप्त ने अपने भुजबल से शत्रुओं को परास्त करके उसकी फिर से स्थापना की। शत्रुओं का नाश करके वह (स्कन्दगुप्त) अपनी रोती हुई माता के पास उसी प्रकार गया जिस प्रकार शत्रुओं का नाश करके कृष्ण अपनी माता देवकी के पास गए थे। रमेश चन्द्र मजुमदार का मत है कि राजलक्ष्मी को चंचल करने वाले शत्रु पुरूगुप्त और उसके सहायक थे। उन्होंने कुमारगुप्त की मृत्यु के बाद राजसिंहासन पर अधिकार करने की कोशिश की। लेकिन स्कन्दगुप्त ने इन्हें परास्त कर दिया। और सम्भवतः पुरूगुप्त के बन्दीगृह से अपनी माता का उद्धार किया।

जूनागढ़ अभिलेख में कहा गया है कि स्कन्दगुप्त ने अपने शत्रुओं को परास्त करके पृथ्वी पर अपना अधिकार कर लिया था। आर0 सी0 मजूमदार जैसे इतिहासकारों की धारणा है कि स्कन्दगुप्त द्वारा पराजित ये शत्रु पुरूगुप्त और उसके सहायक थे, अर्थात् पुरूगुप्त को परास्त करने के उपरान्त ही स्कन्दगुप्त राज्याधिकारी हो सका । जूनागढ़ अभिलेख में यह भी उल्लेखित है कि लक्ष्मी ने समस्त राजपुत्रों का परित्याग कर स्कन्दगुप्त का वरण किया। यही स्वयंवर दृश्य स्कन्दगुप्त की एक मुद्रा पर भी उत्कीर्ण है।

स्कन्दगुप्त के उत्तराधिकार का प्रश्न अत्यन्त उलझा हुआ है। इतिहासकारों ने मजूमदार आदि विद्वानों के उपरोक्त तर्कों का खण्डन किया है। स्कन्दगुप्त की माता का उसके अभिलेखों में उल्लेख न होना तथा उसके महादेवी न होने से ऐसा निष्कर्ष नहीं निकाला जा सकता कि वह राज्य का वैधानिक उत्तराधिकारी नहीं था। इसी प्रकार भितरी अभिलेख में जिन वाह्य शत्रुओं का उल्लेख हुआ है वे पुष्यमित्र तथा हूण हो सकते हैं। वास्तविकता जो भी रही हो, इतना तो स्पष्ट है कि स्कन्दगुप्त के शासन के आरम्भिक वर्ष अत्यन्त अशान्तिपूर्ण रहे। अपनी वीरता एवं पराक्रम के बल पर स्कन्दगुप्त ने जटिल समस्याओं से निपटने के उपरान्त ही गुप्त राजसिंहासन प्राप्त किया था।

1.12.0 स्कन्दगुप्त की सैनिक एवं राजनैतिक उपलब्धियाँ

स्कन्दगुप्त के शासन का प्रारम्भिक काल गुप्त साम्राज्य के लिए आपत्काल था। इस काल में उस पर बाह्य शत्रुओं के अनेकानेक आक्रमण हुए।

1.12.1 पुष्यमित्रों का आक्रमण

पुष्यमित्रों का आक्रमण कुमारगुप्त प्रथम के शासन के अन्तिम दिनों में हुआ था। युवराज स्कन्दगुप्त को इन आक्रमणकारियों का सामना करना पड़ा। भितरी अभिलेख से ज्ञात होता है कि प्रारम्भ में उनके प्रबल एवं भयंकर आक्रमण के आघात से गुप्त–राजशक्ति क्षीण होने लगी थी तथा गुप्त–राजलक्ष्मी विचलित हो गई थी। अतः स्कन्दगुप्त को अपने वंश की राजलक्ष्मी को स्थिर रखने, क्षतिग्रस्त साम्राज्य को पुनः संगठित करने तथा पुष्यमित्रों की शक्ति कुचलने के लिए दिन–रात का विचार त्याग कर उनसे संघर्ष करना पड़ा और उस कठिन परीक्षा के समय में एक रात्रि तो उसे नंगी पृथ्वी पर ही व्यतीत करनी पड़ी। अन्ततः अपने पराक्रम द्वारा युवराज स्कन्दगुप्त ने पुष्यमित्रों को न्यस्त व पराभूत कर उन पर पूर्ण विजय प्राप्त की और उनके राजा को चरण पीठ बन कर उस पर अपना वाम–पद स्थापित कर उन्हें सदैव के लिए शान्त कर दिया।

1.12.2 हूणों का आक्रमण

स्कन्दगुप्त के शासनकाल की सबसे महत्वपूर्ण घटना गुप्त साम्राज्य पर हुण आक्रमण है। ऐसा जान पड़ता है कि यद्यपि गुप्त शासकों ने उत्तर–पश्चिम सीमाप्रान्त पर अपना नियन्त्रण स्थापित कर लिया था तथापि इसकी सुरक्षा की समुचित व्यवस्था नहीं की गई थी। इसका लाभ उठाकर मध्य एशिया से पुनः विदेशियों ने आक्रमण आरम्भ कर दिया। इस बार आक्रमणकारी हूण थे, जिन्होंने पाँचवी शताब्दी में समस्त मध्य एशिया को अपने पैरों तले रौंद डाला था। वे अब भारत की तरफ बढ़े। भितरी और जूनागढ़ अभिलेखों में तथा चन्द्रगर्भ–परिपृच्छा नामक बौद्ध ग्रंथ में इन विदेशी आक्रान्ताओं को 'हूण', 'म्लेच्छ' या विदेशी कहा गया है।

1.12.2.1 भितरी अभिलेख

इस अभिलेख में यह उल्लेखित है कि जिस समय हूणों और स्कन्दगुप्त का युद्ध हुआ उस समय स्कन्दगुप्त की भुजाओं के प्रताप से सम्पूर्ण पृथ्वी काँपने लगी और एक भंयकर बवण्डर (तुफान) उठ खड़ा हुआ (हूणैर्यस्य समागतस्य समरे दोर्भ्या धरा कम्पिता)।

1.12.2.2 जूनागढ़ अभिलेख

जूनागढ़ अभिलेख में हूणों को म्लेच्छ कहा गया है। स्कन्दगुप्त ने उसके अहंकार को चूर कर दिया था और वे भी अपने देश में उसका यशोगान करने लगे थे। जूनागढ़ अभिलेख की तिथि 136 गुप्तसंवत् (456 ई0) है। अतः अभिलेख द्वारा यह स्पष्ट है कि यह युद्ध भी स्कन्दगुप्त के शासन के प्रारम्भ में हुआ था।

1.12.3 चन्द्रगर्भ परिपृच्छा

नामक बौद्ध ग्रंथ में महेन्द्रसेन नामक एक राजा का वर्णन मिलता है, जिसका पुत्र बड़ा प्रतापी था। वह यवनों, बाह्लिकों और सकुनों को पराजित कर जब वापस लौटा तो उसके पिता महेन्द्रसेन ने उसे सिंहासनासीन किया और स्वयं संसार त्याग दिया। डा0 के0पी0 जायसवाल ने महेन्द्रसेन का समीकरण कुमारगुप्त के साथ तथा उसके प्रतापी पुत्र का समीकरण स्कन्दगुप्त से किया है।

1.12.4 सोमदेव रचित कथासरित्सागर

में कहा गया है कि उज्जैन के राजा महेन्द्रादित्य का पुत्र विक्रमादित्य अपने पिता के बाद सिंहासन पर बैठा। उसने म्लेच्छों को पूर्णतया पराजित किया। एलन महोदय ने महेन्द्रादित्य और विक्रमादित्य का समीकरण क्रमशः कुमारगुप्त एवं स्कन्दगुप्त से किया है। अतः कथासरित्सागर में भी स्कन्दगुप्त और हूणों के युद्ध की स्मृति संरक्षित है।

1.12.5 चान्द्र व्याकरण

नामक ग्रंथ में एक वाक्य मिलता है–'अजयत् गुप्तों हूणान' अर्थात् गुप्तों ने हूणों को जीता। डॉ0 मजूमदार गुप्त का समीकरण स्कन्दगुप्त से करते हैं।

1.12.6 युद्धस्थल

यह निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता कि स्कन्दगुप्त और हूणों का युद्ध किस स्थान पर हुआ? भितरी अभिलेख में युद्ध का वर्णन करते हुए 'श्रोत्रेषु गंगा ध्वनि' शब्दों का प्रयोग मिलता है। इस आधार पर डॉ0 वासुदेव उपाध्याय का मत है कि यह युद्ध गंगा की घाटी में हुआ था। परन्तु अभिलेख का यह भाग इतना टुटा–फुटा है कि यह नहीं कहा जा सकता है कि 'श्रोत्रेषु गंगाध्वनिः' का प्रयोग किस स्थान के सम्बन्ध में हुआ है।

उपेन्द्र ठाकुर का विचार है कि हूण युद्ध या तो सतलज नदी के तट पर या पश्चिमी भारत के मैदानों में लड़ा गया था। जूनागढ़ अभिलेख से विदित होता है कि स्कन्दगुप्त सौराष्ट्र प्रदेश की रक्षा के लिए सर्वाधिक चिन्तित था, जान पड़ता है कि सौराष्ट्र पर ही हूण आक्रमण हुआ था। यह युद्ध संभवतः उत्तर–पश्चिमी सीमावर्ती क्षेत्र में हुआ होगा।

1.12.7 नागों से संघर्ष

जूनागढ़ अभिलेख में कहा गया है कि स्कन्दगुप्त की गरूड़ध्वजांकित राजाझा नागरुपी उन राजाओं का मर्दन करने वाली थी जो मान और दर्प से अपने फन उठाये रहते थे। इस आधार पर फ्लीट ने निष्कर्ष निकाला है कि स्कन्दगुप्त ने नागवंशी राजाओं को पराजित किया था, परन्तु इस मत के सम्बन्ध में निश्चियपूर्वक नही कहा जा सकता ।

1.12.8 वाकाटकों से युद्ध

बालाघाट ताम्रपत्र मे आधार पर दाण्डेकर ने यह प्रमाणित करने का प्रयास किया है कि स्कन्दगुप्त की विपत्तियों से लाभ उठाकर वाकाटकों ने भी गुप्त साम्राज्य पर आक्रमण कर दिया और उसके पश्चिमी प्रदेश का कुछ भाग छीन लिया। इस ताम्रपत्र में वाकाटक नरेश नरेन्द्रसेन को मालवा का अधिपति कहा गया है (कोशल मेकलमालवाधिपतिः अभ्यर्चित शासनः) मालवा गुप्तों के अधिकार में था। फिर वह वाकाटक नरेश नरेन्द्रसेन के अधिकार में कैसे आया? ए0एस0 अल्टेकर ने विचार व्यक्त किया है कि 455ई0 के लगभग कदाचित् मालवा के सामन्त ने गुप्तों के विरुद्ध अपनी स्वतन्त्रता घोषित कर दी हो और उनके विरुद्ध सहायता प्राप्त करने के लिए वाकाटकों के विरुद्ध अधीनता स्वीकार कर ली हो। परन्तु स्कन्दगुप्त ने शीघ्र ही इस प्रदेश के ऊपर अपना आधिपत्य स्थापित कर लिया तथा जीवन पर्यन्त उसका शासक बना रहा।

1.13.0 साम्राज्य विस्तार

स्कन्दगुप्त के अभिलेखों एवं सिक्कों के व्यापक प्रसार से स्पष्टतः कहा जा सकता है कि उसने अपने पिता एवं पितामह के साम्राज्य को पूर्णतया अक्षुण्ण बनाये रखा। जूनागढ़ अभिलेख सुराष्ट्र प्रान्त पर उसके अधिकार की पुष्टि करता है। मन्दसौर अभिलेख उसके मालवा पर स्वामित्व को सिद्ध करता है। उसकी विविध प्रकार की रजत मुद्राऐं साम्राज्य के पश्चिमी भाग पर उसके आधिपत्य को सिद्ध करती हैं। बिहार के एक अभिलेख से सिद्ध होता है कि आधुनिक बिहार उसके साम्राज्य में था। भितरी स्तम्भ लेख, कहौम स्तम्भलेख, इन्दौर ताम्रपत्र, गढ़वा एवं कौशाम्बी शिलालेख से उसका आधिपत्य सम्पूर्ण प्रदेश पर प्रमाणित होता है। मध्यप्रदेश में उसकी गरूण शैली की मुद्राएं मिली हुई हैं। वह अन्तिम गुप्त सम्राट था जिसने बंगाल से लेकर गुजरात तक के विस्तृत भू–भाग पर शासन किया। जूनागढ़ अभिलेख में उसके साम्राज्य की विशलता के बारे में कहा गया है कि यह चारों समुद्रों तक फैला हुआ था।

स्कन्दगुप्त के सैनिक एवं राजनैतिक उपलब्धियों के विषय में आर0के0 मुखर्जी का यह विचार अत्यन्त प्रासंगिक लगता है ''स्कन्दगुप्त शत्रुओं को परास्त करके ही चुप नहीं बैठ गया था। उसका सैनिक स्वभाव उसे 'दिग्विजय' की ओर प्रेरित करने लगा। स्कन्दगुप्त की यह विजय 'धर्मविजय' थी क्योंकि उसने परास्त शत्रुओं को पुनः स्थापित करके दया भावना का प्रदर्शन किया।''

1.14.0 स्कन्दगुप्त की सांस्कृतिक उपलब्धियाँ

14.1 उपलब्धियाँ और विरुद्ध

भितरी अभिलेख में स्कन्दगुप्त की 'क्रमादित्य' और 'विक्रमादित्य' की उपाधियाँ मिलती हैं। 'क्रमादित्य' की उपाधि उसकी धनुर्धारी, गरुड़, वृषभ और वेद शैलियों की मुद्राओं पर भी मिलती है। 'विक्रमादित्य' की उपाधि भी उसकी वेदी शैली की रजत–मुद्राओं पर भी मिलती है। कथासरित्सागर में भी उसे विक्रमादित्य कहा गया है। आर्यमंजुश्री मूलकल्प में उसे 'देवराज' कहा गया है। 'शक्रोपम' की उपाधि उसके कहौम अभिलेख में मिलता है।

1.15.0 शासन–प्रबन्ध

जूनागढ़ अभिलेख में स्कन्दगुप्त के शासन प्रबन्ध की अत्यन्त प्रशंसा की गई है। स्कन्दगुप्त का विशाल साम्राज्य प्रान्तों में विभक्त था। प्रान्त को देश अथवा विषय कहा गया है। प्रान्त पर शासन करने वाले राज्यपाल को 'गोप्ता' कहा गया है। पर्णदत्त सौराष्ट्र प्रान्त का राज्यपाल था। सर्वनाग अर्न्तवेदी गंगा – यमुना दोआब का शासक था। कौशाम्बी में उसका राज्यपाल भीमवर्मन था जिसका उल्लेख वहाँ से प्राप्त एक प्रस्तरमूर्ति में मिलता है। बिहार के लेख में उसके कतिपय स्थानीय कर्मचारियों के नाम इस प्रकार मिलते हैं–

अग्रहारिकः– यह दान में दी गई भूमि की देखरेख करता था।

शौल्किकः– यह शुल्क सम्बन्धी कर्मचारी था।

गौल्मिकः– वह जंगलों का अध्यक्ष था।

स्कन्दगुप्त का शासन बड़ा उदार था जिसमें जनता सुखी एवं समृद्ध थी। किसी को कोई कष्ट नहीं था। जूनागढ़ अभिलेख में उसके प्रशासन की प्रशंसा करते हुए कहा गया है कि उसकी प्रजा में कोई ऐसा व्यक्ति नहीं था, जो धर्मच्युत हो अथवा दुःखी, दरिद्र, आपत्तिग्रस्त, लोभी या दण्डनीय होने के कारण अत्यन्त सताया गया हो।

1.15.1 धार्मिक सहिष्णुता

स्कन्दगुप्त वैष्णव धर्मावलम्बी था किन्तु उसने धर्म–सहिष्णुता की नीति का पालन किया। उसने सभी धर्मों के प्रति समान नीति अपनाई। भितरी में उसने विष्णु की प्रतिमा स्थापित करवायी थी। गिरनार में

चक्रपालित ने भी सुदर्शन झील के तट पर विष्णु की प्रतिमा स्थापित करवाई थी। उसने अपने साम्राज्य में अन्य धर्मों को विकसित होने का भी अवसर दिया। उसकी प्रजा का दृष्टिकोण भी उसी के समान उदार था। इन्दौर अभिलेख में सूर्यपूजा का उल्लेख मिलता है। कहौम लेख से पता चलता है कि मद्र नामक एक व्यक्ति ने पॉच जैन तीर्थकरों की पाषाण प्रतिमाओं का निर्माण करवाया था। यद्यपि वह एक जैन था तथापि ब्राह्मणों, श्रमणों एवं गुरूओं का सम्मान करता था। इस प्रकार स्कन्दगुप्त का शासन धार्मिक सहिष्णुता एवं उदारता का काल रहा।

1.15.2 लोकोपकारी कार्य

स्कन्दगुप्त अपने प्रजा के सुख–दुःख का सदैव ध्यान रखता था। वह प्रजावत्स्ल शासक था। प्रान्तों में उसके राज्यपाल भी लोकोपकारी कार्यों में सदैव तत्पर रहते थे। जूनागढ़ अभिलेख में उल्लेख मिलता है कि स्कन्दगुप्त के शासन काल में अतिवृष्टि के कारण ऐतिहासिक सुदर्शन झील का बॉध टूट गया। क्षण भर के लिए वह रमणीय झील सम्पूर्ण लोक के लिए दुदर्शन यानी भयावह आकृति वाली बन गयी, इससे प्रजा को महान कष्ट होने लगा। इस कष्ट के निवारण हेतु सुराष्ट्र प्रान्त के राज्यपाल पर्णदत्त के पुत्र चक्रपालित ने, जो गिरनार नगर का नगरपति था, दो माह के भीतर ही अतुल धन का व्यय करके पत्थरों की जड़ाई द्वारा उस झील के बॉध का पुननिर्माण करवा दिया। जूनागढ़ अभिलेख के अनुसार यह बॉध सौ हाथ लम्बा तथा अरसठ हाथ चौड़ा था। इससे प्रजा ने सुख–शान्ति की सांस ली तथा बार–बार विकाराल रूप ग्रहण कर लेने वाली सुदर्शन झील हमेशा के लिए स्थिर हो गयी। उल्लेखनीय है कि ऐतिहासिक सुदर्शन झील का निर्माण चन्द्रगुप्तमौर्य के सुराष्ट्र प्रान्त के राज्यपाल पुष्यगुप्त वैश्य ने पश्चिमी भारत में सिंचाई की सुविधा के लिए करवाया था। अशोक के राष्ट्रीय यवन जातीय तुषास्प ने झील पर बॉध का निर्माण करवाया था। शकमहाक्षत्रप रूद्रदामन (130–150 ई0) के समय यह बॉध टूट गया जिसका पुनर्निर्माण अतुल धन व्यय करके रूद्रदामन ने अपने राज्यपाल सुविशाख के देखरेख में करवाया था।

1.16.0 मूल्यांकन

स्कन्दगुप्त एक महान् विजेता, अपने वंश की प्रतिष्ठा का पुनर्स्थापक तथा एक प्रजावत्सल सम्राट था। वह गुप्तवंश के महानतम् राजाओं की श्रृंखला में अन्तिम प्रतापी राजा था। अपनी वीरता एवं कुशल पराक्रम के बल पर उसने अपने वंश की विचलित राजलक्ष्मी को पुनःप्रतिष्ठित कर दिया। जूनागढ़ अभिलेख में उल्लेख मिलता है कि ''सभी राजकुमारों को त्यागकर लक्ष्मी ने स्वयं उसका वरण किया'' अर्थात् कुमारगुप्त प्रथम के पुत्रों में वह सर्वाधिक योग्य एवं बुद्धिमान था। राजकुमार के रूप में उसने पुष्यमित्र जैसी भंयकर जाति को परास्त किया था तथा शासक के रूप में हूणों के गर्व को चूर्णकर उन्हें देश के बाहर भगा दिया। वह गुप्तवंश का एक मात्र वीर था। उसकी प्रजा उससे इतनी अधिक उपकृत थी कि 'उसकी अमर कीर्ति का गान बालक से लेकर प्रौढ़ तक प्रसन्नतापूर्वक सभी दिशाओं में किया करते थे।'

उसे अपने बाहुबल का भरोसा था, तथा वह बड़ा ही यशस्वी था। यह उसके शौर्य का जीवन्त प्रमाण है कि अनेकानेक विपत्तियों के होते हुए भी उसने बंगाल की खाड़ी से लेकर अरब सागर तक विस्तृत अपने साम्राज्य को आजीवन अक्षुण्ण रखा। वह एक वीर सेनानी के साथ–साथ उच्चकोटि का संगठनकर्त्ता भी था। उसने अपने साम्राज्य को अनेक प्रान्तों में विभाजित करके वहॉ योग्य गर्वनरों की नियुक्ति की। स्कन्दगुप्त में अनेक चारित्रिक गुण थे। वह विनय, बल तथा शील से युक्त था। वह भक्त प्रजा में अनुरक्त विशेष रूप से बुद्धिमान तथा समस्त प्रजा के हित में संलग्न रहता था। इस प्रकार स्कन्दगुप्त अपने वंश का महान् सम्राट था। वह एक ऐसा लौहपुरूष था, जिसने साम्राज्य को विघटित होने से सफलतापूर्वक रोका, तथा अपनी प्रजा के हृदय में अपने प्रति अगाध श्रद्धा उत्पन्न की।

1.17.0 शब्दावली (Glossary)

पुरोभाग – सिक्के का मुख भाग **(Front or head of coin)**

पृष्ठभाग– सिक्के का उल्टा भाग **(tail of coin)**

भुक्ति– प्रान्त

मुद्रालेख– मुद्राओं पर अंकित लेख

अभिलेख– पत्थर अथवा धातु जैसी अपेक्षाकृत कठोर सतह पर उत्कीर्ण पठन–सामग्री

मुद्राशास्त्र– सिक्कों, कागजीमुद्रा आदि के संग्रह एवं उसके अध्ययन का विज्ञान

1.18 स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्न

वस्तुनिष्ठ प्रश्न

1. पुष्यमित्र जाति का आक्रमण किस गुप्तशासक के शासनकाल में हुआ था ?

(अ) समुद्रगुप्त (ब) चन्द्रगुप्त द्वितीय (स) कुमारगुप्त प्रथम (द) स्कन्दगुप्त

2. कुमारगुप्त के शासनकाल में एक तन्तुवाय श्रेणी द्वारा सूर्य मंदिर के निर्माण का उल्लेख किस अभिलेख से ज्ञात होता है ?

(अ)कर्मदण्डा अभिलेख (ब)भीतरी अभिलेख (स)जूनागढ़ अभिलेख (द)मन्दसोर अभिलेख

3. मन्दसोर अभिलेख किस राज्य से प्राप्त हुआ है ?

(अ) उत्तर प्रदेश (ब) मध्य प्रदेश (स) उत्तराखण्ड (द) गुजरात

4. कुमारगुप्त ने अश्वमेघ यज्ञ करवाया था । सत्य/असत्य

5. कुमारगुप्त के शासनकाल में हूणों ने भारत पर आक्रमण किया था। सत्य/असत्य

6. सुदर्शन झील का पुर्ननिर्माण किस गुप्त शासक द्वारा करवाया गया था?

(अ) स्कन्दगुप्त (ब) कुमारगुप्त (स) चन्द्रगुप्त द्वितीय (द) समुद्रगुप्त

7. स्कन्दगुप्त का जूनागढ़ अभिलेख किस राज्य से प्राप्त हुआ है ?

(अ) गुजरात (ब) महाराष्ट्र (स) उत्तरप्रदेश (द) उत्तराखण्ड

8. पुरूगुप्त एवं स्कन्दगुप्त के मध्य उत्तराधिकार का युद्ध हुआ था। सत्य/असत्य

9. किस गुप्त राजकुमार ने पुष्यमित्रों को परास्त किया था ?

(अ) काच(ब) गोविन्दगुप्त (स) स्कन्दगुप्त (द) पुरूगुप्त

10. जूनागढ़ अभिलेख में हूणों को क्या कहा गया है ?

(अ) पुष्यमित्र (ब) म्लेच्छ (स) हूण (द) शक

11. गुप्तकालीन कौन सी मुद्रा सर्वाधिक कलात्मक मानी जाती है ?

(अ) धुर्नधारी सिक्के (ब)अश्वमेघ प्रकार के सिक्के (स) मयूर शैली की मुद्राएं (द) इनमें से कोई नहीं।

12. मन्दसोर अभिलेख का लेखक कौन था ?

(अ) वत्सभट्टि (ब) हरिषेण (स) रविकृर्ति (द) कालीदास

13. स्कन्दगुप्त द्वारा हूणों को परास्त करने की सूचना किस अभिलेख से प्राप्त होती है?

(अ) कहौम अभिलेख (ब) सुविया स्तम्भलेख (स) इन्दौर ताम्रपत्र (द) जूनागढ़ अभिलेख

14. स्कन्दगुप्त के किस अभिलेख में सूर्य पूजा का उल्लेख मिलता है ?

(अ) भीतरी (ब) जूनागढ़ (स) इन्दौर (द) कहौम

15. सर्वप्रथम सुदर्शन झील का निर्माण किस शासक द्वारा करवाया गया था ?

(अ) चन्द्रगुप्त मौर्य (ब) अशोक (स) रूद्रदामन (द) स्कन्दगुप्त

उत्तर–

1.(स) 2. (स) 3.(ब) 4.(सत्य) 5. (असत्य) 6.(अ) 7.(अ) 8.(सत्य) 9.(स) 10.(ब) 11.(स) 12(अ) 13.(द) 14.(स) 15.(अ)

निम्नलिखित पर 100–150 शब्दों में संक्षिप्त टिप्पणियाँ लिखिएं।

1. हूण आक्रमण
2. पुष्यमित्रों का आक्रमण
3. मन्दसोर अभिलेख
4. जूनागढ़ अभिलेख
5. तन्तुवाय श्रेणी

1.19.0 निबन्धात्मक प्रश्न

1. कुमारगुप्त के चरित्र एवं उपलब्धियों पर प्रकाश डालिए।
2. स्कन्दगुप्त गुप्त साम्राज्य का अन्तिम महान शासक था, समीक्षा कीजिए।
3. स्कन्दगुप्त के चरित्र एवं उपलब्धियों की व्याख्या कीजिए।

1.20.0 सन्दर्भ ग्रन्थ एवं इस खण्ड के लिए उपयोगी पाठ्य–पुस्तकें

1. Majumdar R. C. *et. al.* (Eds) The History and Culture of Indian people, Vol. III: The classical Age (1970) Vidhya Bhawan, Bombay.
2. परमेश्वरी लाल गुप्ता–गुप्त साम्राज्य (1970) विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी।
3. भगवतशरण उपाध्याय–गुप्त काल का सांस्कृतिक इतिहास (1969)।
4. वासुदेव उपाध्याय– गुप्त साम्राज्य का इतिहास
5. श्रीराम गोयल– गुप्त साम्राज्य का इतिहास (1995) कुसुमाज्जलि प्रकाशन, जोधपुर।
6. झा डी0एन0 एवं श्रीमाली के0 एम0– प्राचीन भारत का इतिहास, हिन्दी माध्यम कार्यान्वय निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय (1990)।
7. पाण्डेय, विमल चन्द्र, प्राचीन भारत का इतिहास (250–1250 ई0) एम0 चन्द्र, दिल्ली (2003)।
8. श्रीवास्तव, के0 सी0 प्राचीन भारत का इतिहास एवं संस्कृति, इलाहाबाद (1991)।

ब्लॉक दो

इकाई दो : गुप्त प्रशासनिक व्यवस्था

2.0 उद्देश्य

2.1 प्रस्तावना

2.2 गुप्तकालीन प्रशासनिक व्यवस्था के ऐतिहासिक स्रोत

2.3 केन्द्रीय प्रशासनिक व्यवस्था

2.3.1 राजा

2.3.2 सामन्त

2.3.3 केन्द्रीय पदाधिकारी–मन्त्रीपरिषद एवं अन्य अधिकारीगण

2.3.4 प्रान्तीय शासन एवं प्रान्तीय अधिकारी

2.3.5 जिला प्रशासन एवं विषयाधिकारी

2.3.6 नगर प्रशासन

2.3.7 ग्राम प्रशासन

2.4 सैन्य–संगठन

2.5 पुलिस व्यवस्था

2.6 न्याय प्रशासन

2.7 राजस्व प्रशासन

2.8 सारांश

2.9 शब्दावली

2.10 स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्न

2.11 निबन्धात्मक प्रश्न

2.12 सन्दर्भ ग्रन्थ एवं इस खण्ड के लिए उपयोगी पाठ्य–पुस्तकें

2.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के उपरान्त आप गुप्त राजाओं के प्रशासनिक व्यवस्था के विषय में जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।

- राजा के दैवी उत्पत्ति को समझ सकेंगे। राजा के कर्तव्यों एवं दायित्वों के विषय में सम्यक अध्ययन कर सकेंगे।
- गुप्तकाल में सामन्तों के उदय एवं प्रशासनिक महत्व को समझ सकेंगे।
- गुप्तकालीन केन्द्रीय पदाधिकारियों के विषय में जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।

- प्रान्तीय प्रशासनिक व्यवस्था, जिला प्रशासन एवं ग्राम प्रशासन के विषय में जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।
- गुप्तकालीन सैन्य प्रशासन, न्याय–व्यवस्था एवं राजस्व व्यवस्था का अध्ययन कर पायेंगे।

2.1 प्रस्तावना

स्वर्णकाल के नाम से अभिहित गुप्तकाल में एक कुशल एवं उत्कृष्ट प्रशासनिक व्यवस्था का विकास हुआ था। गुप्तकालीन शासन–प्रणाली ने पूर्वगामी राजवंशों के शासन–प्रबन्धों के सभी लाभकर तत्वों को ग्रहण कर लिया था। इसके साथ–साथ इसने आवश्यकतानुसार अनेक नवीन और मौलिक प्रशासनिक व्यवस्थाओं का भी निर्माण किया था। गुप्तकाल में दो प्रकार का शासन तन्त्र प्रचलन में था–

(1) गणतन्त्रः– इसकाल में अनेक गणतन्त्रामंक राज्यों के नाम मिलते हैं। ये राज्य पंजाब और राजस्थान में थे। इनमें मालव, आर्जुनायन, सनकानीक, यौधेय, मद्र, प्रार्जुन, कुणिन्द, काक, खरपरिक, आभीर विशेष उल्लेखनीय थे। के0 पी0 जायसवाल का मत था कि समुद्रगुप्त की साम्राज्यवादी नीति के कारण 400 ई0 पश्चात् ये गणतन्त्र समाप्त हो गये।

(2) राजतन्त्रः– गुप्तकाल में अधिक प्रचलित एवं लोकप्रिय शासनतंत्र राजतंत्र ही था। राजतंत्र दैवी सिद्धान्त पर आधारित था।

2.2 गुप्तकालीन प्रशासनिक व्यवस्था के ऐतिहासिक स्रोत

गुप्तकालीन ऐतिहासिक ग्रन्थों, अभिलेखों, सिक्कों एंव चीनी यात्री फाह्यान के यात्रा वृतान्त से इस युग के शासन–संस्थाओं पर ठोस प्रकाश पड़ता है। कालिदास के ग्रन्थों–रघुवंश, मालविकाग्निमित्र, अभिज्ञानशाकुन्तलम् में गुप्तयुगीन राजनैतिक आदर्शो एवं शासन संस्थाओं का कतिपय उल्लेख मिलता है। विशाखदत्तकृत मुद्राराक्षस, विष्णुशर्मा के पंचतंत्र एवं कामन्दक नीतिसार से गुप्तकालीन शासन प्रबन्ध पर प्रभाव पड़ता है। गुप्त सम्राटों के अभिलेखों एवं सिक्को से इस युग की प्रशासनिक व्यवस्था का वृहद उल्लेख मिलता है। चीनी यात्री फाह्यान ने अपने यात्रा–वृतान्त में कहीं–कहीं इस देश के सुशासन एवं कानूनों की उत्तमता का निर्देश किया गया है, जैसे– "राजा प्रभूत और सुखी है। व्यवहार की लिखा पढ़ी और पंचायत कुछ नहीं है। वे राजा की भूमि जोतते हैं और उसका अंश देते हैं। जहाँ चाहें रहें। राजा न प्राणदण्ड देता है, न शारीरिक दण्ड देता है। अपराधी को अवस्था के अनुसार उत्तम साहस या मध्यम साहस का अर्थदण्ड दिया जाता है। राजा के प्रतिहार और सहचर वेतनभोगी होते हैं।"

2.3 केन्द्रीय प्रशासनिक व्यवस्था

2.3.1 राजा

गुप्तकाल में राजा को देवतुल्य समझा जाता था, उसे पृथ्वी पर देवता का प्रतिनिधि और कभी–कभी तो स्वयं देवता माना जाता था। प्रयाग प्रशस्ति में समुद्रगुप्त को देव कहा गया है (लोकधाम्नो देवस्य)। वह मानवोचित्त क्रियायें करने मात्र के कारण मनुष्य लगता था, अन्यथा वह देवता तुल्य था। प्रयाग–प्रशस्ति में उसे अचिन्त्यपुरूष (भगवान बिष्णु) कहा गया है तथा उसकी तुलना कुबेर, वरूण, इन्द्र तथा यमराज आदि से की गयी है। समुद्रगुप्त तथा चन्द्रगुप्त द्वितीय विक्रमादित्य दोनों को साक्षात् अप्रतिरथ (=बिष्णु) भी कहा गया है। हरिषेण ने समुद्रगुप्त को सज्जनों के उदय एवं दुर्जनों के पतन का कारण माना है।

गुप्त सम्राटों की उपाधियाँ भी उनकी दैवी उत्पत्ति की अवधारणा की ओर संकेत करती हैं। उन्होंने 'परमदैवत','महाराजाधिराज', 'राजाधिराज', 'एकाधिराज' तथा 'परमेश्वर' जैसी उपाधियाँ धारण की।

राजाओं के प्रति दैवी भावना इस युग की स्मृतियों से भी प्रकट होती है। राजा देवताओं के अंश से बना होने के कारण दैवी होता है, यह अभिव्यक्ति याज्ञवल्क्य और नारद स्मृतियों में उल्लेखित है। कौटिल्य के अर्थशास्त्र में भी यह विचार वर्णित है। जिसका प्रयोग गुप्तचर लोग जन–सामान्य में राजा का प्रभाव उत्पन्न करने के लिए ही किया करते थे, परन्तु गुप्तकाल तक यह एक सर्वसम्मत सिद्धान्त हो गया था। दैवी उत्पत्ति के बावजूद राजा स्वयं विधि–विधानों का उल्लंघन नहीं कर सकता था। राजा प्रशासन का मुख्य स्रोत था, जिसके अधिकार और शक्तियाँ असीमित थी। वह कार्यपालिका का सर्वोच्च अधिकारी, न्याय का प्रधान न्यायाधीश एवं सेना का सर्वोच्च सेनापति होता था। युद्ध के समय वह स्वयं सेना का संचालन करता था। प्रशासन के सभी उच्च पदाधिकारियों की नियुक्ति सम्राट द्वारा ही की जाती थी और वे सभी उसी के प्रति उत्तरदायी होते थे। सिद्धान्ततः राजा की स्थिति एक निरंकुश शासक जैसी थी, लेकिन व्यवहार में वह उदार तथा जनहिताकारी होता था। गुप्तकाल में ऐसे रानियों का दृष्टान्त उपलब्ध है जिन्होंने अपने पतियों के साथ मिलकर शासन किया। कुमार देवी ने अपने पति चन्द्रगुप्त प्रथम के साथ मिलकर शासन चलाया था। चन्द्रगुप्त द्वितीय की पुत्री प्रभावती गुप्ता ने वाकाटक राज्य के शासन का संचालन किया था।

2.3.2 सामन्त

इतिहासकार आर. एस. शर्मा के अनुसार गुप्तकाल में 'सामन्तवाद' का उदय हो चुका था। भूमि अनुदान तथा गुप्त सम्राटों की अधीनस्थ राजाओं के प्रति अपनायी गई नीति के कारण सामन्तवाद का उदय हुआ। गुप्तकाल में सम्राट के अधीन अनेक छोटे–छोटे सामन्त हुआ करते थे जो अपने–अपने क्षेत्रों में स्वतंत्र रूप से शासन करते थे तथा नाममात्र के लिए सम्राट की अधीनता स्वीकार करते थे। ये सामन्त 'महाराज' की उपाधि ग्रहण करते थे। उन्हें सेना रखने तथा अपने अधीन जनता से कर वसुलने का अधिकार प्राप्त था। पूर्वी मालवा में सनकानिक, बुन्देलखण्ड में परिव्राजक एवं उच्चकल्प वंशों के शासक गुप्तों के सामन्त थे। चन्द्रगुप्त द्वितीय के उदयगिरि के एक गुहालेख में 'सनकानिक महाराज' का उल्लेख मिलता है। सामन्त शासक अपने लेखों में अपने को पादानुध्यात कहते थे। विभिन्न अवसरों पर सम्राट् की राजसभा में उपस्थित होते तथा भेंट, उपहारादि से उसे सन्तुष्ट रखते थे। कतिपय शक्तिशाली सामन्तों का उल्लेख मिलता है, जिन्होंने अपने अधीन कई छोटे–छोटे सामन्त रखे थे। ऐसे शक्तिशाली सामन्तों में परिब्राजक महाराज हस्तिन् का उल्लेख किया जा सकता है। गुप्तों के अभिलेखों में सामन्तों तथा उनकी श्रेणियों का कोई विशेष उल्लेख नहीं मिलता है।

2.3.3 केन्द्रीय पदाधिकारी–मन्त्रीपरिषद एवं अन्य अधिकारीगण

गुप्त सम्राट शासन–कार्यो में मंत्रियों और अन्य पदाधिकारियों की सहायता लेते थे। मंत्रियों को अमात्य अथवा सचिव भी कहा जाता था। गुप्त अभिलेखों में हरिषेण, वीरसेन उर्फ शाव, शिखरस्वामी तथा पृथिवीषेण आदि मंत्रियों के नाम मिलते हैं। उदयगिरी गुहालेख से पता चलता है कि सचिव का पद परम्परागत था। परिव्राजकों तथा उच्च कल्पों में भी यह परम्परा प्रचलित थी। वाकाटक अभिलेखों से ज्ञात होता है कि उनके राज्य में मंत्री पद एक परिवार में कई पीढ़ी तक रहा था। मन्त्री की नियुक्ति में योग्यता को महत्व दिया जाता था। चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य संधि–विग्रहिक वीरसेन एक निपुण कवि तथा व्याकरण, न्याय और राजनीति का पण्डित था तथा समुद्रगुप्त का सन्धिविग्रहिक हरिषेण एक निपुण कवि था।

कुमारामात्यः– साम्राज्य के मुख्य–मुख्य पदों पर कार्य करने वाले कर्मचारियों को 'कुमारामात्य' कहते थे। कुमारामात्य राजघराने के भी होते थे और दूसरे लोग भी। साम्राज्य के विविध अंगों–मुक्ति, विषय

आदि का शासन करने के लिए जहाँ इनकी नियुक्ति की जाती थी, वहाँ सेना, न्याय आदि के उच्च पदों पर भी ये कार्य करते थे। कुमारामात्य साम्राज्य की स्थिर सेवा में होते थे, और शासन–सूत्र का संचालन इन्हीं के हाथों में रहता था। रोमिला थापर कुमारामात्य को प्रान्तीय पदाधिकारी मानती हैं। जबकि अभिलेखों से ये केन्द्रीय पदाधिकारी प्रतीत होते हैं। ए0 एस0 अल्तेकर ने भी कुमारामात्य को 'केन्द्रीय नौकरशाही' का पर्याय माना है। कुमारामात्य के कार्यालय को 'कुमारामात्याधिकरण' कहते थे।

अधिकरणः– केन्द्रीय शासन के विविध विभागों को अधिकरण कहते थे। प्रत्येक अधीकरण की अपनी–अपनी मुद्रा (सील) होती थी। गुप्तकाल के विविध शिलालेखों और मुद्राओं आदि से निम्नलिखित अधिकरणों और प्रधान राज–कर्मचारियों के विषय में जानकारी मिलती हैः–

1. **महासेनापतिः–** गुप्त सम्राट् स्वयं कुशल सेनानायक और योद्धा थे। वे दिग्विजयों और विजय–यात्राओं के अवसर पर स्वयं सेना का संचालन करते थे। पर उनके अधीन महासेनापति भी होते थे, जो साम्राज्य के विविध भागों में, विशेषतया सीमान्त प्रदेशों में, सैन्य संचालन के लिये नियत रहते थे। सेना के ये सबसे बड़े पदाधिकारी 'महासेनापति' कहलाते थे।

2. **महादण्डनायकः–** महासेनापति के अधीन अनेक महादण्डनायक होते थे, जो युद्ध के अवसर पर सेना का नेतृत्व करते थे। गुप्त–काल की सेना के तीन प्रधान विभाग होते थे–पदाति, घुड़सवार और हाथी। महादंडनायकों के अधीन महाश्वपति, अश्वपति, महापीलुपति आदि अनेक सेनानायक रहते थे। साधारण सैनिक को 'चाट' और सेना की छोटी टुकड़ी को 'चमू' कहते थे। चमू का नायक 'चमूप' कहलाता था। युद्ध के लिये परशु, शर, अंकुश, शक्ति, तोमर, भिंदिपाल, नाराच आदि अनेकविध अस्त्रों को प्रयुक्त किया जाता था।

3. **रणभांडारिकः–** सेना के लिये सब प्रकार की सामग्री (अस्त्र–शस्त्र, भोजन आदि) को जुटाने का विभाग रणभांडारिक के अधीन होता था।

4. **महाबलाधिकृतः–** सेना, छावनी और व्यूह रचना का विभाग महाबलाध्यक्ष या महाबलाधिकृत के हाथ में रहता था। उसके अधीन अनेक बलाधिकृत होते थे।

5. **दंडपाशिकः–** पुलिस विभाग का सर्वोच्च अधिकारी दंडपाशिक कहलाता था। उसके नीचे खुफिया विभाग के अधिकारी 'चौराद्ध रणिक', 'दूत' आदि अनेक कर्मचारी रहते थे। पुलिस के साधारण सिपाही को भट कहते थे।

6. **महासंधिविग्रहिकः–** इस उच्च अधिकारी का कार्य पड़ोसी राज्यों, सामन्तों और गणराज्यों के साथ संधि तथा विग्रह की नीति का प्रयोग करना होता था। यह सम्राट का अत्यन्त विश्वस्त कर्मचारी होता था, जो साम्राज्य की विदेशी नीति का निर्धारण करता था। किन देशों पर आक्रमण किया जाय, अधीनस्थ राजाओं व सामन्तों के प्रति क्या व्यवहार किया जाय, ये सब बातें इसी के द्वारा तय होती थीं। इसे 'सन्धिविग्रहाधिकरणाधिकृत' भी कहते थे।

7. **विनय–स्थिति–स्थापकः–** मौर्यकाल में जो कार्य धर्म–महापात्र करते थे, वही गुप्त–काल में विनय–स्थिति–स्थापक करते थे। देश में धर्मनीति की स्थापना, जनता के चरित्र का उन्नत रखना और विविध सम्प्रदायों में मेल–जोल रखना इन्हीं अमात्यों का कार्य था।

8. **भांडागाराधिकृतः–** यह कोषविभाग का अध्यक्ष होता था।

9. **महाक्षपटलिकः–** राज्य के सब आदेशों का रिकार्ड रखना इसके 'अधिकरण' का कार्य था। राजकीय आय–व्यय आदि के सब लेखे भी इसी अमात्य द्वारा रखे जाते थे।

10. **सर्वाध्यक्षः–** यह सम्भवतः साम्राज्य के केन्द्रीय कार्यालय का प्रधान अधिकारी होता था।

11. **ध्रुवाधिकरणः–** यह राज्य–कर का वसूल करने वाला विभाग था। इस अधिकरण के अधीन निम्नलिखित अधिकारी एवं कर्मचारी होते थेः–

(अ) शाल्किकः– भूमिकर वसूल करने वाले।

(ब) गौल्मिकः– जंगलों से विविध आमदनी प्राप्त करने वाले।

(स) तलवाटक एवं गोप– ग्रामों के विविध कर्मचारी

12. महाप्रतीहार एवं प्रतीहारः– राजप्रसाद के विशाल विभाग को महाप्रतीहार और प्रतीहार नाम के अनेक कर्मचारी सभालते थे। राजा के व्यक्तिगत सेक्रेटरी को 'रहसि नियुक्त' कहते थे। अन्य अमात्यों और अध्यक्षों के भी अपने–अपने 'रहसि नियुक्त' रहते थे।

2.3.4 प्रान्तीय शासन एवं प्रान्तीय अधिकारी

विशाल गुप्त साम्राज्य अनेक राष्ट्रों या देशों में विभक्त था। साम्राज्य में कुल कितने देश या राष्ट्र थे, उसकी ठीक संख्या ज्ञात नहीं है। प्रत्येक राष्ट्र में अनेक मुक्तियाँ और प्रत्येक मुक्ति में अनेक विषय होते थे। मुक्ति को वर्तमान समय की कमिश्नरी के समान समझा जा सकता है। गुप्त अभिलेख में कतिपय मुक्तियों के नाम मिलते हैं।

1. पुण्ड्रवर्धन भुक्ति का चिरातदत्त
2. पश्चिमी मालवा का बन्धु वर्मा
3. अवध का पृथ्वीषेण
4. सौराष्ट्र का पर्णदत्त
5. एरण (पूर्वी मालवा) का घटोत्कचगुप्त
6. तीरमुक्ति का गोविन्द गुप्त
7. मगध–गया और नालन्दा ताम्रपत्रों से पता चलता है कि मगध भी गुप्त साम्राज्य का एक प्रान्त था।

भुक्ति (प्रान्त) के शासक को 'उपरिक' और 'गोप्ता' कहा जाता था। उपरिक की नियुक्ति सम्राट द्वारा की जाती थी और वह सम्राट के प्रति उत्तरदायी होता था। सीमान्त प्रदेशों के शासक गोप्ता कहलाते थे जिनकी नियुक्ति सम्राट पर्याप्त विचार–विमर्श के उपरान्त किया करते थे। उपरिक के पद पर प्रायः राजकुमार अथवा राजकुल से सम्बन्धित व्यक्तियों की ही नियुक्ति की जाती थी। कभी–कभी अन्य योग्य व्यक्तियों की भी उपरिक पद पर नियुक्तियां दे दी जाती थी। बन्धुवर्मा, पर्णदत्त, पृथ्वीषेण और चिरातदत्त राजपरिवार से नहीं थे फिर भी उन्हें प्रान्तपति के रूप में नियुक्ति किया गया। उससे विदित होता है कि योग्यता रही है कि नियुक्तियाँ होती थी। कतिपय इतिहासकारों की मान्यता रही है कि नियुक्तियाँ पाँच वर्ष के लिए होती थी, यद्यपि ऐसे अनेक दृष्टान्त उपलब्ध हैं जिनसे पता चलता है कि गवर्नरों की नियुक्तियाँ निश्चित अवधि के लिए नहीं होती थी। उपरिक पद आनुवंशिक होने के प्रमाण भी उपलब्ध हैं, जैसे–पुण्ड्रवर्धन–भुक्ति में कई पीढ़ियों तक 'दत्त' परिवार के उपरिक होते थे।

गोप्ता प्रशासन के साथ–साथ लोकोपकारी कार्य भी किया करते थे। स्कन्दगुप्त के जूनागढ़ अभिलेख से पता चलता है कि पर्णदत्त–चक्रपालित ने सुदर्शन झील की मरम्मत कराई थी। राज्यपाल प्रायः 'महाराज' की उपाधि–धारण किया करते थे तथा राजा के प्रति स्वामी भक्ति प्रदर्शित करने हेतु 'तत्पादानुध्यात' कहलाते थे। राज्यपाल की सहायता के लिए सभा भी होती थी।

2.3.5 जिला प्रशासन एवं विषयाधिकारी

प्रत्येक भुक्ति अनेक विषयों में विभक्त होता था। प्रयाग–प्रशस्ति में हरिषेण ने विषय–भुक्ति का उल्लेख किया है। विषय आधुनिक काल के जिले के समान होता था। विषय का सर्वोच्च अधिकारी विषयपति (जिलाधिकारी) कहलाता था। विषयपति की नियुक्ति कभी सम्राट और कभी उपरिक (राज्यपाल) द्वारा होती थी। इन्दौर ताम्रपात्र से अन्तर्वेदी (गंगा–यमुना का दोआब) के विषयपति सर्त्वनाग का ज्ञान होता है। यहीं बुधगप्त के समय सुरश्मिचन्द्र विषयपति बना।

वैन्यगुप्त के समय पूर्वी बंगाल में विजयसेन विषयपति था। बांग्लादेश से प्राप्त ताम्रपत्रों से जिला (विषय) प्रशासक की रूपरेखा सुनिश्चित होती है। विषयपति की सहायता के लिए एक विषय–परिषद होती थी जिसके सदस्य महत्तर कहलाते थे। यद्यपि फरीदपुर के एक ताम्रपत्र में इनकी संख्या बीस बताई गयी है। परन्तु अधिकांश ताम्रपत्रों में विषय–समिति के निम्नलिखित 4 कर्मचारियों के नाम मिलते हैं–

1. नगर–श्रेष्ठीः– यह नगर के साहूकारों और उद्योगपतियों का प्रतिनिधि था।
2. सार्थवाह– यह व्यवसायियों का प्रतिनिधि था।
3. प्रथम कुलिक– यह शिल्पकारों का प्रतिनिधि था।
4. प्रथम कायस्थ– यह लिपिकों और आलेखकों का प्रधान था।

विषय के शासक कुमारामात्यों (विषयपतियों) का गुप्त–साम्रात्य के शासन में बड़ा महत्व था। अपने विषय (जिले) की सुरक्षा, शान्ति और व्यवस्था के लिए अनेक कर्मचारी रहते थे, जिन्हें युक्त, आयुक्त, नियुक्त आदि अनेक नामों से कहा जाता था। मौर्यकाल में भी जिले के इन कर्मचारियों को 'युक्त' ही कहते थे। गुप्तकाल में बड़े पदाधिकारियों के नाम बदल गये थे, परन्तु छोटे राजपुरूषों के अब भी वही नाम थे, जो कम से कम सात सदियों से भारत में प्रयुक्त होते आ रहे थे। विषयपति के अधीन दण्डपाशिक (पुलिस के कर्मचारी) चोरोद्धरणिक (खुफिया पुलिस), आरक्षाधिकृत (जनता के रक्षार्थ नियुक्त कर्मचारी) और दण्डनायक (जिले की सेना के अधिकारी) रहते थे।

2.3.6 नगर प्रशासन

गुप्तकाल में पाटलिपुत्र, ताम्रलिप्ति, मथुरा, तक्षशिला, उज्जयिनी, दशपुर, भृगुकच्छ, वाराणसी आदि अनेकानेक बड़े नगरों का विकास हो चुका था। नगरो की व्यवस्था के लिए नगर–पालिकाऐं थीं। नगर को 'पुर' भी कहा जाता था। नगरपालिका का उपाध्यक्ष (मेयर) 'पुरपाल' कहलाता था। इतिहासकारों की मान्यता है कि 'पुरपालों' की नियुक्ति राज्यपाल द्वारा की जाती थी। गिरनार के पुरपाल चक्रपालित का नाम स्कन्दगुप्त के जूनागढ़ अभिलेख में मिलता है। चक्रपालित सौराष्ट्र के गोप्ता पर्णदत्त का पुत्र था। इसी ने सुदर्शन झील की मरम्मत कराई थी उस पर एक विष्णु–मन्दिर का निर्माण कराया था। इससे पता चलता है कि नगर–पालिकाऐं नगर में शान्ति की स्थापना, सभागृह, सरोवर, मन्दिर बनवाना तथा अन्य सार्वजनिक कार्यो को करवाना था।

नगर के प्रशासन में व्यवसायियों के संगठनों की अच्छी साझेदारी रहती थी। वैशाली से प्राप्त सीलों से पता चलता है कि शिल्पी, वणिक और लिपिक एक ही सामूहिक संस्था में काम करते थे और इस हैसियत से वे स्पष्टतः नगर के कार्यो का संचालन करते थे। उत्तरी बंगाल (बांग्लादेश) के कोटिवर्ष जिले की प्रशासनिक परिषद में मुख्यवणिक, मुख्य व्यापारी और मुख्य शिल्पी शामिल थे।

भूमि के अनुदान या खरीद–बिक्री में उनकी सम्मति आवश्यक समझी जाती थी। शिल्पियों और बैंकरों के अपने अलग–अलग संगठन–'श्रेणिया' थे। भीटा और वैशाली के शिल्पियों और वणिकों की अलग–अलग श्रेणियाँ थी। मालवा के मंदसौर और इंदौर में रेशम बुनकरों की अपनी खास श्रेणी थी। पश्चिमी और प्रदेश में बुन्देलशहर जिले में तेलियों की अपनी अलग श्रेणियों, विशेषतः वणिकों की श्रेणियों को कई खास छूटों की सुविधा दी गई थी हर हालत में ये श्रेणियाँ अपने सदस्यों के मामले देखती थीं और श्रेणी के नियम, कानून और परम्परा का उल्लंघन करने वाले को सजा दे सकती थीं।

2.3.7 ग्राम प्रशासन

गुप्तकाल में ग्रामीण प्रशासन भी सुसंगठित था। वीभि से छोटी इकाई पेठ थी। पेठ अनेक ग्रामों के समूह को कहा जाता था। सबसे छोटी इकाई गाँव थी। ग्रामपति या ग्रामिक महत्तर, अष्टकुलाधिकारी, कुटुम्बी, तलवारक इत्यादि अधिकारियों की सहायता से गाँवों की व्यवस्था देखता था। दामोदर ताम्रपत्र सं0 03 में इन ग्राम–अधिकारियों का उल्लेख मिलता है।

ग्राम–पंचायत के कार्य को सुचारू रूप से चलाने के लिए महत्तर को स्थानीय जनता पर कर लगाने का भी अधिकार था। जो व्यक्ति 3 वर्ष तक लगातार राजस्व अदा न करे उसकी भूमि को ग्राम पंचायत को बेचने का अधिकार था। इस बेची हुई भूमि का एक भाग राजकोष में जाता था तथा शेष भाग ग्राम पंचायत को मिल जाता था। ग्राम–पंचायत अपनी आमदनी का ठीक–ठीक हिसाब रखती थी। एक सरकारी पदाधिकारी इसका निरीक्षण करता था। ग्राम–पंचायत इस धन को सार्वजनिक कार्यो में व्यय करती थी। ग्राम–पंचायत ग्राम के वृद्धों की सहायता में कृषकों के खेतों के सीमा–सम्बन्धी विवादों का निर्णय करती थी।

2.4 सैन्य–संगठन

गुप्तकाल में सैन्य–संगठन का व्यापक विकास हुआ था, इस काल में सेना विशाल एवं सुसंगठित थी। गुप्त–शासकों ने अपने सैन्य–शक्ति के आधार पर ही एक विशाल साम्राज्य की स्थापना की थी। राजा सेना का सर्वोच्च अधिकारी होता था व युद्ध में सेनापति के रूप में सेना का संचालन एवं नेतृत्व करता था। राजा के अधिक वृद्ध होने पर युवराज सेना का संचालन करता था। सेना का सर्वोच्च अधिकारी 'महाबलाधिकृत' था। इसे 'महादण्डनायक' एवं महासेनापति भी कहा जाता था। महादण्डनायक के अतिरिक्त अनेक उपसेनापति भी होते थे। सेना के सामान की व्यवस्था रखने वाला पदाधिकारी रणभाण्डागारिक कहलाता था गुप्त सेना 4 प्रकार की थी– (1) हस्ति (2) अश्व (3) रथ और (4) पदाति। हाथियों के नायक को महापीलुपति तथा घुड़सवारी के नायक को 'भटाश्वपति' कहा जाता था। सेना की छोटी टुकड़ी के नेता का 'चमूप' कहते थे। मंत्रियों के लिए भी सैनिक दृष्टि से योग्य होना आवश्यक था। गुप्तकाल में रथ सेना को विशेष महत्व नहीं दिया जाता था। प्रयाग प्रशस्ति में गुप्तकालीन कतिपय अस्त्र–शस्त्रों के नाम इस प्रकार मिलते हैं– परशु, शर, शंकु, तोमर, भिन्दिपाल, नाराच इत्यादि।

2.5 पुलिस व्यवस्था

इस समय देश में आन्तरिक शान्ति एवं सुरक्षा के लिए पुलिस विभाग था। इस विभाग का सर्वोच्च अधिकारी 'दण्डपाशिक' होता था। इतिहासकार ए0 एस0 अल्तेकर ने दण्डपाशिक की तुलना आधुनिक पुलिस–अधीक्षक से की है। पुलिस विभाग के साधारण कर्मचारियों को 'चाट','भाट' अथवा 'रक्षिन' कहा जाता था। पुलिस की सहायता के लिए गुप्तचर भी होते थे। गुप्तचर विभाग के कर्मचारियों को 'दूत' कहा जाता था। चीनी यात्री फाहियान के विवरण से पता चलता है कि 'भारत में अपराध बहुत कम होते थे एवं चोरी डकैती का भय भी नहीं रहता था। फाहियान ने स्वयं हजारों मील की यात्रा की थी किन्तु उसे कहीं चोर–डाकुओं का सामना नहीं करना पड़ता था। गुप्तकाल में पुलिस विभाग अत्यन्त सक्षम था। महाकवि कालीदास ने भी गुप्तकालीन शान्ति एवं सुरक्षा की प्रशन्सा की है।

2.6 न्याय प्रशासन

गुप्तकालीन न्याय प्रशासन का उल्लेख अभिलेखों में तो नहीं मिलता है किन्तु तत्कालीन नारद एवं वृहस्पति स्मृतियों से पता चलता है इस काल में न्याय–प्रशासन का विकास हो चुका था। गुप्तकालीन स्मृतिकारों ने प्रथम बार दीवानी तथा फौजदारी अपराधों से सम्बन्धित कानूनों की विस्तृत व्याख्या की गयी। उत्तराधिकार सम्बन्धी स्पष्ट एवं विषद कानूनों का निर्माण किया गया राजा देश का सर्वोच्च न्यायाधीश होता था। वह सभी प्रकार के मामलों की सुनवाई की अन्तिम अदालत था। राजा के अतिरिक्त एक मुख्य न्यायाधीश तथा अन्य अनेक न्यायाधीश होते थे जो साम्राज्य के विभिन्न भागों में स्थित अनेक न्यायालयों में न्याय–सम्बन्धी, कार्यो को देखते थे। गुप्त–अभिलेखों में न्यायाधीशों को दण्डनायक, महादण्डनायक, सर्वदण्डनायक तथा महासर्वदण्डनायक कहा गया है। फाहियान अपने यात्रा–वृतान्त में लिखता है कि ''व्यवहार की पढ़ी–लिखी एवं पंच पंचायत कुछ भी नहीं है। राजा न तो प्राणदण्ड देता है और न ही शारीरिक दण्ड ही देता है। अपराधी को उत्तम अथवा मध्यम साहस का अर्थदण्ड दिया जाता है। अपराध की पुनरावृत्ति करने पर दाहिना हाथ काट दिया जाता है।'' इससे तत्कालीन दण्ड–विधान की नरमी का पता चलता है।

वृहस्पति स्मृति धन–मूल और हिंसा मूल विवादों का वर्णन करती है। धन–मूल दीवानी विवाद थे और हिंसा मूल फौजदारी। वृहस्पति स्मृति में ही न्यायालय की चार कोटियॉ बताई गई हैं– 1– शासित 2–मुद्रित 3–प्रतिश्ठित और 4–अप्रतिश्ठित।

शासित न्यायालय में राजा न्याय करता था। मुद्रित न्यायालय का न्यायाधीश प्राड्विवाक होता था जो राजकीय मुद्रा (seal) का प्रयोग करता था। प्रतिश्ठित न्यायालय विशेश विवादों को निपटाने के लिए राजाज्ञा से सीापित किये जाते थे। अप्रतिष्ठित न्यायालय पूग(जातियों)और कुल(परिवारों) के न्यायालय थे। इनके अधिकार अर्थदण्ड और चेतावनी तक सीमित थे। शासित और मुद्रित न्यायालयों को ही मृत्यु–दण्ड और कारावास देने का अधिकार था। नारद स्मृति में न्याय–प्रक्रिया का विस्तृत विवरण दिया गया है। इसमें साक्षी की नियुक्ति, व्यवहार एवं सत्यापन के विशय में अनेक निर्देश हैं। न्याय–प्रक्रिया को लेखबद्ध किया जाता था और अभियुक्त को ऊपरी न्यायालय में आवेदन करने का अधिकार था। स्मृतियों में जल–परीक्षा, अग्नि–परीक्षा, विश–परीक्षा और तुला परीक्षा द्वारा अभियुक्त को अपनी निरापराधिता सिद्ध करने की बात कही गयी है। लेकिन इस बात के कोई प्रमाण उपलब्ध नहीं है कि व्यवहारिक रूप से इन परीक्षाओं का प्रयोग होता था। जूनागढ़ अभिलेख में पुलिस द्वारा उत्पीड़न के प्रमाण हैं। गुप्तकालीन दण्ड विधान में मौर्ययुगीन दण्डविधान यथा–मृत्यु–दण्ड, अंगच्छेद आदि के उदाहरण नगण्य हैं। शूद्रक के 'मृच्छकटिक' में मृत्यु–दण्ड की व्यवस्था थी। लेकिन अभियुक्त चारूदत्त को उससे मुक्त कर दिया गया। यह इस बात का प्रमाण है कि मृत्युदण्ड नहीं दिया जाता था। गुप्तकाल में समाज अपराध मुक्त एवं भयमुक्त था। तभी तो स्कन्दगुप्त के जूनागढ़ अभिलेख में कहा गया है कि उस राजा के शासनकाल में कोई भी व्यक्ति धर्मच्युत, आर्त्त, दरिद्र, व्यसनी, कदर्य, दण्डनीय और पुलिस द्वारा उत्पीड़ित नहीं था।

व्यापारियों तथा व्यवसायियों की श्रेणियों के अपने अलग न्यायालय होते थे जो अपने सदस्यों के विवादों का निपटारा करते थे। स्मृति ग्रंथों में 'पूग' तथा 'कुल' नामक संस्थाओं का भी उल्लेख मिलता है जो अपने सदस्यों के विवादों का फैसला करती थी। 'पूग' नगर में रहने वाली विभिन्न जातियों की समिति होती थी जबकि 'कुल' समान परिवार के सदस्यों की समिति थी। इन सभी को राज्य की ओर से मान्यता मिली हुई थी। ग्रामों में न्याय का कार्य ग्राम–पंचायतें किया करती थी। पेशेवर वकीलों का अस्तित्व नहीं था।

2.7 राजस्व प्रशासन

गुप्तकाल में राज्य की आय का मुख्य स्रोत भूराजस्व था। इस काल के विधिवेत्ताओं ने किसानों के हितों का ध्यान रखते हुए, व्यवस्था दी कि 'प्रजा से उतना ही कर लेना चाहिए जितना जन सरलता से दे सके और उसके पास अगले उत्पादन के लिए पर्याप्त धन बचा रहे।' कामन्दक नीतिसार में कामन्दक ने इस सिद्धान्त को स्पष्ट करने के लिए एक माली और ग्वाले की उपमा दी है जैसे माली फूल के पौधों में पानी देता है। फिर फूल तोड़ता है, जिस प्रकार ग्वाला गायों की सेवा करता है फिर उनका दूध निकालता है, उसी प्रकार राजा को प्रजा की रक्षा और सहायता करनी चाहिए। महाकवि कालीदास ने भी इसी प्रकार विचार व्यक्त किया है कि राजा प्रजा की भलाई के लिए ही प्रजा से कर वसूल करता है। नारद स्मृति ने करों को राजा द्वारा प्रजा को दिए जाने वाले संरक्षण का प्रतिदान माना है। आधुनिक यूरोपिय विद्वानों एडमस्मिथ एवं जॉन स्टुअर्ट मिल ने गुप्तकालीन लेखकों कामन्दक एवं कालीदास के सिद्धान्तों का ही प्रतिपादन किया है। अर्थशास्त्र के जनक एडमस्मिथ ने यह सिद्धान्त प्रतिपादित किया कि प्रत्येक नागरिक को करों के रूप में राज्य को उस अनुपात में धन देना चाहिए जितना वह राज्य का संरक्षण पाने के कारण कमाता है।

गुप्तकालीन विधिवेत्ताओं ने उपज का छठा भाग कर के रूप में राज्य को देने की व्यवस्था दी है। कालीदास ने राजा के उपज के छइें भाग को उसकी वृत्ति निर्वाह का साधन कहा है। तपस्वियों से उनकी तपस्या के पुण्य का छठा भाग ही राजा का कर समझा जाता था। नारद स्मृति में उल्लेख है कि राजा प्रजा की रक्षा करने के लिए पारिश्रमिक के रूप में ही उपज का छठा भाग भू राजस्व के रूप में लेता था। गुप्तकालीन अभिलेखों से भी इस बात की पुश्टि होती है कि राजा साधारणतया उपज का छठा भाग भू–राजस्व के रूप में लेता था। वृहस्पति स्मृति के अनुसार राजा को भूमि की उपज के अनुसार अलग–अलग भू–राजस्व लेना चाहिए। वृहस्पति ने लिखा है कि राजा को परती भूमि से 1/10 भाग, वर्शा जल से सींची जाने वाले भूमि से 1/8 भाग और जो फसल वसन्त ऋतु में काटी जाती है उनसे 1/6 भाग लेना चाहिए। वृहस्पति स्मृति के इस विवरण से पता चलता है कि भू राजस्व के लिए भूमि की उर्वरता तथा प्रयोग के आधार पर वर्गीकरण किया गया था। नाल (खेतिहर भूमि), खिल (परती), वास्तु (जहॉ मकान बनाये जायें)। अप्रहत(बिना जोती हुई भूमि), अप्रदा(जिससे शासन को कोई आय नहीं होती थी), गोचर तथा वन्य आदि भूमि की श्रेणियॉ थी।

अमर सिंह ने अमरकोश में भूमि के बारह प्रकार गिनाये हैं– उर्वरा, ऊसर, मरू (रेगिस्तानी) अप्रहत (बंजर), शादूवल (गोचर) पंकिल (कीचड़ से भरी हुई), जलप्रायमनुपम् (जलयुक्त), कच्छ (कछारी), शर्करा (बंजरी कंकडयुक्त), शर्कावती (रेतीली), नदीमातृक (नदी द्वारा सिंचित) तथा देवमातृक(वर्शा द्वारा सिंचित)। अभिलेखों में 'क्षेत्र' का प्रयोग 'खेत' के अर्थ में हुआ है।

राज्य की आय के स्रोतः– प्रमुख राजकीय कर– कामन्दक नीतिसार में राज्य की आय के आठ स्रोत बताए गए हैं–कृशि, वणिक–पथ, दुर्ग, सेतु, कुज्जर–बन्धन, खाने, इमारती लकड़ी तथा शून्य सीानों का उपनिवेशन। श्रीराम गोयल के विचारानुसार दुर्ग और हाथियों का इस सूची में परिगणन सम्भवतः इसलिए किया गया है क्योंकि इनके कारण व्यापारियों में विश्वास पैदा हुआ था, जिससे वे अधिकाधिक व्यापार कर राज्य को समृद्ध बनाते थे। गुप्त अभिलेखों से विदित होता है कि राज्य की आय का प्रमुख स्रोत विविध प्रकार के भूमि कर थे–

1–भागः– खेती में प्रयुक्त होने वाली जमीन से पैदावार का निष्चित भाग राज्यकर के रूप में लिया जाता था। यह मानकर प्रायः पैदावार (अनाज) के रूप में लिया जाता था। यदि वर्शा नहीं हुई हो या कोई अन्य प्राकृतिक कारण से उपज कम हुई हो तो यह कर स्वतः कम हो जाता था। क्योंकि किसानों को पैदा हुए अन्न का निष्चित हिस्सा ही मालगुजारी के रूप में देना होता था। मनुस्मृति में 'भाग' कर की मात्रा भूमि की उर्वरता के अनुसार उपज का 1/6, 1/8, या 1/2 भाग का उल्लेख मिलता है।

गुप्तकालीन विद्वानों–कालीदास ने रघुवंश में तथा नारद ने नारद स्मृति में भाग कर 1/5 भाग लिए जाने का उल्लेख किया है। गुप्तोत्तर कालीन विधिवेत्ता शुक्र ने अपने शुक्रनीतिसार में सिंचाई की सुविधा के अनुसार 1/6, 1/3, 1/4 या 1/2 भाग उपज का भागकर के रूप में लिए जाने का उल्लेख किया है। गुप्तकालीन अभिलेखों में भागकर की मात्रा अनुल्लिखित है लेकिन वे ग्राम एवं पहाड़पुर–दानपत्रों में राजा को भूमि दान से मिलने वाले 1/6 भाग का उल्लेख मिलता है। यह कर गुप्तकाल में खाद्यान्न के रूप में लिया जाता था। कौटिल्य के अर्थशास्त्र में 'भाग' शब्द का प्रयोग कुछ अन्य करों के नाम के साथ राजा का हिस्सा बताने के लिए किया गया है जैसे उदक भाग, लवणभाग आदि। गुप्त अभिलेखों में 'भाग' शब्द प्रायः 'भोग' और 'कर' के साथ संयुक्त मिलता है ('भागभोगकर' अथवा 'भोगभाग कर')।

2–भोगः–दिनेश चन्द्र सरकार की मान्यता रही है कि भोग का अर्थ वे फल, फूल, दूध, ईधन आदि थे, जो प्रजा समय–समय पर राजा को देती थी। मनुस्मृति में 'भोग' एक कर के नाम के रूप में उल्लेखित है। मनुस्मृति के टीकाकार मेधातिथि और कुल्लूक ने भी 'भोग' का अर्थ फल–फूल, सब्जी, घास इत्यादि के रूप में नित्य दी जाने वाली भेंट ही माना है। कतिपय इतिहासकारों का मानना है कि मौर्यकाल में जिस चुंगी को शुल्क संज्ञा से कहा जाता था, उसी को गुप्तकाल में भोगकर कहते थे। भट्ट स्वामी ने उल्लेख किया है कि उपज के छठे भाग में वे सब दरें अर्थात् 1/3 या 1/4 आदि भी आ जाती हैं जो भूराजस्व के रूप में राजा देश के विभिन्न भागों में किसानों से लेता था।

3– करः–'कर' शब्द करों के लिए सामान्य शब्द भी था और एक विशेश कर का नाम भी। एक विशिश्ट कर के रूप में इसका अर्थ विभिन्न विद्वानों ने अलग–अलग माना है। मनुस्मृति के टीकाकारों ने कर के निम्नलिखित अर्थ दिए हैं–

1–मेधातिथि ने 'कर' को वस्तुओं की भेंट माना है।

2–सर्वज्ञनारायण ने 'कर' को भूमि पर नकद कर के रूप में उल्लेख किया है।

3–रामचन्द्र ने उल्लेख किया है कि 'घास', ईधन इत्यादि के रूप में जो कर दिया जाता था वह 'कर' था।

4–कुल्लूक ने गॉव और नगर के निवासियों से भाद्रपद एवं पौश माह में लिया जाने वाला कर माना है।

5–जबकि रघुनन्दन ने इसे ग्रामवासियों से प्रति मास लिया जाने वाला कर माना है।

उपर्युक्त अर्थों से स्पश्ट है कि निश्चित समय पर लिया जाने वाला टैक्स 'कर' कहलाता था। रूद्रदामन के जुनागढ़ अभिलेख से पता चलता है कि यह कर विष्टि (बेगार) तथा प्रणय (आपातकालीन कर) के समान एक अनुचित कर था जिसको वसूल करना रूद्रदामन प्रजा के लिए कष्टकर समझता था। दिनेशचन्द्र सरकार के मतानुसार अनाज के हिस्से के अतिरिक्त जो टैक्स किसानों को देना होता था उसे 'कर' कहते थे। गुप्तकालीन साहित्य तथा अभिलेखों में 'कर' सभी टैक्सों के लिए प्रयुक्त हुआ है। अनुदान लेखों में 'सर्वकर परिहारे' या 'सर्व करसमेत' शब्दावली प्रयुक्त हुई है उसमें 'कर' का अर्थ स्पष्टतः सभी टैक्स है।

4– 'बलि':– गुप्तकाल में अन्य करों में सर्वप्रथम 'बलि' का उल्लेख किया जा सकता है। ऋग्वेद में यह प्रजा तथा विजित राजाओं से लिया जाने वाला एक ऐच्छिक कर था। जातकों में इस कर का उल्लेख एक अतिरिक्त कर के रूप में मिलता है। अशोक के रूम्मिनदेई स्तम्भ लेख में भी 'बलि' का उल्लेख मिलता है जिसे कतिपय विद्वानों ने 'धार्मिक कर' माना है। बलि का अर्थ धार्मिक कर गुप्तकालीन अभिलेखों में उसके प्रयोग के अनुरूप है। एस0 के0 मैती के अनुसार 'चरू' और 'सत्र' आदि के साथ उल्लिखित होने के कारण गुप्तकालीन लेखों में भी यह धार्मिक शुल्क के रूप में ही प्रयुक्त हुआ है। 'बलि' में घी, अनाज, चावल, फल, फूल आदि देवताओं को अर्पित किये जाते थे। इसका अर्थ राजा को दिए जाने वाला धार्मिक कर किया जा सकता है।

5– उपरिकर और उद्रंगः– इस काल के अभिलेखों में 'उपरिकर' तथा 'उद्रंग' का भी प्रयोग मिलता है। यू0 एन0 घोशाल के अनुसार 'उद्रंग' स्थायी किसानों से तथा उपरिकर अस्थायी किसानों से वसूल किया जाता था, किन्तु अधिकतर विद्वानों ने घोषाल के इस मत से असहमति जताई है। दिनेश चन्द्र सरकार ने उपरिकर का अर्थ अतिरिक्त टैक्स किया है। सतीश कुमार मैती डी. सी. सरकार के विचार से सहमत हैं। लेकिन मैती के अनुसार उद्रंग पुलिस टैक्स भी हो सकता है जो सीानीय पुलिस के खर्च के लिए प्रजा से लिया जाता था। राजतंरगिणी में द्रंग पुलिस चौकी के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है, इसी आधार पर मैती ने 'उद्रंग' का अर्थ पुलिस टैक्स किया है।

6– हिरण्यः– गुप्तकाल से पूर्व की स्मृतियों एवं गुप्तकालीन कई अभिलेखों में 'हिरण्य' शब्द प्रयुक्त किया गया है। विष्णु स्मृति के अनुसार राजा को वस्तु के मूल्य का 1–50 भाग हिरण्य के रूप में लेना चाहिए। वाकाटक अभिलेखों में अनुदान–ग्राहियों को 'हिरण्य' से मुक्त किया गया है। इससे पता चलता है कि हिरण्य राज्य की आय के प्रमुख साधनों में से एक था। डी.सी. सरकार ने हिरण्य का अर्थ वह कर किया है जो नकद कर राज्य को दिया जाता था। यू0 एन. घोषाल के अनुसार हिरण्य वह टैक्स था जो विशेश प्रकार की फसलों पर नकद लिया जाता था।

7– वात–भूत करः– धरसेन द्वितीय के मालिय ताम्रलेख में वात–भूत शब्द आया है। विद्वानों की मान्यता रही है कि सम्भवतः वायु और पानी के देवताओं की पूजा के लिए यह कर इकट्ठा किया जाता होगा।

8– हलिकाकरः– शर्वनाथ के खोह ताम्रपत्र लेख में हलिकाकर शब्द आता है। यू0 एन0 घोषाल के अनुसार यह कर हलों पर था।

9– शुल्कः– अमरकोश में चुंगी कर के लिए शुल्क दिया है। प्रवरसेन द्वितीय के सिवानी अभिलेख में भी शुल्क का उल्लेख है। स्कन्दगुप्त के बिहार अभिलेख में शुल्क इकट्ठा करने वाले अधिकारी शौल्किक का उल्लेख है। यू0एन0 घोषाल के मतानुसार व्यापारियों पर लगाया जाने वाला कर शुल्क कहलाता था। एस. के. मैती के अनुसार नगर में बन्दरगाहों पर व्यापारियों द्वारा लाई वस्तुओं पर लगाया जाने वाला कर शुल्क कहलाता था।

उपरोक्त वर्णित करों के अतिरिक्त राज्य को जखीरों, खानों और नमक की खुदाई से भी बहुत आय होती थी। राज्य को जुर्माने से भी आय होती थी। नारद और वृहस्पति ने किन अपराधों में राज्य को कितना जुर्माना लेना चाहिए उसका विस्तृत विवेचन किया है। गुप्तकालीन अभिलेख भी इसकी पुष्टि करते हैं।

गुप्तशासन व्यवस्था के दौरान विकेन्द्रीकरण की प्रवृत्ति तीव्र हुई। एक तरफ राजा का पद ज्यादा गौरवमय बन गया, तो दूसरी तरफ उसकी शक्ति क्षीण होने लगी। गुप्तशासकों के अधीनस्थ शासक और सामन्त ज्यादा शक्तिशाली हो गए। इनको राजा के अनेक अधिकार (यथा–शासन करने का, सेना रखने का, सिक्का एवं मुद्रा जारी करने का) स्वतः प्राप्त हो गए। प्रो0 रामशरण शर्मा के अनुसार कुल मिलाकर गुप्तशासन–प्रणाली में हमें सामन्तवाद की स्पष्ट विशेषताएँ दिखाई देती हैं। वस्तुतः गुप्तशासन प्रणाली ने परवर्तीकाल के उस प्रशासनिक ढाँचे की नींव तैयार कर दी जो पूर्णतः सामन्तवादी था।

2.8 सारांश

गुप्त सम्राटों का काल भारतीय इतिहास में 'स्वर्णयुग' व 'क्लासिकल युग' के नाम से विख्यात है। इस युग में अनेक उदात्त, मेधावी और शक्तिशाली राजाओं ने उत्तर–भारत को एक छत्र के नीचे संगठित कर शासन में सुव्यवस्था तथा देश में शान्ति की स्थापना की। गुप्त सम्राटों ने जिस विस्तृत प्रशासनिक व्यवस्था का निर्माण किया वह अत्यन्त उदार एवं सुसंगठित थी। सर्वत्र शान्ति एवं सुव्यवस्था विद्यमान थी। गुप्तचरों एवं पुलिस अधिकारियों के आचरण से प्रजा को कोई कष्ट नहीं था। लोकोपकारी कार्य करने के लिए गुप्त सम्राट सदैव तत्पर रहते थे। स्कन्दगुप्त के जूनागढ़ अभिलेख से विदित होता है कि

'जिस समय वह राजा शासन कर रहा था कोई भी व्यक्ति ऐसा नहीं था जो धर्मच्युत हो, दुःखी हो, दरिद्र हो, व्यसनी हो, लोभी हो अथवा दण्डनीय होने के कारण अधिक सताया गया हो।' इस प्रकार हम देखते हैं कि गुप्तकालीन शासन–प्रबन्ध एक आदर्श प्रस्तुत करती है जिसमें जनता का किसी प्रकार का शोषण नहीं हुआ और प्रजा सदैव सुख–शान्ति का अनुभव करती थी।

2.9 शब्दावली

1. कुमारामात्य – प्रमुख पदों पर कार्य करने वाले कर्मचारी
2. कुमारामात्याधिकरण – कुमारामात्य का कार्यालय
3. महासेनापति – सेना का सर्वोच्च अधिकारी
4. महापीलुपति – गज सेना का अध्यक्ष
5. महाअश्वपति – अश्वसेना का अध्यक्ष
6. महासन्धिविग्रहिक – युद्ध और शान्ति का मंत्री
7. दण्डपाशिक – पुलिस विभाग का मुख्य अधिकारी
8. विनय स्थिति स्थापक – धार्मिक मामलों का मुख्य अधिकारी
9. रणभाण्डागारिक – सैनिक की आवश्यकताओं की पूर्ति करने वाला प्रधान अधिकारी
10. महादण्डनायक – युद्ध एवं न्याय–विभाग का कार्य देखने वाला
11. महाभण्डागाराधिकृत – राजकीय कोष का प्रधान
12. महाबलाधिकृत – सैनिक अधिकारी
13. महाअक्षपटलिक – अभिलेख विभाग का प्रधान
14. ध्रुवाधिकरण – कर वसूलने वाले विभाग का प्रधान
15. अग्रहारिक – दान विभाग का प्रधान
16. शाल्किक – भूमिकर वसूलने वाला
17. गौल्मिक – जंगलों (वनों) से आमदनी प्राप्त करने वाला
18. महाप्रतिहार – राजप्रसाद का प्रभारी
19. तलवाटक–ग्राम अधिकारी
20. गोप–ग्राम अधिकारी
21. राष्ट्र–वर्तमान राज्य के समान
22. देश–वर्तमान राज्य के समान
23. भुक्ति–वर्तमान कमीश्नरी के समान
24. उपरिक–भुक्ति का शासक
25. गोप्ता–सीमान्त प्रदेश का शासक
26. विषयपति–जिलाधिकारी
27. श्रेष्ठी–साहूकारों एवं उद्योगपतियों का प्रतिनिधि
28. सार्थवाह–व्यवसायियों का प्रतिनिधि
29. कुलिक–शिल्पकारों का प्रतिनिधि
30. कायस्थ–लिपिक
31. कुटुम्बी–ग्राम व्यवस्थापक

2.10 स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्न

वस्तुनिष्ठ प्रश्नः–

16. विषयपति कौन होता था ?

(अ) न्यायाधीश (ब) जिलाधिकारी (स) सैन्य अधिकारी (द) पुलिस अधिकारी

17. व्यापारियों के नेता को क्या कहाँ जाता था ?

(अ) सार्थवाह (ब) श्रेष्ठी (स) पूण (द) श्रेणी

18. प्रशासन की सबसे छोटी इकाई क्या थी ?

(अ) गाँव (ब) वीधि (स) पेठ (द) विषय

19. पुलिस विभाग के प्रधान को क्या कहा जाता था ।

(अ) महाबलाधिकृत (ब) महादण्डनायक (स) रणभाण्डागारिक (द) दण्डपारीक

20. महासंधिविग्रहिक का क्या कार्य था ?

(अ) राजस्व विभाग का प्रमुख (ब) युद्ध एवं शान्ति मंत्री

(स) पुलिस विभाग का प्रमुख (द) कोषाध्यक्ष

21. गुप्तकालीन न्यायालय का वर्णन हमें किस ग्रंथ में मिलता है?

(अ) मनुस्मृति (ब) बृहस्पति स्मृति (स) नारद स्मृति (द) गौतम स्मृति

22. हरिषेण किस गुप्त शासक का संधि विग्रहिक था ?

(अ) चन्द्रगुप्त प्रथम (ब) समुद्रगुप्त (स) चन्द्रगुप्त द्वितीय (द) कुमारगुप्त

23. कुमारामात्य के कार्यालय को 'कुमारामात्याधिकरण' कहते थे। (सत्य/असत्य)

24. गुप्तकालीन केन्द्रीय शासन के विविध विभागों को क्या कहा जाता था ?

(अ) कार्यालय (ब) अधिकरण (स) श्रेष्ठी (द) सार्थवाह

25. सेना के सबसे बड़े पदाधिकारी महासेनापति कहलाते थे। (सत्य/असत्य)

26. पुलिस द्वारा उत्पीड़न के प्रमाण गुप्तकालीन किस अभिलेख में मिलता है ?

(अ) प्रयाग प्रशस्ति (ब) भीतरी अभिलेख (स) जूनागढ़ अभिलेख (द) मन्दसोर अभिलेख

27. 'पूग' नगर में रहने वाली विभिन्न जातियों की समिति होती थी। (सत्य/असत्य)

28. ग्रामों में न्याय का कार्य कौन करता था ?

(अ) पुलिस (ब) न्यायालय (स) कुल (द) ग्राम–पंचायतें

29. गुप्तकाल में पेशेवर वकीलों का अस्तित्व मिलता है। (सत्य/असत्य)

30. गुप्तकाल में 'उद्रंग' क्या था ?

(अ) कर (ब) किसान (स) व्यापारी (द) पुलिस

उत्तर–

1.(ब) 2. (अ) 3.(अ) 4.(द) 5. (ब) 6.(ब) 7.(ब) 8.(सत्य) 9.(ब) 10.(सत्य) 11.(स) 12(स) 13.(द) 14.(असत्य) 15.(अ)

निम्नलिखित पर 100–150 शब्दों में संक्षिप्त टिप्पणियाँ लिखिएं।

6. गुप्तकालीन पुलिस–प्रशासन
7. गुप्तकालीन सैन्य–संगठन
8. गुप्तकालीन नगर एवं ग्राम प्रशासन
9. कुमारामात्य
10. गुप्तकालीन प्रमुख राजकीय कर

11. गुप्तकालीन न्याय–व्यवस्था

2.11 निबन्धात्मक प्रश्न

4. गुप्तकालीन प्रशासनिक व्यवस्था की प्रमुख विशेषताओं का वर्णन कीजिए।

5. गुप्त साम्राज्य की प्रशासन पद्धति पर प्रकाश डालिए।

6. गुप्तकालीन प्रमुख करों का उल्लेख करते हुए राजस्व प्रशासन का विवरण दीजिए।

7. गुप्त काल में केन्द्रीय प्रशासन के संचालन में मंत्रिपरिषद एवं अन्य अधिकारीगणों की भूमिका का उल्लेख कीजिए।

8. गुप्तकालीन प्रान्तीय शासन व्यवस्था पर प्रकाश डालिए।

2.12 सन्दर्भ ग्रन्थ एवं इस खण्ड के लिए उपयोगी पाठ्य–पुस्तकें

9. Majumdar R. C. *et. al.* (Eds) The History and Culture of Indian people, Vol. III: The classical Age (1970) Vidhya Bhawan, Bombay.

10. परमेश्वरी लाल गुप्ता–गुप्त साम्राज्य (1970) विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी।

11. वासुदेव उपाध्याय– गुप्त साम्राज्य का इतिहास

12. श्रीराम गोयल– गुप्त साम्राज्य का इतिहास (1995) कुसुमाञ्जलि प्रकाशन, जोधपुर।

ब्लॉक दो

इकाई तीनः गुप्त साम्राज्य का पतन

3.1 प्रस्तावना

3.2 इकाई के उद्देश्य

3.3 पतन के कारण

3.4 निर्बल उत्तराधिकारी एवं केन्द्रीय शासन की शिथिलता

3.5. सामन्तवाद और सामन्तों के विद्रोह

3.6 बौद्धनीति का अनुसरण

3.7 वंशानुगत पद

3.8 साम्राज्य की विशालता

3.9 पारिवारिक अन्तर्कलह एवं उत्तराधिकार के नियम का अभाव

3.10 आर्थिक अवनति

3.11 बाह्य आक्रमण

3.12 विदेश नीति का परित्याग

3.13 युद्धों का आधिक्य

3.14 उपसंहार

3.15 सन्दर्भ सूची

3.1 प्रस्तावना

गुप्त राजाओं का शासन काल प्राचीन भारतीय इतिहास के सर्वाधिक गौरवशाली युग का प्रतिनिधित्व करता है। गुप्त साम्राज्य को विस्तृत एवं सशक्त बनाने का कार्य समुद्रगुप्त एवं चन्द्रगुप्त द्वितीय जैसे महान शासकों ने किया। जिनकी विजयों के परिणाम स्वरूप भारत में मौर्य शासन के उपरान्त विलुप्त हुई राजनीतिक एकता पुनःर्स्थापित हुई। गुप्त वंश के अन्तिम पराक्रमी शासक स्कन्दगुप्त ने यद्यपि गुप्त साम्राज्य को अक्षुण्ण रखने का अथक प्रयास किया तथा अपने शासनकाल में वह इस उद्देश्य में सफल भी हुआ, किन्तु उसके उत्तराधिकारी उसके समान योग्य नहीं थे। अतः स्कन्दगुप्त की मृत्यु (467 ई0) के उपरान्त गुप्त साम्राज्य का विघटन प्रारम्भ हो गया। जिस प्रकार से गुप्त साम्राज्य का गठन हुआ था। उसका पतन होना अपरिहार्य था।

3.2 इकाई के उद्देश्य

विशाल गुप्त साम्राज्य का पतन एक नहीं अपितु अनेक कारणों से हुआ यहाँ उन कारणों पर प्रकाश डालने का प्रयास किया गया है जिनकी वजह से महान गुप्त साम्राज्य का विलोपन हो गया। भारत में जिन महान राजवंशों ने अपने–अपने महान शासकों के अदम्य साहस एवं पराक्रम के बल पर भारत भूमि के विशाल भू–भाग पर शासन किया। उन सबके पतन में कई एक कारक समान रूप से उत्तरदायी

परिलक्षित होते हैं। गुप्तवंश ने लगभग 275 ई0 से 550 ई0 तक शासन किया, इस वंश के पतन के कारण जानने का प्रयास इस इकाई में किया जायेगा।

3.3 पतन के कारण

वस्तुतः स्कन्दगुप्त के बाद कई शासक सत्ता में आये परन्तु उनमें अपने पूर्वजों के समान न हो पराक्रम था और न ही इतनी सुझबुझ, जो इतने बड़े साम्राज्य को अक्षुण्ण बनाये रख सकें। स्कन्दगुप्त के बाद अधिकांशतः शासक अत्यन्त निर्बल थे जिस कारण उनके समय में गुप्त साम्राज्य का कलेवर घटने लगा और मात्र पूर्वी भारत तक सीमित रह गया और अन्ततः 550 ई0 के लगभग पूर्णतः विलुप्त हो गया। आइये अब विभिन्न शीर्षकों के अन्तर्गत गुप्त साम्राज्य के पतन के कारणों का अध्ययन करते हैं।

3.4 निर्बल उत्तराधिकारी एवं केन्द्रीय शासन की शिथिलता

गुप्त साम्राज्य के पतन का यह तात्कालिक कारण था क्योंकि स्कन्दगुप्त की मृत्यु 467 ई0 के पश्चात् के गुप्त राजाओं में योग्यता, कुशलता एवं पराक्रम का नितान्त अभाव था। गुप्त साम्राज्य का स्वरूप राजतन्त्रात्मक था, तथा इस प्रकार की शासन पद्धति में राज्य का विकास एवं पतन राजा की योग्यता पर निर्भर करता था। गुप्तवंश के प्रारम्भिक नरेश अत्यन्त योग्य शक्तिशाली थे। समुद्रगुप्त एवं उसका पुत्र चन्द्रगुप्त द्वितीय 'विक्रमादित्य' सम्पूर्ण पृथ्वी को जीतने की आकांक्षा रखते थे। इसी कारण समुद्रगुप्त एवं चन्द्रगुप्त द्वितीय जैसे योग्य व प्रतापी शासक गुप्त साम्राज्य को इतिहास में गौरवपूर्ण स्थान दिलाने में सफल हुए। कुमारगुप्त प्रथम भी इतना योग्य था कि वाह्य आक्रमणों को विफल कर उसने विशाल साम्राज्य को अक्षुण्ण बनाये रखा। स्कन्दगुप्त एक वीर एवं पराक्रमी योद्धा था जिसने पुष्यमित्र एवं हूण जैसे भयानक शत्रुओं को परास्त किया। दुर्भाग्यवश स्कन्दगुप्त के उत्तराधिकारी अयोग्य एवं निर्बल प्रमाणित हुए। वे उत्तराधिकार में प्राप्त गुप्त साम्राज्य को अक्षुण्ण भी न रख सके। स्कन्दगुप्त के बाद के गुप्त शासकों में कोई भी इतना पराक्रमी नहीं हुआ जो दूरस्थ प्रदेश के सामन्तों पर नियन्त्रण रख सकता।

गुप्त साम्राज्य के पतन के समय के कारणों पर प्रकाश डालने वाले साक्ष्य अस्पष्ट और संदिग्ध हैं। अधिकांश साक्ष्य अस्पष्ट और अल्प हैं। अतः बाद के गुप्त शासकों का निश्चित क्रम देना भी एक बड़ी समस्या है। विशाल और शक्तिशाली गुप्त साम्राज्य का पतन स्कन्दगुप्त के पश्चात् हुआ। पुरूगुप्त और विष्णुगुप्त जिनका कार्यकाल अन्तर 468 से 570 ई0 है के बीच के कई सम्राट हुए। किन्तु इन सम्राटों का गुप्त वंशावली में स्थान सुनिश्चित करना इतिहासकारों के लिए अत्यन्त कठिन कार्य है। कतिपय इतिहासकार सुविधा के दृष्टिकोण से गुप्त शासकों को दो शाखाओं में विभक्त करते हैं। प्रथम स्कन्दगुप्त के वंशज जैसे–पुरूगुप्त, नरसिंहगुप्त, कुमारगुप्त द्वितीय दूसरे–बुधगुप्त के वंशज जैसे–विष्णुगुप्त, कुमारगुप्त द्वितीय एवं वज्र। बुधगुप्त के समय तक गुप्त साम्राज्य पतन के कगार पर पहुँच चुका था, और बुधगुप्त के पश्चात् तो गुप्तवंश की एकता भी नष्ट हो गई। कालान्तर में तो गुप्त साम्राज्य केवल मगध के आसपास तक ही सीमित हो गया। प्रो0 श्रीराम गोयल का विचार है कि साम्राज्य विघटन की जो प्रक्रिया बुधगुप्त के शासनकाल में प्रारम्भ हुई वह धीरे–धीरे अधिकाधिक सबल होती गयी है और प्रान्तीय अधिकारियों तथा अधीन राजाओं के अधिकारों में वृद्धि एवं हूण आक्रमण के कारण एक–एक करके अनेक प्रान्त गुप्तों के हाथ से निकल गए अथवा उन पर उनका प्रभुत्व नाम मात्र के लिए रह गया। बुधगुप्तोत्तर काल में गुप्तों की शक्ति का केन्द्र धीरे–धीरे पूर्व की ओर सिकुड़ता गया। पाँचवीं शती ई0 तक साहित्य में गुप्तों का उल्लेख मुख्यतः साकेत, प्रयाग, अयोध्या, श्रावस्ती, कौशाम्बी और उज्जयिनी के सिलसिले में हुआ और मुद्राएँ तथा अभिलेखिय साक्ष्य भी इस बात की

तरफ संकेत करते हैं कि प्रारम्भिक गुप्त नरेशों का घनिष्ठतम सम्बन्ध उत्तर प्रदेश व इससे निकटवर्ती क्षेत्रों से रहा था। लेकिन छठी शताब्दी में स्थिति बदल जाती है। हेनसांग बालादित्यराज को मगध का राजा बताता है। आर्यमंजूश्रीमूकल्प में द्वितीय नरसिंहगुप्त बालादित्य को पूर्व दिशा का राजा बताया गया है और तृतीय कुमारगुप्त तथा भानुगुप्त को गौड़ का। इसके अतिरिक्त वह नरेश भी, जिसके पास 539 ई0 में चीनी सम्राट ने एक दूत–मण्डल भेजा था, 'मगध का राजा' ही बताया गया है। स्पष्टतः छठी शती ई0 में गुप्त सम्राटों की शक्ति का केन्द्र पूर्व की तरफ खिसक गया था। इसका संकेत इस बात से भी मिलता है कि अन्तिम दो गुप्त नृपतियों–तृतीय कुमारगुप्त व विष्णुगुप्त के अधिकांश सिक्के कालिघाट–निधि (बंगाल) में मिले हैं। इस विषय में 543 ई0 के पंचम दामोदरपुर–दानशासन से पता चलता है कि उस युग में जब सर्वत्र प्रान्तीय गवर्नर और अधीन राजा अधिकाधिक स्वतंत्र होते जा रहे थे, पुण्ड्रवर्धन भुक्ति (उत्तरी बंगाल) में बुधगुप्त के समय की प्रशासकीय व्यवस्था बनी हुई थी। दामोदरपुर–दानशासन लेख लिखे जाने के समय पुण्ड्रवर्धन भुक्ति में स्वंय 'महाराज' पुत्र देवभट्टारक उपरिक महाराज (गवर्नर) के रूप में नियुक्त था। इससे (543 ई0) में उत्तरी बंगाल पर गुप्तों का अधिकार सिद्ध होता है साथ ही यह भी प्रमाणित होता है कि गुप्त सम्राट अब पश्चिमी प्रान्तों के स्थान पर पूर्वी प्रान्तों में अधिक दिलचस्पी ले रहे थे।

इस सन्दर्भ में उल्लेखनीय है कि बंगाल का दक्षिण पूर्वी भाग (प्रयाग प्रशस्ति में उल्लेखित समतट) समुद्रगुप्त के जमाने में गुप्त साम्राज्य का प्रत्यन्त राज्य था परन्तु वैन्यगुप्त (507 ई0) के शासन काल में साम्राज्य का अविभाज्य अंग बन गया था। छठी शताब्दी ई0 में पश्चिमोत्तर दिशा से आने वाले हूणों और पश्चिमी मालवा के वर्धनों के दबाव के कारण गुप्तशक्ति का केन्द्र पूर्व की ओर सिमटता जा रहा था। भारत के बड़े साम्राज्यों के विघटन काल में उसके सिकुड़ने की दिशा इस बात में पर निर्भर रही थी कि अधिक भंयकर आक्रमण किस दिशा से हुए जैसे मौर्यों एवं मुगलों के साम्राज्य के सिकुड़ने की प्रक्रिया इसी प्रकार रही थी। पश्चिमोत्तर दिशा से आने वाले विदेशी आक्रमणकारियों तथा दक्षिण के सातवाहनों के दबाव से मौर्य साम्राज्य मगध तक सिकुड़कर रह गया और उसी प्रकार मुगल साम्राज्य पूर्व दिशा से अंग्रेजों, दक्षिण से मराठों और पश्चिमोत्तर दिशा से अफगानों का दबाव पड़ने के कारण मात्र दिल्ली तक सिमट कर रह गया था और अन्ततः कायर एवं निर्बल उत्तराधिकारी इन बड़े साम्राज्य को संभाल नहीं पाये।

3.5 सामन्तवाद और सामन्तों का विद्रोह

गुप्त साम्राज्य के पतन का प्रमुख कारण सामन्तवादी व्यवस्था थी। समुद्रगुप्त ने स्थानीय शासकों को आंशिक स्वतंत्रता देकर सामन्तवादी प्रथा को बढ़ावा दिया था। उसने अपने साम्राज्य को अनेक सामन्ती इकाईयों के संघ के रूप में संगठित किया था। इस संघ का केन्द्रीय भाग गंगा घाटी थी, जिस पर शासन करने वाले नरेशों को उन्मूलित करके समुद्रगुप्त ने वहाँ अपना प्रत्यक्ष शासन स्थापित किया था, लेकिन शेष विजित प्रदेशों में उसने विविध स्थानीय राजाओं और गणराज्यों को अपने प्रभुत्व में आंशिक स्वतंत्रता का उपभोग करने दिया। साथ ही उसने अनेक प्रदेशों में नए वंशों की स्थापना भी की, जिन्हें उनकी परिस्थिति के अनुसार स्वतंत्रता दी गई थी। जैसे कि कामरूप के वर्मा, बुन्देलखण्ड–बघेलखण्ड के पाण्डव, परिव्राजक तथा उच्चकल्प एवं पश्चिमी मालवा के औलिकर अथवा वर्मा वंशों का उदय 350 से 375 ई0 के मध्य समुद्रगुप्त की कृपा से हुआ था। दक्षिणापथ के राजाओं को विजित करने के उपरान्त उसने ग्रहण (शत्रु पर अधिकार), मोक्ष (शत्रु को मुक्त करना) और अनुग्रह (राज्य को लौटाकर शत्रु पर दया करना) की नीति का अनुसरण किया। इससे जान पड़ता है कि समुद्रगुप्त ने सुदूरवर्ती दक्षिण के शासकों के प्रति सहानुभूति अपनाई। उसके द्वारा स्थापित साम्राज्य में सिद्धान्ततः 'सम्राट' अनेक छोटे राज्यों के 'स्वामियों का स्वामी' अर्थात् 'महाराजाधिराज' था। स्पष्टतः समुद्रगुप्त के अधीन

बहुत से राजा 'सामन्त' कोटि के थे। यद्यपि प्रयाग प्रशस्ति में 'सामन्त' शब्द का प्रयोग नहीं मिलता, लेकिन हर्षचरित में सामन्तों के अधिकारों एवं कर्तव्यों का विवरण मिलता है।

सामन्त शब्द का उल्लेख 'कौटिल्य' के अर्थशास्त्र में स्वतंत्र पड़ोसी के अर्थ में किया गया है। सर्वप्रथम 'अश्वघोष' (प्रथम शती) ने बुद्धचरित में इस शब्द का प्रयोग जागीरदार के लिए किया है। गुप्तकाल से सामन्त शब्द का प्रयोग सामान्यतः इसी अर्थ में किया जाने लगा। सामन्तवाद के विकास में शासकों द्वारा प्रदत्त भूमि तथा ग्राम अनुदानों का प्रमुख योगदान रहा है। मौर्योत्तर काल विशेषतया गुप्तकाल से शासन की एक प्रवृति ब्राह्मणों तथा अधिकारियों को भूमिदान में दिए जाने से हुई। जो भूमि ब्राह्मणों को दान में दी जाती थी, उसे 'ब्रह्मदेय' कहा गया है।

भूमिदान की प्रथा को महाकाव्यों और पुराणों में पुण्य कार्य बताया गया है। महाभारत में भूमिदान के महत्व को बताते हुए भूमिदान प्रशंसा नामक अध्याय की रचना की गई। महाभारत और पुराणों को अंतिम रूप गुप्त युग के आस–पास दिया गया। जिससे स्पष्ट है कि भूमिदान गुप्त युग में राजा का कर्तव्य समझा जाने लगा। भूमिदान का सबसे प्राचीन अभिलेखीय प्रमाण पहली शती के एक सातवाहन अभिलेख में मिलता है, जिसमें अश्वमेध यज्ञ में एक गाँव दान की चर्चा है। पाँचवी शती में भूमिदान की प्रवृति बढ़ने लगी। भूमिदान के साथ दो चीजें जुड़ी थी। एक तो राजस्व के समस्त साधनों को ग्रहीता के नाम पर हस्तांतरित कर दिया जाता था और दूसरे ग्रहीता को उस भूमिखण्ड की आन्तरिक सुरक्षा और प्रशासनिक उत्तरदायित्वों को निभाना पड़ता था। इस प्रकार राजा ने अपने नियंत्रण को उन स्थानों पर से हटा दिया, जो स्थान भूमिदान के रूप में दिए जाते थे। अब तक राजा का उत्तरदायित्व जनता को आन्तरिक सुरक्षा, शान्ति व्यवस्था आदि का प्रबन्ध करना माना जाता था और इसके बाद बदले में वहीं कर प्राप्त करने वाला होता था। अब ये दोनों अधिकार जिस वर्ग के हाथ में आ गए उन्हें 'सामन्तवर्ग' कहा जा सकता है। पाँचवी शती तक के अभिलेखों से ज्ञात होता है कि राजा चोरों को दण्डित करने का अधिकार नहीं त्यागता था। परन्तु आगे चलकर चोरों को दण्डित करना या परिवार की सम्पत्ति इत्यादि के झगड़ों पर न्याय देने का अधिकार भी भूमिदान के साथ ब्राह्मणों को हस्तांतरित किया जाने लगा।

गुप्तकाल के प्रारम्भिक दिनों में गुप्त साम्राज्य के केन्द्रीय प्रान्तों में किसी भी सामन्त को सम्राट की अनुमति के बिना स्वयं भूमिदान देने का अधिकार नहीं था। परन्तु छठीं शताब्दी तक हमें ऐसे प्रमाण मिलने शुरू हो गए जहाँ कुमारामात्य महाराज नन्दन जैसे सामन्त भी बिना सम्राट की आज्ञा के भूमिदान करने लगे। इससे जान पड़ता है कि छठीं शती तक विकेन्द्रीकरण की प्रवृति पूर्णता प्राप्त कर चुकी थी और अब सामन्त अपनी–अपनी भूमि के वास्तविक शासक बन बैठे थे। इनके साथ केन्द्रीय सम्राट का केवल इतना ही सम्पर्क था कि वे समय–समय पर सम्राट को उपहार, भेंट इत्यादि देकर उनके प्रति अपनी निष्ठा प्रकट करते रहें और उनकी सभा में प्रस्तुत होकर उनके प्रति अपनी अधीनता का प्रदर्शन करें।

यह विकेन्द्रीकरण की प्रवृति न केवल ब्रह्मदेय भूमि पर ब्राह्मणों के भूमिपति बन जाने से उत्पन्न हुई, बल्कि जब शासकों ने उपरिक, कुमारामात्य इत्यादि जैसे अपने प्रमुख कर्मचारियों को वेतन के बदले में भूमिदान देना शुरू किया और उनका पद क्रमशः वंश परम्परागत बनने लगा, तब ये उपरिक और कुमारामात्य इत्यादि भी सामन्तों की तरह स्वतंत्र होने लगे। रामशरण शर्मा के विचारानुसार इस प्रकार अमात्य और कुमारामात्य सामन्त विरूद्ध बनते गए।

जैसे–जैसे गुप्तवंशीय केन्द्रीय सत्ता क्षीण होती गई वैसे–वैसे सामन्त शासकों की संख्या बढ़ती गई। कहाँव अभिलेख में स्कन्दगुप्त को क्षित्रिपशतपतेः (सैकड़ो राजाओं का स्वामी) कहा गया है। मन्दसोर अभिलेख 467 ई0 के अनुसार गोविन्दगुप्त के चरणों में अनेक राजा सिर झुकाते थे। पुनः गुप्त–साम्राज्य अनेकानेक भुक्तियों (प्रान्तों) और विषयों (जिलों) में विभक्त था। यहाँ गुप्तों के अधीन सामन्त शासन बढ़ते थे। परन्तु केन्द्रीय सरकार की निर्बलता से लाभ उठाकर इन सामन्तों ने शनैः शनैः अपनी स्वतंत्रता

घोषित करनी प्रारम्भ कर दी। स्कन्दगुप्त की मृत्यु के उपरान्त पश्चिमी भारत में गुप्तों का कोई अभिलेख नहीं प्राप्त हुआ है। इस क्षेत्र से 467 ई0 के बाद सिक्के भी नहीं मिले हैं। इससे प्रमाणित होता है कि यह प्रदेश स्कन्दगुप्त की मृत्यु के बाद ही गुप्त साम्राज्य के नियंत्रण से बाहर हो गया।

कुमारगुप्त प्रथम के शासन काल में बंगाल में पुण्ड्रवर्धन भुक्ति का गवर्नर चिरातदत्त केवल 'उपरिक' कहा जाता था। परन्तु बन्धुगुप्त के शासनकाल में उसी भुक्ति के गवर्नर ब्रह्मदत्त और जयदत्त उपरिक महाराज की बड़ी उपाधि से जाने जाते थे। स्कन्दगुप्त का अन्तर्वेदी का शासक सर्व्वनाग केवल 'विषयपति' कहलाता था। परन्तु बुधगुप्त के समय एरण का प्रशासक मातृविष्णु 'महाराज' कहा जाता था। बुन्देलखण्ड में परिव्राजक नरेश हस्ती और संक्षोभ के 6 ताम्रपत्र प्राप्त हुए हैं। हस्ती ने 475 ई0 से 517 ई0 तक शासन किया और संक्षोभ ने 518 ई0 से 527 ई0 तक। लेकिन वे अपने लेखों में गुप्त सम्राट का नाम नहीं लेते।

परिव्राजकों के दक्षिण–पश्चिम में बुन्देलखण्ड में ही उच्चकल्प वंश राज्य करता था। इस वंश के दान पत्रों से इसके 6 राजाओं–औद्यदेव, कुमारदेव, जयस्वामी, व्याघ्र, जयनाथ और सर्वनाथ के नाम ज्ञात होते हैं। मिराशी ने व्याघ्र का समीकरण नचना और गंज लेखों के व्याघ्रदेव से किया है जो वाकाटक नरेश पृथिवीषेण द्वितीय के अधीन था। यदि यह ठीक है तो मानना पड़ेगा कि उच्चकल्प वंश के स्थान पर वाकाटकों की अधीनता स्वीकार कर ली थी। स्कन्दगुप्त के बाद सौराष्ट्र में 'भटार्क' ने मैत्रक वंश की स्थापना की। उसके पश्चात् घरसेन प्रथम, द्रोणसिंह और ध्रुवसेन प्रथम ने राज्य किया। प्रथम दो शासक भटार्क और धरसेन केवल सेनापति थे। परन्तु तृतीय नरेश द्रोणसिंह ने 'महाराज' की उपाधि धारण की। चतुर्थ शासक ध्रुवसेन के अभिलेख में परमभट्टारक–पादानुध्यात' विरूद्ध का प्रयोग किया गया है। इन लेखों की तिथियाँ गुप्त संवत् 206 अर्थात् 525 ई0 से गुप्त संवत् 226 ई अर्थात् 545 ई0 तक है। अतः यह वंश 545 ई0 तक सामन्त शासक रहा। आर.सी. मजुमदार के अनुसार यह वंश नाममात्र के लिए ही गुप्तवंश के अधीन था।

बुधगुप्त के 484–485 ई0 के एरण अभिलेख से ज्ञात होता है कि वहाँ मातृविष्णु और धन्यविष्णु गुप्तों के अधीन सामन्त थे। एरण के ही एक अन्य अभिलेख से सिद्ध होता है कि कुछ समय बाद धन्यविष्णु ने हूण–नरेश तोरमाण की अधीनता स्वीकार कर ली थी। इस प्रकार मालवा भी गुप्तों के हाथ से निकल गया।

विक्रम संवत् 547 अर्थात् 490 ई0 के सादणी (नीमच के पास) अभिलेख से मालवा में एक नये वंश मानव्यानि के उदय का पता चलता है। इसमें यशोगुप्त, राष्ट्र, राज्यवर्धन, पुण्यसोम और गौरि नामक राजा हुए। मन्दसोर के तिथिविहीन और एक लेख में आदित्यवर्धन राजा का उल्लेख है। 516 ई0 का रिस्थल अभिलेख प्रकाश धर्मा औलिकर का उल्लेख करता है। 532 ई0 का मन्दसोर अभिलेख निश्चित रूप से मालवा पर यशोधर्मा का आधिपत्य सिद्ध करता है। इस प्रकार 485 ई0 के बीच मालवा में निरन्तर राजनीतिक अस्थिरता रही। इससे लगता है कि बार–बार सत्ता का हस्तान्तरण होता रहा। एक बार 510 ई0 में भानुगुप्त और गोपराज ने एरण अभिलेख के अनुसार हूणों को परास्त कर कुछ समय के लिए वहाँ गुप्तों का प्रभुत्व स्थापित कर दिया। लेकिन यह सफलता क्षणिक रही और 532 ई0 के आसपास मालवा पर यशोधर्मा का अधिकार हो गया। इतिहासकारों का अभिमत है कि उत्तर प्रदेश में गुप्तों का विनाश मौखरियों ने किया। 554 ई0 के हड़हा अभिलेख में मौखरी नरेश महाराजाधिराज ईशानवर्मा का उल्लेख है। इसी तरह कुमारगुप्त नामक राजा ने मगध में उत्तरकालीन गुप्त–वंश की स्थापना गुप्त साम्राज्य के विरूद्ध अपनी स्वतंत्रता घोषित करके की थी।

मल्लसरूल (बंगाल) से प्राप्त एक अभिलेख में महाराजाधिराज गोपचन्द्र के सामन्त महाराज विजयसेन के भूमिदान का उल्लेख है। गुनैघर अभिलेख के अनुसार महाराज–महासामन्त विजयसेन गुप्त सम्राट वैन्यगुप्त का दूतक था। इससे अनुमान लगाया जा सकता है कि गोपचन्द्र ने वैन्यगुप्त के बाद बंगाल में

अपने स्वतंत्र राज्य की स्थापना की थी। गोपचन्द्र के उपरान्त धर्मादित्य और समाचारदेव ने भी बंगाल में स्वतंत्र रूप से शासन किया। इस प्रकार प्रकार धीरे–धीरे गुप्त साम्राज्य का विघटन हो गया।

3.6 बौद्धनीति का अनुसरण

प्रारम्भिक गुप्त शासक साम्राज्यवादी एवं वैष्णव धर्म के अनुयायी थे, किन्तु कालान्तर में गुप्त सम्राटों ने वैष्णव धर्म का परित्याग कर बौद्ध नीति को अपनाया। स्कन्दगुप्त के उत्तराधिकारियों ने बौद्ध नीति का पालन करते हुए युद्ध नीति को छोड़कर अहिंसात्मक नीति का पालन करना प्रारम्भ कर दिया। यह नीति गुप्त साम्राज्य के लिए घातक सिद्ध हुई। इस विषय में हेमचन्द्र राय चौधरी का विचार है कि ''जिस प्रकार कलिंग युद्ध के पश्चात् अशोक ने तथा चीनी यात्री ह्वेनसांग के निकट सम्पर्क में आने कारण हर्ष ने बौद्ध धर्म को अपनाया था, तथा इस धर्म परिवर्तन का सर्वाधिक प्रभाव राज्य की सेना पर पड़ा था, उसी प्रकार इन अन्तिम गुप्त सम्राटों के धर्म परिवर्तन के कारण साम्राज्य की राजनीतिक दशा एवं सेना पर अत्यधिक प्रभाव पड़ा।'' बौद्ध धर्म अपनाने के कारण गुप्त शासक राजनीतिक उदारता का परिचय देने लगे जो कालान्तर में गम्भीर गलती सिद्ध हुई, इससे गुप्त साम्राज्य का पतन अवश्यम्भावी हो गया।

गुप्त साम्राज्य की शासन व्यवस्था का संघात्मक रूप साम्राज्य के स्थायित्व में बहुत बड़ी बाधा था। इस व्यवस्था की सफलता पूर्णतः सम्राट की योग्यता पर निर्भर थी। प्रारम्भिक गुप्त सम्राटों में यह योग्यता थी। वे वैष्णव धर्मविलम्बी थे और चक्रवर्ती आदर्श से प्रभावित हुए थे। समुद्रगुप्त समस्त पृथ्वी पर अपना 'प्रचण्ड शासन' स्थापित करने का स्वप्न देखता था। चन्द्रगुप्त द्वितीय विक्रमादित्य विष्णु के तीनों लोकों का राज्य पाने का दावा करता था और स्कन्दगुप्त म्लेच्छों का दमन करना अपना पुनीत कर्त्तव्य समझता था। लेकिन प्रथम कुमारगुप्त के समय गुप्त राजपरिवार पर बौद्ध धर्म की छाया पड़ने लगी जिसके परिणाम स्वरूप गुप्त नरेश पृथ्वी–विजय का स्वप्न के स्थान पर पुण्यार्जन की चिन्ता में लग गये। प्रथम कुमारगुप्त अपने जीवन के अंतिम वर्षों में भिक्षु जीवन व्यतीत करने लगा था। उसके अप्रतिघ प्रकार के सिक्कों पर उसे बिल्कुल बुद्ध के रूप में अंकित किया गया है। 'प्रतिघ' शब्द का महायान बौद्ध धर्म में विशेष अर्थ 'क्रोध' माना गया है, और इसे मनुष्य को बन्धन में डालने वाले छः क्लेशों में से एक बताया गया है। कुमारगुप्त के सिक्कों पर लिखे 'अप्रतिघ' लेख का अर्थ 'क्रोध पर विजय प्राप्त करने वाला' अथवा क्रोध विहीन है। इस आधार पर श्रीराम गोयल ने विचार व्यक्त किया है कि प्रथम कुमारगुप्त बौद्ध धर्म से प्रभावित हुआ था, और इसका समर्थन ह्वेनसांग के इस कथन से भी हो जाता है कि 'शक्रादित्य' अर्थात कुमारगुप्त प्रथम ने नालन्दा में बौद्ध महाविहार की स्थापना की थी।

कुमारगुप्त प्रथम का उत्तराधिकारी स्कन्दगुप्त स्वयं वैष्णव था परन्तु उसने बौद्ध धर्म को भी संरक्षण प्रदान किया। उसने सुप्रसिद्ध बौद्ध विद्वान बुसुबन्धु को अपने उत्तराधिकारी प्रथम नरसिंहगुप्त बालादित्य का शिक्षक नियुक्त किया था। गुप्त राजपरिवार के समय से बसुबन्धु का सम्बन्ध कुमारगुप्त प्रथम के समय से हो सकता है, रहा हो, और नालन्दा महाविहार की स्थापना बसुबन्धु के प्रभाव के कारण ही कुमारगुप्त प्रथम ने की हो। लेकिन बौद्ध धर्म का यह प्रभाव गुप्त साम्राज्य के लिए हितकर सिद्ध नहीं हुआ क्योंकि कुमारगुप्त प्रथम और नरसिंहगुप्त का आध्यात्मिक विकास तो हुआ लेकिन इसके प्रभाव के परिणामस्वरूप उनमें अपने पद के कर्त्तव्यों को दृढ़तापूर्वक पूरा करने की भावना उत्पन्न नहीं हुई। 'आर्यमंजूश्रीमूलकल्प' से पता चतला है कि बालादित्य ने 36 वर्ष की अल्पायु में आत्महत्या कर ली थी। स्कन्दगुप्त के जूनागढ़ अभिलेख से पता चलता है कि कुमारगुप्त प्रथम ने 'आत्मशक्ति' से देवलोक प्राप्त किया था। हो सकता है बालादित्य के समान कुमारगुप्त प्रथम ने भी आत्महत्या की हो क्योंकि बौद्ध धर्म में इस प्रकार के देहत्याग के कई उदाहरण मिलते हैं।

बौद्ध धर्म के प्रभाव के परिणामस्वरूप गुप्तनरेशों की युद्धप्रियता, जो साम्राज्य की सुरक्षा के लिए आवश्यक थी, समाप्त–प्रायः हो गई। छठी शती ई0 में आन्तरिक संघर्षों और हूण आक्रमण के कारण गुप्तवंश की स्थिति अत्यन्त डांवाडोल हो गई थी। ऐसे समय साम्राज्य की व्यवस्था और सैनिक संगठन में सुधार एवं बाह्य तथा आन्तरिक शत्रुओं का दृढ़तापूर्वक दमन सबसे बड़ी आवश्यकताएँ थी लेकिन बौद्ध धर्म के प्रभाव के कारण द्वितीय नरसिंहगुप्त अपने राज्य को चैत्य एवं बिहारों से सजाने में लगा रहा और जब मिहिरकुल का आक्रमण हुआ तो भाग गया। इसके बाद अधीन राजाओं के द्वारा हूणराज के पकड़ लिए जाने पर उसने घोर अदूरदर्शिता का परिचय दिया और अपनी माता के कहने में आकर ऐसे भंयकर शत्रु को पुण्य अर्जित करने के हेतु छोड़ दिया। यह बौद्ध धर्म के प्रभाव का गुप्त राजाओं पर हानिकारक प्रभाव था। बौद्ध धर्म के प्रभाव के कारण गुप्त राजाओं द्वारा बौद्ध संस्थाओं को अतुल धन दान दिया जाने लगा। परवर्ती गुप्त शासकों द्वारा ब्राह्मणों को भूमिदान भी दिया गया लेकिन 'अग्रहार' और 'ब्रह्मदेय' की तुलना में बौद्ध संस्थाओं को दान ज्यादा दिया गया। इसका सबसे बड़ा उदाहरण नालन्दा–महाविहार है। फाह्यान के भारत यात्रा के दौरान पाँचवीं शती में नालन्दा एक गाँव था। उसके 50 वर्षों उपरान्त शक्रादित्य (अर्थात कुमारगुप्त प्रथम) ने वहाँ एक महाविहार की नींव डाली। इसके बाद बुद्धगुप्त, तथागतराज, बालादित्यराज और व्रज इन सबने यहाँ नए–नए संघाराम बनाए। सातवीं शतीं ई0 के प्रारम्भ में ह्वेनसांग के यात्रा के समय इसमें 10000 भिक्षु और अन्य लोग निवास कर रहे थे जिनके खर्च के लिए महाविहार को सौ गाँवों की आय दी जाती थी। इसके अलावा इन गाँवों के निवासी इस संस्या को कई सौ पिकल चावल और कई सौ केट्टी मक्खन और दूध प्रतिदिन देते थे। इस प्रकार नालन्दा–महाविहार पर उसके निकटवर्ती प्रदेश की आय का अधिकांश व्यय कर दिया जाता था। ह्वेनसांग लिखता है कि भारत में नालन्दा–महाविहार से छोटे अनेक विहार थे, जिनका खर्च इन विहारों के आस–पास के गाँवों से वसूल किया जाता था ये तथ्य इस तरफ संकेत करते हैं कि परवर्ती गुप्त शासकों के युग में बौद्ध विहार गुप्त साम्राज्य की आर्थिक व्यवस्था पर भार बन गए होंगे और इस प्रकार गुप्त साम्राज्य के पतन का एक बहुत बड़ा कारण बौद्ध धर्म का प्रभाव रहा, क्योंकि बौद्ध विहार धन–संग्रह और भ्रष्टाचार के केन्द्र बन गए। इन्होंने सहज ही आक्रमणकारियों का ध्यान आकृष्ट किया।

3.7 वंशानुगत पद

राज्यकर्मचारियों, उच्च अधिकारियों के पद का आनुवंशिक होना भी गुप्त साम्राज्य के पतन का कारण बना। आनुवंशिक पदो ंके कारण कभी–कभी अयोग्य व्यक्ति उच्च पद पर आसीन हो जाता था। जिसका राज्य पर कुप्रभाव पड़ता था। पदो ंके वंशानुगत होने से सामन्तों और अमात्यों की शक्ति में और भी वृद्धि हुई। समुद्रगुप्त का सन्धि–विग्रहिक महादण्डनायक कुमारामात्य हरिषेण महादण्डनायक ध्रुवभूति का पुत्र था। चन्द्रगुप्त द्वितीय के सन्धि–विग्रहिक वीरसेन शाव के लिए 'अन्वयप्राप्तसाचिव्यः' पद का प्रयोग किया गया है। इससे स्पष्ट है कि उसने वंशानुगत सचिव पद प्राप्त किया था। कुमारगुप्त प्रथम का मंत्री पृथिवीषेण चन्द्रगुप्त द्वितीय के मंत्री शिखरस्वामी का पुत्र था। पुण्ड्रवर्धन–भुक्ति में दत्तवंश का वंशानुगत शासन था। वंशानुगत पद रिक्तियों में सदैव योग्यता का ध्यान नहीं रखा जा सकता।

3.8 साम्राज्य की विशालता

समुद्रगुप्त एवं चन्द्रगुप्त द्वितीय के प्रयत्नों से एक विशाल गुप्त साम्राज्य की स्थापना हुई थी। समुद्रगुप्त का विशाल साम्राज्य उत्तर में हिमालय से लेकर दक्षिण में विन्ध्यपर्वत तक तथा पूर्व में बंगाल की खाड़ी से लेकर पश्चिम में पूर्वी मालवा तक विस्तृत था। कश्मीर, पश्चिमी पंजाब, पश्चिमी राजपूताना, सिन्ध

तथा गुजरात को छोड़कर समस्त उत्तरभारत इसमें सम्मिलित था। दक्षिणापथ के शासक तथा पश्चिमोत्तर भारत की विदेशी शक्तियाँ उसकी अधीनता स्वीकार करती थीं। इस प्रकार समुद्रगुप्त ने अपने पिता से जो राज्य उत्तराधिकार में प्राप्त किया था, उसे एक विशाल साम्राज्य में परिणत कर दिया। प्रयाग प्रशस्ति के शब्दों में उसने अपने 'बाहुबल के प्रसार द्वारा भूखण्ड को बाँध लिया'। चन्द्रगुप्त द्वितीय योग्य पिता का योग्यतम पुत्र था। उसका उद्देश्य उदयगिरि गुहाभिलेख के शब्दों में सम्पूर्ण पृथ्वी को जीतना (कृत्स्नपृथ्वीजय) था। जिस साम्राज्य को उसके पिता समुद्रगुप्त ने निर्मित किया, वह चन्दुगुप्त द्वितीय के समय में पूर्णतया संगठित, सुव्यवस्थित एवं सुशासित होकर उन्नति की चोटी पर जा पहुँचा। स्कन्दगुप्त के पश्चात् इतने विशाल साम्राज्य की सुरक्षा करने में कोई भी गुप्त शासक सफल न हुआ। आवागमन के साधनों के अभाव में वे विशाल गुप्त साम्राज्य को संभाल नहीं सके, परिणामतः साम्राज्य का विलोपन हो गया।

3.9 पारिवारिक अन्तर्कलह एवं उत्तराधिकार के नियम का अभाव

उत्तराधिकार के किसी निश्चित नियम के अभाव में गुप्तवंश में 'गृहयुद्ध' मतवैमनस्य और पारिवारिक कलह की स्थिति सदैव बनी रही। चन्द्रगुप्त प्रथम के समय से ही उत्तराधिकार के विषय पर विवाद शुरू हो गया था। सिंहासन पर अधिकार करने के प्रश्न पर प्रायः राजकुमारों में परस्पर संघर्ष की स्थिति बनी रहती थी। प्रयाग प्रशस्ति से पता चलता है कि चन्द्रगुप्त प्रथम द्वारा समुद्रगुप्त को उत्तराधिकारी नियुक्त करने पर अन्य राजकुमारों द्वारा विरोध प्रकट किया गया। हरिषेण द्वारा रचित प्रयाग प्रशस्ति के अनुसार समुद्रगुप्त को सिंहासन सौंपकर चन्द्रगुप्त प्रथम ने संयास ले लिया। इस घटना के प्रतिक्रिया स्वरूप एक ओर दरबार के 'सभ्यजनों' ने हर्ष प्रकट किया तो दूसरी ओर 'तुल्यकुलजों' भाइयों ने ईर्ष्या का अनुभव किया। यह विचारणीय विषय है कि ऐसी क्या परिस्थितियाँ उत्पन्न हो गई होंगी कि चन्द्रगुप्त प्रथम की मृत्यु के पूर्व ही समुद्रगुप्त का राज्याभिषेक किया गया। समुद्रगुप्त के सिक्कों से साम्य रखते हुए कुछ सोने के सिक्के मुद्राशास्त्रियों को प्राप्त हुए हैं जिन पर 'काच' नाम उत्कीर्ण है। इन पर 'सर्वराजोच्छेता' विरूद भी मिलता है। यह विरूद समुद्रगुप्त के लिए अभिलेखों में प्रयुक्त हुआ है। कतिपय विद्वान, जैसे–स्मिथ, फ्लीट व एलन 'काच' को समुद्रगुप्त का ही दूसरा नाम मानते हैं क्योंकि एक शासक के दो नाम रखने की परम्परा, गुप्त वंश में प्रचलित थी। समुद्रगुप्त के उत्तराधिकारी चन्द्रगुप्त द्वितीय का दूसरा नाम देवगुप्त था। परन्तु कतिपय विद्वान, जैसे, हेरास, 'काच' को समुद्रगुप्त का भाई बताते हैं। कुछ इतिहासकारों की परिकल्पना रही है कि सम्भवतः चन्द्रगुप्त प्रथम के कई पुत्रों में समुद्रगुप्त ज्येष्ठ पुत्र नहीं था। 'काच' ज्येष्ठ पुत्र होने के नाते राज्याधिकारी था। पिता के सुमद्रगुप्त के प्रति झुकाव को देखकर उन्होंने पिता की मृत्यु से पूर्व ही गद्दी प्राप्त करने के उद्देश्य से अपने कुछ सिक्के मुद्रित करवा लिए। चन्द्रगुप्त प्रथम योग्य पुत्र समुद्रगुप्त को अपना उत्तराधिकारी नियुक्त करना चाहते थे और इसलिए काच और समुद्रगुप्त में उत्तराधिकारी के संघर्ष की संभावना को महसूस कर उन्होंने भरी सभा में समुद्रगुप्त को गद्दी प्रदान कर दी जिससे सामन्त एवं अन्य पदाधिकारी हर्षित हुए यद्यपि 'तुल्यकुलजों' ने अर्थात 'काच' इत्यादि अन्य भाईयों ने ईर्ष्या अनुभव की। समुद्रगुप्त के शक्तिशाली व्यक्तित्व के कारण गुप्तवंश भ्रातृकलह में पड़ने से बच गया।

उत्तराधिकार के प्रश्न पर ही चन्द्रगुप्त द्वितीय ने अपने बड़े भाई रामगुप्त की हत्या कर गुप्त साम्राज्य की गद्दी को हस्तगत किया था। विशाखदत्त कृत देवीचन्द्रगुप्तम् नामक नाटक में चन्द्रगुप्त द्वितीय विक्रमादित्य से पूर्व रामगुप्त को गुप्त शासक के रूप में वर्णित किया गया है जिनके शासनकाल में शक आक्रमणकारियों ने ऐसी सकंटपूर्ण स्थिति उत्पन्न कर दी थी कि रामगुप्त ने अपनी पत्नी ध्रुवदेवी, जिसके प्रति शकाधिपति आसक्त था, को देकर शान्ति खरीदने का विचार किया। रामगुप्त की इस कायरता से क्षुब्ध होकर उसके छोटे भाई चन्द्रगुप्त ने स्थिति को संभालने के उद्देश्य से स्वयं ध्रुवदेवी

का भेष बनाकर शक शिविर में जाने की योजना बनाई। और जब इस प्रकार वह तथा उसके साथी शकाधिपति के पास स्त्री वेष में पहुँचे और शक शासक चन्द्रगुप्त द्वितीय को ध्रुवदेवी समझ उसकी ओर बढ़ा तब छद्म वेष धारी चन्द्रगुप्त ने शकराज की हत्या कर दी। उसके उपरान्त चन्द्रगुप्त द्वितीय ने अपने कायर बड़े भाई की भी हत्या कर गद्दी पर अधिकार कर लिया और ध्रुवदेवी से विवाह कर लिया। बहुत से इतिहासकारों ने यह सिद्ध किया है कि कुमारगुप्त और उसके बड़े भाई गोविन्दगुप्त के बीच उत्तराधिकार को लेकर राजगद्दी के लिए युद्ध हुआ था। कुछ इतिहासकार बसाढ़ (वैशाली) मुहर और मंदसौर अभिलेख के आधार पर ध्रुवदेवी के पुत्र गोविन्दगुप्त को चन्द्रगुप्त द्वितीय के बाद आने वाला शासक बताते हैं। परन्तु कुछ इतिहासकार प्रमुख वंशावलियों के आधार पर, जहाँ चन्द्रगुप्त के पश्चात् कुमारगुप्त का नाम दिया गया है, यह भी मानते हैं कि गोविन्दगुप्त सम्भवतः वैशाली के स्थानीय शासक रहे होंगे और गुप्त सिंहासन के उत्तराधिकारी कुमारगुप्त प्रथम बने। इसी प्रकार कुमारगुप्त के पुत्र स्कन्दगुप्त ने राजगद्दी के लिए अपने भाई पुरूगुप्त से युद्ध किया और सफलता प्राप्त की। ऐसा लगता है कि राजगद्दी के लिए राजकुमारों के बीच युद्ध होना गुप्तंवश की एक परम्परा सी बन गई। इस प्रकार उत्तराधिकार के लिए युद्ध बाद में भी हुए होंगे और इस राजपरिवार की इस अस्थिरता का लाभ कुछ महत्वाकांक्षी व्यक्तियों ने उठाया और गुप्त साम्राज्य के पतन को अवश्यंभावी बना दिया।

3.10 आर्थिक अवनति

आर्थिक कारणों को भी गुप्त साम्राज्य के पतन का कारण माना जा सकता है। कुषाण युग की तुलना में देखा जाए तो गुप्त युग में व्यापार के ह्रास के पर्याप्त चिन्ह मिलते हैं। आधुनिक ऐतिहासिक शोध इस बात की तरफ संकेत करते है कि इस काल में ग्राम लगभग आत्मनिर्भर उत्पादक इकाई के रूप में उभरकर सामने आ रहे थे। ऐसा कृषि पर अत्यधिक बल और भूमि अनुदान की व्यवस्था के कारण हो रहा था। इसके कारण कृषक, कारीगर और मजदूर वर्ग जमीन पर निर्भर हो गये। उनकी गतिशीलता पर कुप्रभाव पड़ा। इस व्यवस्था का उद्योग–धन्धों, व्यापार–वाणिज्य एवं नगरों पर भी बुरा प्रभाव पड़ा। बहुत से प्राचीन व्यापारिक नगर और औद्योगिक केन्द्र समाप्त हो गए। इससे मुद्राव्यवस्था पर कुप्रभाव पड़ा तथा सिक्कों के प्रचलन में कमी आई। सोने, चाँदी, ताँबे आदि विभिन्न धातुओं के सिक्कों की जो बहुलता प्राक्–गुप्तकाल में दृष्टिगोचर होती है, वह गुप्तकाल में नहीं दिखती, स्पष्तः मुद्राप्रणाली का पतन हो रहा था। कौटिल्य ने नकद वेतन दिए जाने का उल्लेख किया है। लेकिन गुप्तकालीन साहित्य में इसका उल्लेख नहीं मिलता है। केवल स्वर्ण मुद्राओं से दैनिक जीवन की आवश्यकताओं को खरीदना असम्भव लगता है। स्वयं फाह्यान ने लिखा है कि साधारण जनता रोज के विनियम में वस्तुओं की अदला–बदली अथवा कौड़ियों से काम चलाती थी। अतः आन्तरिक दृष्टि से वस्तुओं का उत्पादन व्यापार के लिए कम ही हो पाता होगा। विदेशी व्यापार में भी ह्रास परिलक्षित होता है क्योंकि पाश्चात्य देशों से सम्पर्क की स्थिति अब वह नहीं थी जो कुषाण सातवाहन युग में थी।

रोमन साम्राज्य के विघटन के पश्चात् पाश्चात्य देशों से हो रहे व्यापार में गिरावट आ गई। 364 ई0 में रोमन साम्राज्य का विभाजन दो भागों में हो गया था, और उसके आगामी सौ वर्ष अत्यन्त कठिनाईपूर्ण थे। पाँचवीं शताब्दी के आरम्भ से अनेक आक्रमणकारियों ने उस साम्राज्य को अपना लक्ष्य बना लिया था। गोथ, अलारिक एवं अन्तिल हूण के विध्वंशकारी आक्रमण इसके उदाहरण हैं। रोमन साम्राज्य की स्थिति अब इतनी डॉवाडोल थी कि रोम के नागरिक प्राच्य जगत से व्यापार को प्रोत्साहन नहीं दे सकते थे।

प्रोकोपियस के वर्णन (छठी शताब्दी) से पता चलता है कि फारसवासियों ने रेशम के व्यापार पर एकाधिकार सा प्राप्त कर लिया था, और रोमन साम्राज्य से उनकी शत्रुता के कारण भारतीय व्यापार को ठेस लगनी स्वाभाविक थी। भारत के रेशम व्यापार की स्थिति भी कुछ ठीक नहीं थी। एक समसामयिक

अभिलेख कुमारगुप्त प्रथम बन्धुवर्मन के मंदसौर अभिलेख में कहा गया है कि नर्मदा क्षेत्र के निकट लाट–विषय से रेशम बुनकरों की एक श्रेणी अपना काम छोड़कर पश्चिमी मालवा में आ गई। रेशम बुनकरों को अन्य व्यवसाय अपनाने के लिए बाध्य होना पड़ा और फिर स्वयं रोमन साम्राज्य में रेशम उद्योग के विकसित करने के गंभीर प्रयास किए जा रहे थे। इन सभी कारणों से पाश्चात्य देशों के साथ भारत के विदेशी व्यापार में गिरावट आ गई थी।

लम्बी दूरी के व्यापार के पतन के बाद समुद्रतटीय क्षेत्रों और आंतरिक इलाके के बीच सम्पर्क भी कमजोर हो गया। माल उत्पादन का आकार सिकुड़ने लगा। व्यापारिक गतिविधियों के क्षीण पड़ने के साथ ही साथ देश के एक हिस्से से दूसरे हिस्से में कारीगरों और व्यापारियों का आना–जाना भी बेकार हो गया। गतिहीन कारीगर अब किसी ने किसी गाँव से जुड़ गए और कालक्रम में किसानों की तरह उन्हें भी ग्रहिता को हस्तांतरित किया जाने लगा। इस प्रकार कला और शिल्प का ग्रामीणीकरण हो गया। हालांकि चौथी शताब्दी में बना मेहरौली (दिल्ली) लौह–स्तम्भ कारीगरों की तकनीकी दक्षता का सबूत देता है। गुप्तकालीन अभिलेखों से पता चलता है कि गुप्तकाल में कुछ छोटे शहरों में नगरपालिका का प्रशासन चलाने में व्यापारी और शिल्पकारों की श्रेणियों की महत्वपूर्ण भूमिका थी।

व्यापार में अवनति और शिल्प एवं माल उत्पादन में आम गिरावट का परिणाम तीसरी और चौथी सदी के दौरान कई शहरों के ह्रास में भी हुआ। उत्तरी भारत में कुषाण काल के कई नगरीय केन्द्र जैसे कौसाम्बी (इलाहाबाद), हस्तिनापुर, पुराना किला (दिल्ली) अहिछत्र और तक्षशिला में पतन के चिन्ह दृष्टिगोचर होते हैं। अयोध्या और मथुरा जो ई0 सन् की आरम्भिक सदियों में फलते–फूलते नगर थे, उनका महत्व गुप्तकाल में समाप्त हो गया था। अधोध्या और मथुरा का सम्बन्ध राम और कृष्ण के साथ होने से ये नगर आंशिक रूप से फलते–फूलते रहे।

मध्यप्रदेश, राजस्थान और गुजरात के कई नगर जैसे–नोह, उज्जैन आदि प्रायः पतन के शिकार हो चुके थे। सातवाहन कालीन शहरीय केन्द्र जैसे–कौण्डिन्यपुर, पैठन और नासिक (महाराष्ट्र) अमरावती और धरनीकोट (आन्ध्रप्रदेश), बड़गाँव–माधवपुर, ब्रह्मगिरी और चन्द्रावती (कर्नाटक) आदि पतनोमुख हो चुके थे। सुदूर दक्षिण में अरिकोमेडु सबसे महत्वपूर्ण नगर था, जो गुप्तकाल में आर्थिक रूप से सक्रिय नहीं रह पाया। गुप्त साम्राज्य की हृदय स्थली में भी शहरों के पतन के लक्षण पुरातात्विक उत्खननों में परिलक्षित होते हैं। प्रो0 रामशरण शर्मा ने (Urban Decay in India) में गुप्तकालीन नगरों के पतन के कारणों की विस्तृत व्याख्या प्रस्तुत की है। वैशाली (बसाढ़ गाँव, विहार) में पूर्ववर्ती काल की तुलना में गुप्तकालीन भवन कम आकर्षक लगते हैं। यही बात पाटलीपुत्र (पटना) के साथ भी है। उत्खननों से सहगौरा (गोरखपुर) में बस्तियों के चिन्ह प्राप्त नहीं हुए हैं, जहाँ मौर्य काल के दो अन्न–भण्डारों का अस्तित्व पाया गया है। वाराणसी की प्रशासनिक दृष्टि से कुछ महत्ता बनी रही परन्तु गुप्तकाल में वहाँ भी अवनति के लक्षण दिखाई देते हैं। इस प्रकार परवर्ती गुप्त–सम्राटों का शासनकाल आर्थिक दृष्टि से अवनति का युग परिलक्षित होता है। इसकाल में व्यापार एवं वाणिज्य का ह्रास होने लगा। रोमन साम्राज्य का पतन हो जाने के कारण पश्चिमी देशों के साथ भारत का व्यापार बन्द हो गया। नगर तथा नगरीय जीवन में भी ह्रास हुआ। यही कारण है कि स्कन्दगुप्त के मृत्यु के उपरान्त इस काल में स्वर्ण मुद्राओं का अभाव दृष्टिगोचर होता है। स्वर्ण मुद्राओं का प्रचलन धीरे–धीरे बन्द हो गया और चाँदी और ताँबे की मुद्राएँ भी बहुत कम ढलवाई गयीं। नगरों के पतन के कारण व्यापारी ग्रामों की ओर उन्मुख हुए। इस प्रकार अर्थ–व्यवस्था अवरूद्ध हो गयी जो गुप्त साम्राज्य के पतन का एक महत्वपूर्ण कारण सिद्ध हुई।

3.11 बाह्य आक्रमण

गुप्त साम्राज्य के पतन का प्रमुख कारण भारत पर हूण आक्रमण का होना भी था। गुप्तों की शक्ति को एक बड़ा आघात पाँचवीं सदी के अन्त में लगा, जब उत्तर भारत में बड़ी संख्या में हूण प्रवेश कर गए।

हूण बेहतरीन तीरंदाज और कुशल घुड़सवार होते थे, जो धातु के रकाब का प्रयोग करते थे। हूणों के आक्रमण ने गुप्त साम्राज्य के विघटन की प्रक्रिया को तीव्र कर दिया, और आधी शताब्दी के अन्दर ही उसकी जगह कई छोटे–छोटे राज्य उत्पन्न हो गए। गुप्त साम्राज्य पर हूणों का प्रथम आक्रमण लगभग 370 ई0 में हुआ था, लेकिन उस समय 'चन्द्र' ने उनको सप्तसिन्धु के पार, साम्राज्य की सीमा के परे, रोक दिया था। हूणों का दूसरा आक्रमण प्रथम कुमारगुप्त के शासन काल के अन्तिम वर्षों में हुआ। गुप्त सम्राट इस बार भी उनका प्रतिरोध करने में सफल रहे, परन्तु इस बार कुछ समय के लिए हूण साम्राज्य में घुसने में सम्भवतः सफल हो गए और उनके आघात से गुप्तकुल की राजलक्ष्मी विचलित हो उठी। लेकिन इस घोर संकट के समय मालवा के किसी अज्ञात राजा ने जो गुप्तों के अधीन था, नरेन्द्रसेन वाकाटक के साथ मिलकर स्कन्दगुप्त की कठिनाइयाँ, बढाने में संकोच नहीं किया श्रीराम गोयल का विचार है कि स्वयं गुप्त सम्राटों का भी हूण संकट की तरफ दृष्टिकोण बहुत बुद्धिमत्तापूर्ण नहीं था। इस संकट की बार–बार पुनरावृति होने बावजूद उन्होंने सिन्धु की घाटी को जीतकर पश्चिमोत्तर सीमा की सुरक्षा का प्रयास नहीं किया। सम्भवतः स्वयं स्कन्दगुप्त भी हूणों पर विजय प्राप्त करने के बाद इस ओर निश्चिन्त सा हो गया था। उसके बाद जब हूणों ने गंधार को हस्तगत किया तो इससे साम्राज्य के कर्णधार चिन्तित थे, ऐसा किसी साक्ष्य से संकेत नहीं मिलता। इसलिए जब छठीं शती के प्रारम्भ में हूणों ने तीसरी बार आक्रमण किया तो उनको रोक पाना असम्भव हो गया। उल्टे स्वयं गुप्त वंश से अनेक असन्तुष्ट राजकुमार जैसे हरिगुप्त और 'प्रकाराख्य' हूणों से मिल गए।

बिखरते हुए गुप्त साम्राज्य का विलोपन उत्तर भारत में हूण राज्य की स्थापना के साथ ही घटित होता है। हूणों का राज्य मध्यप्रदेश में एरण तक फैला हुआ था। पहला महत्वपूर्ण हूण राजा तोरमाण था। उसके राज्यारोहण के प्रथम वर्ष की तिथि वाले अभिलेख सहित विष्णु के बाराह अवतार रूपी चार पैरों वाले विशाल बाराह की मूर्ति एरण से प्राप्त हुई है। इतिहासकारों का मानना है कि उसने जैन धर्म अंगीकार कर लिया था। उसका पुत्र मिहिर कुल 515 ई0 में सत्ता में आया जो साकल (सियालकोट) से शासन करता था। परम्पराओं के अनुसार वह निरंकुश शासक, मूर्तिभंजक और बौद्धों का दमन करने वाला राजा था। परन्तु वह एक निष्ठावान शैव भी था और उसने मिहिरेश्वर मंदिर की स्थापना की। मिहिरकुल को पहले मालवा के यशोवर्मन ने और फिर उसके बाद गुप्त वंश के नरसिंहगुप्त बालादित्य ने पराजित किया। परन्तु हूणों की पराजय से गुप्त साम्राज्य फिर से पुनर्जीवित नहीं हो पाया।

हूणों के आक्रमण के दौर में गुप्त साम्राज्य की संघात्मक शासन व्यवस्था एक बार पुनः साम्राज्य के लिए अभिशाप सिद्ध हुई क्योंकि इस संकट काल में बजाय सम्राट की मद्द करने के धन्यविष्णु जैसे पदाधिकारियों ने अपनी स्वार्थसिद्धि के लिए तोरमाण का साथ पकड़ लिया। इसी प्रकार बंगाल में महाराज विजयसेन ने जो 507 ई0 में वैन्यगुप्त के अधीन था, पश्चिमी बंगाल में गुप्तों के स्थान पर अपनी सत्ता स्थापित करने वाले महाराजाधिराज गोपचन्द्र का प्रभुत्व मान लिया। यदि उस युग में गुप्त सम्राट अपनी सैनिक शक्ति के लिए प्रधानतः अधीन राजाओं और गर्वनरों पर निर्भर रहे होंगे तो धन्यविष्णु और वीरसेन जैसे पदाधिकारियों का इस प्रकार पक्ष परिवर्तन साम्राज्य के लिए बड़ा घातक सिद्ध हुआ होगा। यू0एन0 राय का विचार है कि गुप्तों को निर्बल बनाने में सबसे बड़ा हाथ हूणों का ही था। उन लोगों ने रोमन साम्राज्य के समान गुप्त साम्राज्य को भी गहरा धक्का पहुँचाया। आर0एस0 त्रिपाठी ने भी हूण आक्रमणों को गुप्तों के पतन के लिए प्रमुख रूप से उत्तरदायी माना है। उनके अनुसार बर्बर जाति की अनवरत चोटों ने, जिनसे विश्व के अनेक सभ्य साम्राज्य टूट चुके थे, गुप्त साम्राज्य को भी अन्त में तार–तार कर डाला। लेकिन इतिहासकार आर0सी0 मजूमदार इस मत से सहमत नहीं हैं। उनके अनुसार गुप्त साम्राज्य को वास्तविक आघात हूणों ने नहीं बल्कि यशोधर्मा जैसे महत्वाकांक्षी शासकों ने पहुँचाया था। हूण आक्रमण के प्रभाव तो अल्पजीवी थे किन्तु यशोधर्मा जैसे शासकों ने गुप्त साम्राज्य को पूर्णतः समाप्त कर दिया। हूण आक्रमण चाहे गुप्त साम्राज्य के पतन का वास्तविक कारण नहीं रहा हो फिर भी इसमें संदेह नहीं की इसने गुप्त साम्राज्य को गहरा आघात

पहुँचाया। इस तथ्य को इंगित करते हुए वी0ए0 स्मिथ ने विचार व्यक्त किया है कि हूण आक्रमणों ने गुप्त साम्राज्य के टुकड़े–टुकड़े कर दिए तथा नवीन राज्यों के उदय के लिए आधार प्रदान कर दिया।

3.12 विदेश नीति का परित्याग

प्रारम्भिक गुप्त सम्राटों ने अपने पड़ोसियों के साथ कूटनीतिक सम्बन्धों को बनाया। इन सम्बन्धों में विवाह सम्बन्धों का महत्वपूर्ण स्थान है। सर्वप्रथम चन्द्रगुप्त प्रथम ने अपने समय के प्रसिद्ध लिच्छवी राजवंश के साथ अपने वैवाहिक सम्बन्धों को स्थापित किया। समुद्रगुप्त ने कुषाण, शकों, सिंहल नरेशों के साथ मित्रता के सम्बन्ध बनाये और राजवंशों की कन्याओं (कन्योपायनदान) के साथ विवाह किया। चन्द्रगुप्त द्वितीय ने वाकाटक वंश, नागवंश, कदम्ब वंश में अपने वैवाहिक सम्बन्धों के जोड़कर उच्च प्रकार की कूटनीति को प्रदर्शित किया। किन्तु दुर्भाग्यवश परवर्ती शासकों में अपने पूर्वजों के इन गुणों का अभाव था। यही कारण था कि संकट काल में इन राजाओं को अपने पड़ोसी राज्यों से कोई सहायता नहीं मिली।

3.13 युद्धों का अधिकता

प्रारम्भिक गुप्त नरेशों ने अपने साम्राज्य के विस्तार हेतु साम्राज्यवादी नीति का पालन किया। साम्राज्यवादी नीति का पालन करने में स्वाभाविकतः उन्हें निरन्तर युद्धों में रत रहना पड़ा। कुमारगुप्त एवं उसके बाद के परवर्ती गुप्तशासकों को निरन्तर युद्ध लड़ने पड़े, क्योंकि भारत पर विदेशियों के आक्रमण प्रारम्भ हो गए थे तथा भारत की स्वतंत्रता की सुरक्षा के लिए इन विदेशी आक्रान्ताओं का सामना करना आवश्यक था। निरन्तर युद्धों ने गुप्त साम्राज्य को गम्भीर रूप से प्रभावित किया। इन युद्धों के परिणामस्वरूप एक ओर तो गुप्तों की आन्तरिक संगठन–व्यवस्था में शिथिलता उत्पन्न हो गई तथा दूसरी ओर गुप्त अर्थव्यवस्था पर इससे गहरा आघात पहुँचा, और गुप्त साम्राज्य पतन की ओर अग्रसर हो गया।

3.14 उपसंहार

इस प्रकार हम देखते हैं कि गुप्त साम्राज्य उन्नति की पराकाष्ठा पर पहुँचने के उपरान्त पतन की ओर अग्रसर हो गया। गुप्त साम्राज्य का पतन कोई आकास्मिक घटना नहीं थी। विभिन्न कारण परस्पर मिलकर गुप्त साम्राज्य को निरन्तर निर्बल बना दिए और अन्ततः साम्राज्य का विलोपन हो गया। विदेशी आक्रमण, शासक परिवार के मतभेद, सामन्तवाद, स्थानीय सरदारों के द्वारा पुनः अपनी शक्ति को स्थापित करना, प्रशासनिक कमजोरी, बौद्ध धर्म का प्रभाव, आर्थिक अवनति आदि कारणों ने महान् गुप्त साम्राज्य का अन्त कर दिया।

(i)दीर्घ उत्तरीय प्रश्न–

1–गुप्त साम्राज्य के विलोपन पर प्रकाश डालिए?

2–गुप्त साम्राज्य के पतन के प्रमुख कारणों की विवेचना कीजिए?

3–गुप्त साम्राज्य का पतन वाह्य आक्रमणों एवं सामन्तवाद के कारण हुआ, व्याख्या कीजिए?

(ii) संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए–

(1) सामन्तवाद का उद्भव एवं विकास

(2) भारत पर हूण आक्रमण के कारण एवं प्रभाव

(3) गुप्तशासकों पर बौद्ध धर्म का प्रभाव

(iii) लघु उत्तरीय प्रश्न–

(1) नालन्दा में बौद्ध महाविहार की स्थापना किसने की?

(क) स्कन्दगुप्त (ख) कुमारगुप्त प्रथम (ग) समुद्रगुप्त (घ) रामगुप्त

(2) चन्द्रगुप्त द्वितीय द्वारा शकाधिपति को परास्त करने का विवरण कहाँ मिलता है?

(क) मुद्राराक्षस (ख) मालविकाग्निमित्रम् (ग) देवीचन्द्रगुप्तम्

(घ) नवसाहसांक चरित

(3) समुद्रगुप्त का प्रतिद्वन्द्वी राजकुमार किसे माना जाता है?

(क) गोविन्दगुप्त (ख) रामगुप्त (ग) पुरूगुप्त (घ) काच

(4) गुप्त साम्राज्य के पूर्णतः विलुप्त होने की तिथि सामान्यतः क्या मानी जाती है?

(क) 500 ई0 (ख) 550 ई0 (ग) 600 ई0 (घ) 540 ई0

(5) प्रयाग प्रशस्ति के लेखक हरिषेण के पिता का क्या नाम था?

(क) ध्रुवभूति (ख) रविकीर्ति (ग) वीरसेन शाव(घ) शिखर स्वामी

(6) प्रयाग प्रशस्ति के अनुसार समुद्रगुप्त को सिंहासन सौंपकर चन्द्रगुप्त प्रथम ने संयास ले लिया था?
सत्य/असत्य

(7) चन्द्रगुप्त द्वितीय ने अपने बड़े भाई रामगुप्त की हत्या कर गुप्त कर गुप्त साम्राज्य की गद्दी को हस्तगत किया था? सत्य/असत्य

(8) गुप्तकाल में नगर और व्यापारिक केन्द्र प्रगति करने लगे थे। सत्य/असत्य

(9) हूणों का पहला भारतीय आक्रमण गुप्त सम्राट स्कन्दगुप्त के शासन काल (455–467 ई0) में हुआ था। सत्य/असत्य

(10) प्रारम्भिक गुप्त नरेश बौद्ध धर्मानुयायी थे। सत्य/असत्य

उत्तर–1–(ख), 2–(ग), 3–(घ), 4–(ख), 5–(क), 6– सत्य, 7– सत्य, 8– असत्य, 9– सत्य, 19–असत्य।

3.15 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1–गोयल, श्रीराम, 1995, गुप्त साम्राज्य का इतिहास, कुसुमांजली प्रकाशन, जयपुर

2–श्रीवास्तव, के.सी, 1991, प्राचीन भारत का इतिहास तथा संस्कृति, यूनाइटेड बुक डिपो, इलाहाबाद

3–पाण्डेय, विमलचन्द्र, 2003, प्राचीन भारत का इतिहास (250 ई0 से 1200 ई0), एस. चन्द्र एण्ड कम्पनी, दिल्ली

4–मजूमदार तथा अल्तेकर 1960, दि वाकाटक–गुप्त एज, दिल्ली

5–राय, उदय नारायण, 1971, गुप्त सम्राट और उनका काल, इलाहाबाद

6–झा एवं श्रीमाली, 1990, प्राचीन भारत का इतिहास, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

7–शर्मा, रामशरण 2004, प्रारम्भिक भारत का परिचय, दिल्ली

ब्लॉक तीन

इकाई एकः वाकाटक एवं उनके गुप्त शासकों के साथ सम्बन्ध

1.1 प्रस्तावना

1.2 उद्देश्य

1.3 विंध्यशक्ति

1.4 प्रवरसेन प्रथम

1.4.1 वैवाहिक संबंध

1.4.2 साम्राज्य का विभाजन

1.5 प्रमुख शाखा

1.5.1 प्रमुख शाखा रूद्रसेन प्रथम

1.5.2 पृथ्वीसेन प्रथम

1.5.3 रूद्रसेन द्वितीय

1.5.4 प्रवरसेन द्वितीय

1.5.5 नरेन्द्रसेन

1.6 वसीम शाखा (वत्समुल्म शाखा)

1.6.1 सर्वसेन

1.6.2 प्रवरसेन द्वितीय

1.6.3 देवसेन

1.6.4 हरिषेण

1.7 प्रशासन

1.8 गुप्त–वाकाटक संबंध

1.9 तकनीकी शब्दावली

1.10 संदर्भ ग्रंथ सूची

1.11 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

1.12 निबंधात्मक प्रश्न

1.1 प्रस्तावना

वाकाटक राज्य प्राचीन दक्षिण भारत का एक शक्तिशाली राज्य था। उत्तर भारत में सर्वशक्तिमान गुप्त साम्राज्य के साथ–साथ दक्षिण भारत में वाकाटक साम्राज्य कायम था। वाकाटकों का उद्भव तीसरी शताब्दी में हुआ और वाकाटकों ने छटी शताब्दी तक शासन किया। वाकाटकों ने लगभग 250 – 55 ई0 से 510 ई0 तक दक्षिण भारत में शासन किया। जे0 दुब्रील ने ठीक ही लिखा है कि ''तीसरी

शताब्दी ई0 से छठी शताब्दी तक दक्षिण भारत में जिन राजवंशों का उदय हुआ, उनके वाकाटक राजवंश सर्वश्रेष्ठ था।'' वाकाटकों ने दक्षिण भारत में सातवाहनों के पतन के बाद रिक्त राजनैतिक शून्य को अपनी तलवार के बल पर भरा। वाकाटक प्रारंभ में सातवाहनों के सामन्त थे। वाकाटकों का अभ्युद्य लगभग 250–255 ई0 के आसपास हुआ। वाकाटकों की जाति ब्राह्मण थी, वे विष्णुवृद्धि गौत्र के ब्राह्मण थे। वाकाटक राजवंश का संस्थापक विंध्यशक्ति था। उसने वाकाटक राज्य की स्थापना कहीं पूर्वी मध्यप्रदेश या बरार में की थी। विंध्यशक्ति ने विंध्य के दर्रो को पार कर पूर्वी मालवा के कुछ क्षेत्र विजित कर अपने राज्य का विस्तार किया होगा।

1.3 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के उद्देश्य निम्नलिखित है –

1. विद्यार्थी वाकाटक वंश का इतिहास समझ सकेगें।
2. विद्यार्थी दक्षिण भारत के इतिहास को जान सकेंगे ।
3. विद्यार्थी वाकाटक – गुप्त संबंधों को समझेंगें।
4. विद्यार्थी वाकाटकों की प्रमुख शाखा का महत्व समझ सकेगें।
5. विद्यार्थी वाकाटकों की बासीम शाखा के राजनैतिक संघर्ष को समझ सकेगें।
6. विद्यार्थी वाकाटकों के प्रशासन को जान सकेंगे।
7. विद्यार्थी प्रभावती गुप्ता की उपलब्धियों को समझ सकेगें।
8. विद्यार्थी प्रवरसेन प्रथम की राजनैतिक एवं दिग्विजय को जान सकेंगे।

1.3 विंध्यशक्ति

विंध्यशक्ति ने वाकाटक साम्राज्य की स्थापना की थी। उसने वाकाटक राज्य की स्थापना कहीं पूर्वी मध्यप्रदेश या बरार में की थी। पुराणों से विदित होता है कि विंध्यशक्ति की राजधानी पुरिका थी। डॉ0 ए0 एस0 अल्तेकर के अनुसार – विंध्यशक्ति ने वाकाटक राजवंश की स्थापना लगभग 255 ई0 में की थी। विंध्यशक्ति उसका वास्तविक नाम नहीं था, अपितु विंध्यक्षेत्र में अपनी शक्ति के द्वारा राज्य स्थापना के कारण उसका विरूद्ध विंध्यशक्ति ही पड़ा और इसी विरूद्ध से उसने शासन किया। विंध्यशक्ति का उल्लेख पुराणों और अजंता अभिलेख में मिलता है। ज्ञातव्य रहे कि वाकाटक वंश के अन्य किसी अभिलेख में विंध्यशक्ति का उल्लेख नहीं हुआ है। वाकटक अभिलेखों वाकाटक वंश की वंशावली प्रवरसेन प्रथम से प्रारंभ मिलती है, उनमें विंध्यशक्ति का कहीं नाम नहीं आया है। बहुत संभव है कि, पिता विंध्यशक्ति से अधिक प्रतापी एवं यशस्वी सम्राट पुत्र प्रवरसेन प्रथम होने के कारण, वाकाटक अभिलेखों में प्रवरसेन प्रथम से वंशावली प्रारंभ की हो।

बहरहाल, जो भी हो, इतिहास सत्य यही है कि, विंध्यशक्ति वाकाकट राजवंश का संस्थापक प्रथम पुरूष था। विंध्यशक्ति संभवतः प्रारंभ में सातवाहनों के अधीन कोई सामंत या अधिकारी रहा होगा। जिसने सात वाहनों की केन्द्रीय शक्ति की क्षीणता का लाभ उठाते हुए शनैः–शनैः अपने आप को शक्तिशाली किया होगा और बाद में अपनी स्वतंत्र सत्ता स्थापित की होगी। विंध्यशक्ति की उपलब्धियों का विवरण अजंता अभिलेख देता है। अजंता अभिलेख विंध्यशक्ति को अपने बाहुबल से सभी लोकों का विवेजा कहा गया है– स्वबाहुरीयोजितसर्वलोकः। अजंता अभिलेख विंध्यशक्ति के जिस शौर्य और शक्ति का अतिश्योक्ति पूर्ण वर्णन करते हुए अनेक विजयों का विजेता बताता है, वह यह नहीं बताता कि, विंध्यशक्ति ने अपना यह शक्ति प्रदर्शन किस–किस के विरूद्ध किया था और किन शत्रुओं का विनाश किया था तथा कौन–कौन से प्रदेश विंध्यशक्ति ने जीते थे? विंध्यशक्ति की शक्ति प्रसार का संकेत

पुराणों से मिलता है। पुराणों में विंध्यशक्ति को विदिशा (आधुनिक मध्यप्रदेश का विदिशा, जो भोपाल से 50 कि.मी. दूरी पर स्थित है।) का शासक बताया गया है। पुराणों के इस संकेत पर इतिहासविदों का अनुमान है कि विंध्यशक्ति ने अपना प्रारंभिक राज्य आधुनिक मध्यप्रदेश के दक्षिण–पश्चिमी क्षेत्रों में विस्तार किया होगा। डॉ0ए0एस0 अल्तेकर का मानना है कि, विंध्यशक्ति ने अपनी सैनिक सफलताओं से बैतूल, इटारसी और होशंगाबाद के जिलो को अपने राज्य में मिला लिया होगा। शुरू में उसका राज्य बरार में एक हिस्से तक ही सीमित रहा होगा। विंध्यशक्ति राज्य विस्तार में किसी शक्तिशाली राजवंश से प्रतिरोध नहीं करना पड़ा होगा। उसने आसानी से इन क्षेत्रों में अपनी सत्ता स्थापित की होगी। यदि उसे किसी के प्रतिरोध का सामना करना पड़ता, तो उससे संबंधित साक्ष्य अवश्य मिलते। वस्तुतः विंध्यशक्ति के समकालीन उस क्षेत्र में कोई शक्तिशाली राज्य था ही नहीं, इसीलिए विंध्यशक्ति को प्रारंभिक सैनिक सफलताओं में कोई विशेष शौर्य का प्रदर्शन नहीं करना पड़ा होगा। विंध्यशक्ति ने अपने जीवनकाल में स्वतंत्र सत्ता की स्थापना तो कर ली थी, किन्तु उसने संभवतः अपना औपचारिक राज्याभिषेक नहीं करवाया था और न ही उसने राजा की उपाधि धारण की थी।

विंध्यशक्ति एक शक्तिशाली राज्य निर्माता के साथ ही एक विशुद्ध ब्राह्मण भी था, उसने अपने ब्राह्मणत्व को सदैव जीवित रखा और धर्म–कर्म, पुण्य तथा परोपकारी कार्यो में भी संलग्न था। अजंता अभिलेख में उसे द्विज और 'वाकाटक–वंश–केतु' कहा गया है। विंध्यशक्ति ने यज्ञों, मंदिरों, ज्ञान शालाओं एवं जन सुविधाओं पर धन खर्च किया था। लगभग 275 ई0 में विंध्यशक्ति की मृत्यु हो गयी थी। उसने लगभग 20 वर्षो तक शासन किया और वाकाटक राजवंश की नींव रखी।

1.4 प्रवरसेन प्रथम

वाकाटक राजवंश का सर्वाधिक शक्तिशाली शासक विंध्यशक्ति का पुत्र और उसका उत्तराधिकारी प्रवरसेन प्रथम था। प्रवरसेन प्रथम ने अपनी सैन्य सफलताओं के बल पर वाकाटक राज्य को एक 'साम्राज्य' में बदल दिया था। प्रवरसेन प्रथम लगभग 275 ई0 में वाकाटक राजवंश का शासक बना। पुराणों में प्रवरसेन को 'प्रवीर' कहा गया है। प्रवरसेन के शासक बनने के समय वाकाटक राज्य शैशयावस्था में था। प्रवरसेन के सामने सबसे बड़ी चुनौती वाकाटक राज्य को एक सम्पूर्ण शक्तिशाली और विधिवत् स्थापित राज्य शक्ति में परिणित करना था। सात वाहन साम्राज्य के पतन के बाद दकन में एक केन्द्रियकृत शक्ति विखंण्डित हो गयी थी। प्रवरसेन को उस विखण्डित शक्ति को अपने शौर्य और सूझबूझ से एक तलवार की शक्ति के अधीन करना था। प्रवरसेन के शौर्य और शक्ति प्रदर्शन का उल्लेख वाकाटकों के अनेक ताम्रपत्राभिलेखों एवं पुराणों में हुआ। पुराणों से विधित है कि, प्रवरसेन प्रथम ने चार अश्वमेध यज्ञ किये। जो उसकी चार बड़ी सैनिक सफलताओं की ओर संकेत करते हैं।

प्रवरसेन का आधिपत्य आधुनिक मध्यप्रदेश एवं छत्तीसगढ़ के एक बहुत बड़े भौगोलिक भाग पर था। इस क्षेत्र में अनेक विजयें उसके पिता विंध्यशक्ति ने भी की थीं, प्रवरसेन ने उसे आगे बढ़ाया इतिहासविदों की धारणा है कि, प्रवरसेन की राजधानी 'पुरिका' मध्यप्रदेश कहीं थी। पुराणों में विदिशा को प्रवरसेन के अधीन बताया गया है। डॉ0 वी0 मिराशी का मानना है कि प्रवरसेन ने विदिशा को नागवंशी शिशुक को पराजित करके हस्तगत किया था। इतिहासविदों का मानना है कि, प्रवरसेन ने दक्षिण कौसल या छत्तीसगढ़ के बहुत बड़े भौगोलिक क्षेत्र को जीत लिया था, क्योंकि उस समय कोई ऐसी क्षेत्रीय शक्ति नहीं थी जो उसे चुनौती देती। मध्य प्रदेश के मालवा सहित पूर्वी मध्य, पश्चिमी एवं दक्षिणी मध्य प्रदेश के भौगोलिक क्षेत्र पर प्रवरसेन ने अपना ध्वज फहरा दिया था। मध्यप्रदेश के बघेलखण्ड नामक भौगोलिक क्षेत्र से वाकाटक राजा पृथ्वीषेण के माण्डलिक व्याघ्रसेन दो शिलालेख क्रमशः नचना और गंज गाँवों मिले हैं। इन शिलालेखों की प्राप्ति अधिकार पर इतिहासविदों का मानना

है कि, ये क्षेत्र प्रवरसेन ने ही विजित किये होंगे। क्योंकि किसी अन्य वाकाटक नरेश के इन क्षेत्रों पर सैनय अभियान का ज्ञान नहीं है।

इस प्रकार प्रवरसेन प्रथम ने आधुनिक मध्यप्रदेश एवं छत्तीसगढ़ के एक बहुत बड़े भौगोलिक क्षेत्र पर अपना आधिपत्य स्थापित कर लिया था। प्रवरसेन ने गुजरात एवं काठियाबाड़ में अपनी शक्ति का प्रदर्शन किया था। डॉ. ए0एस0 अल्तेकर का मानना है कि– प्रवरसेन ने अपनी शक्ति से गुजरात एवं काठियाबाड़ के शक क्षत्रपों को सामन्तों की श्रेणी में ला दिया था। प्रवरसेन ने लगभग 310–332 ई0 के मध्य पश्चिमी क्षत्रपों को अपने प्रभाव में ला दिया था। प्रवरसेन ने शक नरेशों रूद्रसिंह द्वितीय (304–316 ई0) एवं यशोदामन, द्वितीय (316–332 ई0) को महाक्षत्रप (स्वतंत्र सत्ता की प्रतीक उपाधि) से क्षत्रप (सामंत या अधीनता का प्रतीक) की स्थिति में ला दिया था। प्रवरसेन को अपना प्रभाव स्थापित करने का अवसर क्षत्रपों के उत्तराधिकार संघर्ष के समय मिला। लगभग 304 ई0 में रूद्रसिंह और भर्तृदामन के बीच सिंहासन के लिए तनातनी हुई। प्रवरसेन ने सिंहासन के संघर्ष में मर्तृदामन के विरूद्ध रूद्रसिंह द्वितीय की मदद की। इस मदद के प्रतिरूप रूद्रसिंह द्वितीय ने 'महाक्षत्रप' के स्थान पर क्षत्रप की उपाधि धारण की। रूद्रसिह द्वितीय प्रवरसेन को नियमित उपहार और संभवतः कर भी देता था। डॉ0 ए0एस0 अल्तेकर का मानना है कि मध्यप्रदेश के छिंदवाड़ा जिले के सोनपुर से 633 शक मुद्राओं का भण्डार मिला है। रूद्रसिंह द्वितीय और यशोदान द्वितीय की ये मुद्राएँ प्रवरसेन को कर स्वरूप मिली होंगी। किन्तु संदर्भ में डॉ0 वी.वी. मिराशी का मत है कि, शकों को प्रवरसेन ने नहीं अपितु मध्यप्रदेश के श्रीधरवर्मन नामक किसी राजा ने पराजित किया था।

प्रवरसेन प्रथम का सम्राज्य भूतपूर्व हैदराबाद रियासत एवं महाराष्ट्र के एक बहुत बड़े भाग पर फैला हुआ था। वाकाटक साम्राज्य में हैदराबाद रियासत के मराठी भाषी क्षेत्र अवश्य शामिल थे, साथ ही कृष्णा नदी के उत्तर में सभी जिले भी शामिल रहे होंगे। डॉ0 ए0एस0 अल्तेकर ने प्राचीन ग्रंथ 'श्रीशैलस्थल महात्म्य' के साक्ष्य के आधार पर कहा है कि चन्द्रगुप्त द्वितीय की पुत्री एवं रूद्रसेन द्वितीय पत्नी प्रभावती गुप्ता प्रतिदिन श्रीशैल के देवता मल्लिकार्जुन को माला चढ़ाने जाती थी। श्रीशैल का क्षेत्र हैदराबाद रियासत में था। अल्तेकर का मत है कि फिर तो कुर्नूल जिले तक का सारा प्रदेश वाकाटकों के प्रभाव क्षेत्रों में रहा होगा। इस प्रकार स्पष्ट है कि प्रवरसेन प्रथम का साम्राज्य हैदराबाद रियासत के एक बड़े भाग में फैला हुआ था। प्रवरसेन के प्रभाव में महाराष्ट्र का क्षेत्र भी था, उत्तर कुन्तल के कोतहापुर सतारा और शोलापुर एवं उत्तरी महाराष्ट्र का पूरा भौगोलिक क्षेत्र प्रवरसेन ने जीत लिया था।

डॉ0 ए0एस0 अल्तेकर ने प्रवरसेन के साम्राज्य विस्तार के बारे में लिखा है कि, प्रवरसेन प्रथम ने अपने पैतृक राज्य का दस गुना विस्तार कर दिया था। उसके राज्य विस्तार में नर्मदा और कृष्णा के बीच का पूरा दकन आ गया था। उत्तरी महाराष्ट्र, बरार, मध्यप्रदेश और हैदराबाद रियासत के प्रदेश तो निश्चय ही उसके साम्राज्य के अंग थे। मालवा, गुजरात, आंध्रप्रदेश और दक्षिण कौसल उसके प्रभाव क्षेत्र में थे।

1.4.1 वैवाहिक संबंध

वैवाहिक संबंधों के द्वारा राजनैतिक महत्वाकांक्षाओं की पूर्ति करना राजवंशों के लिए कोई नयी बात नहीं थी। वाकाटकों ने भी ऐसे वैवाहिक संबंधों का सहारा लिया और प्रवरसेन के समय नागों के साथ वैवाहिक संबंध स्थापित किये। उत्तर भारत में नागों का शक्तिशाली राज्य था। प्रवरसेन ने पद्मावती (जिला – ग्वालियर, मध्यप्रदेश) के भार शिववंशीय भवनाग की पुत्री भवनागा के साथ अपने पुत्र गौतमी पुत्र का विवाह किया। नागों और वाकाटकों के मध्य इस वैवाहिक संबंध की पुष्टि वाकाटकों के अनेक ताम्राभिलेखों में बड़े ही गौरव के साथ हुई है। वाकाटकों के साम्राज्य विस्तार एवं उत्कर्ष में इस वैवाहिक संबंध ने बड़ा सहयोग प्रदान किया।

प्रवरसेन की राजनैतक सफलताओं के साथ ही, उसकी सांस्कृतिक उपलब्धियाँ भी महत्वपूर्ण थी। प्रवरसेन ब्राह्मण धर्म का बड़ा समर्थक था, उसने वैदिक धर्म और वैदिक धर्म के यज्ञवाद को अपना संरक्षण प्रदान किया। प्रवरसेन ने चार अश्वमेध एवं वाजपेयी, अग्निष्टोम, ज्योतिष्टोम, षोडशी, उक्थ्य, आप्तोयमि, अतिरात्र, षोड्शिन आदि वैदिक यज्ञ कराये। निश्चित रूप से प्रवरसेन के इन कार्यो से ब्राह्मणों के पुरोहित वर्ग एवं ब्राह्मण साहित्य तथा संस्कृत भाषा का बढ़ावा मिला होगा। प्रवरसेन ने अपने राज्याभिषेक के अवसर पर वाजपेय यज्ञ किया होगा और वाजपेय यज्ञ के बाद सम्राट की उपाधि धारण की होगी। वांशीय ताम्रपत्राभिलेख से 'धर्ममहाराज' की दूसरी एक अन्य उपाधि का भी ज्ञान होता है। प्रवरसेन ने लगभग 60 वर्षो तक शासन किया इस प्रकार प्रवरसेन का शासनकाल लगभग 275–335 ई0 तक।

1.4.2 साम्राज्य का विभाजन

वाकाटक साम्राज्य का विभाजन, वाकाटकों के इतिहास की प्रमुख घटना है। सर्वशक्तिमान सम्राट प्रवरसेन की मृत्यु के बाद वाकाटक साम्राज्य चार भागों में विभक्त हो गया। प्रवरसेन प्रथम के चार पुत्रों ने उसकी मृत्यु के बाद अपनी–अपनी स्वतंत्र सत्ता स्थपित कर ली। प्रवरसेन के चार पुत्रों में से दो पुत्रों, गौतमी पुत्र एवं सर्वसेन के नाम मिलते हैं, शेष दो पुत्रों के नामों का उल्लेख कहीं नहीं मिलता है। प्रवरसेन के बड़े पुत्र गौतमी पुत्र की मृत्यु उसके जीवन में ही हो गयी थी। गौतमी पुत्र का उत्तराधिकारी उसका बेटा रूद्रसेन प्रथम हुआ। रूद्रसेन प्रथम ने वाकाटकों की प्रमुख शाखा का नेतृत्व किया। जिसका शासित क्षेत्र उत्तरी विदर्भ था। जिसकी राजधानी नन्दिवर्धन (नगरधन) थी। प्रवरसेन का दूसरा पुत्र सर्वसेन दक्षिण विदर्भ का शासक बना। उसकी राजधानी वत्सगुल्म (बाशीम) थी। डॉ0 वी. वी. मिराशी का मानना है कि प्रवरसेन के तीसरे पुत्र का राज्य उत्तरी कौसल तथा चौथे पुत्र का राज दक्षिण कौसल में था। उत्तरी कौसल की शखा का विनाश राष्ट्रकूट नरेश मानांक ने और दक्षिणी कौसल का विनाश नल राजवंश ने किया। वाकाटकों की पहली दो शाखाएँ समानान्तर रूप से शासन करती रहीं। वाकाटकों के साम्राज्य के विभाजन से वाकाटकों की शक्ति को भारी चोट पहुँची। इससे वाकाटकों के दकन में एकछत्र राज्य करने का सपना भी चूर – चूर हो गया और भविष्य में भारत के राजनैतिक पटल पर अपनी सशक्त भूमिका को खो दिया। वाकाटक साम्राज्य के विभाजन से कुल मिलाकर वाकाटकों की शक्ति यश और प्रतिष्ठा को भारी क्षति पहुँची।

1.5 प्रमुख शाखा

रूद्रसेन प्रथम ने वाकाटकों की प्रमुख शाखा की स्थापना की। प्रमुख शाखा का शासित क्षेत्र उत्तरी विदर्भ था। जिसकी राजधानी नन्दिवर्धन (नगरधन) थी। प्रमुख शाखा ने लगभग 335 ई0 से लगभग 480 ई0 तक शासन किया। वाकाटकों की प्रमुख शाखा का अंतिम शासक पृथ्वीसेन था। पृथ्वीसेन की मृत्यु लगभग 480 ई0 में हो गयी थी। यह वाकाटकों की मुख्य शाखा का अंतिम शासक था। इसके बाद वाकाटकों की मुख्य शाखा वशीम शाखा के हरिषेण के हाथों में चली गयी। इस प्रकार वाकाटकों की मुख्य शाखा का वशीम शाला में विलह हो गया।

1.5.1 प्रमुख शाखा रूद्रसेन प्रथम

रूद्रसेन प्रथम वाकाटक राजवंश की प्रमुख शाखा का प्रथम शासक था। वह गौतमी पुत्र का पुत्र और प्रवरसेन प्रथम का पौत्र था। रूद्रसेन प्रथम लगभग 335 ई0 में सिंहासन पर बैठा और उसने 360 ई0

तक शासन किया। इस प्रकार रूद्रसेन ने लगभग 25 वर्षो तक शासन किया। वाकाटकों की शक्ति क्षीणता का सर्वाधिक दुष्प्रभाव रूद्रसेन प्रथम को उठाना पड़ा। उसका संपूर्ण शासनकाल राज्य को किसी भी प्रकार से बचाये रखने में व्यतीत हुआ। इतिहासकारों की धारणा है कि, रूद्रसेन प्रथम के राज्य को संभवतः उसके सगे चाचाओं ने हड़पने का प्रयास किया होगा और इसी संघर्ष से रूद्रसेन को सफलतापूर्वक बाहर निकालने नागों ने उसकी मदद की होगी। क्योंकि ज्ञातव्य रहे कि, रूद्रसेन प्रथम की माँ पद्मावती के भारशिव वंशीय राजा भवनाग की पुत्री थी। वाकाटक अभिलेखों में बड़े ही सम्मान के साथ अनेक स्थानों पर बड़े ही गौरव के साथ यह अंकित है कि, रूद्रसेन प्रथम, नाग नरेश भवनाग का दौहिज (नाती) था।

निश्चित रूप से नागों की सहायता से रूद्रसेन प्रथम ने अपना सिंहासन बचाये रखा होगा। साथ ही इतिहासकार इस ओर भी ध्यान दिलाते हैं कि, रूद्रसेन ने अपने राजवंश का प्राचीन धर्म, वैष्णव धर्म त्यागकर, नाना का धर्म, शैव धर्म अपना लिया था और इसीलिए वाकाटक अभिलेखों में रूद्रसेन को महा भैरव (शिव) का उपासक बताया गया है। रूद्रसेन प्रथम के शासनकाल में वाकाटकों के यश और शक्ति को भारी क्षति पहुँची। अनेक सामंत और राज्य के क्षेत्र उनसे अलग हो गये थे। उज्जैन के क्षत्रपों ने भी वाकाटकों की अधीनता त्याग दी थी। इन निकट परिस्थितियों में रूद्रसेन प्रथम ने वाकाटकों के राज्य को येन–केन–प्रकारेण अस्तित्व में बनाये रखा और यहीं उसकी सबसे बड़ी उपलब्धि थी।

1.5.2 पृथ्वीसेन प्रथम

वाकाटक नरेश रूद्रसेन प्रथम का पुत्र पृथ्वीसेन प्रथम वाकाटक वंश की प्रमुख शाखा का दूसरा शासन बना। उसने लगभग 360 – 385 ई0 तक 25 वर्षो तक शासन किया। पृथ्वीसेन प्रथम ने भी अपने राज्य को संगठित बनाये रखने के लिए कोई सैन्य अभियान नहीं किया। डॉ0 अल्तेकर ने लिखा है कि, उसके राज्य में शांति और समृद्धि थी क्योंकि दस्तावेजों में यह लिखा है कि, उसके शासनकाल में वाकाटक वंश ने अपने समृद्धिशाली शासन के सौ वर्ष पूरे किए थे। इस अवधि में कोष और सेना दोनों की ही अभिवृद्धि हुई थी। पृथ्वीसेन प्रथम की सबसे बड़ी उपलब्धि उसका वसीम शाखा के शासक विंध्यसेन के साथ मधुर संबंध थे। दोनों शाखाओं के मध्य आपसी समझबूझ और साझेदारियों ने पुनः वाकाटकों के सम्मान को स्थापित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभायी होगी। दोनों शाखाओं ने एक साथ मिलकर कुंतल पर विजय प्राप्त की थी। कुंतल विजय की योजना बसीम शाखा के शासक विंध्यसेन ने बनायी और विंध्यसेन के ही नेतृत्व में पृथ्वीसेन प्रथम के धन और सैन्य के सहयोग से कुंतल पर वाकाटकों ने विजय प्राप्त की थी।

डॉ0 अल्तेकर का मानना है कि, बसीम शाखा के शासक औपचारिक तौर पर प्रमुख शाखा के शासक पृथ्वीसेन प्रथम की अधीनता स्वीकारते रहे, हालाँकि वे अपने शासन कार्यो में पूर्ण स्वतंत्रता का उपभोग करते थे। वहरहाल, कुंतल विजय ने वाकाटकों के यश और शक्ति को पुनः स्थापित करने में बहुत बड़ी भूमिका निभायी। इस विजय से यह प्रमाणित हो गया कि, वाकाटकों की दोनों शाखाएँ एक शक्ति के रूप में कार्य कर सकती है, अतः कुंतल विजय का राजनैतिक संदेश बड़ा ही शुभ रहा होगा। संभवतः इसी राजनैतिक संदेश के कारण ही गुप्तों ने वाकाटकों के साथ वैवाहिक संबंध स्थापित किया। गुप्त सम्राट चन्द्रगुप्त द्वितीय ने अपनी पुत्री प्रभावती गुप्ता का विवाह पृथ्वीसेन प्रथम के पुत्र रूद्रसेन द्वितीय के साथ कर दिया। गुप्तों का वाकाटकों से वैवाहिक संबंध स्थापित करना वाकाटकों की शक्ति का पुनः स्थापित होने का प्रतीक है।

गुप्त सम्राट चन्द्रगुप्त द्वितीय गुजरात एवं काठियावाड़ा के शकों पर विजय प्राप्त करना चाहता था। वाकाटकों का राज्य और शकों काराज्य एक–दूसरे की सीमा से मिले हुए थे, अतः चन्द्रगुप्त

द्वितीय शकों पर आक्रमण करने से पूर्व वाकाटकों की ओर से निश्चिन्त होना चाहता था। वाकाटकों से मित्रता स्थापित होने के बाद चन्द्रगुप्त द्वितीय ने गुजरात एवं काठियाबाड़ से शकों का दमन कर दिया। शकों के सफाये में वाकाटकों का महत्वपूर्ण सहयोग चन्द्रगुप्त द्वितीय को मिला होगा। वाकाटक अभिलेखों में पृथ्वीसेन को धर्मात्मा के रूप में अंकित किया गया है। उसकी मृत्यु लगभग 385 ई0 में हुई।

1.5.3 रूद्रसेन द्वितीय

पृथ्वीसेन प्रथम की मृत्यु के बाद उसका पुत्र रूद्रसेन द्वितीय लगभग 385 ई0 में वाकाटक सिंहासन पर विराजमान हुआ। उसका शासनकाल महत्वपूर्ण सैनिक एवं सांस्कृति क उपलब्धियों से परिपूर्ण नहीं रहा। क्योंकि 390 ई0 में ही उसकी मृत्यु हो गयी थी। रूद्रसेन द्वितीय वैष्णव धर्म का अनुयायी था। उसे भगवतश्चक्रपाणेप्रसादोपार्जित श्री समुदयस्य महाराजरूद्रसेनस्य कहा गया। रूद्रसेन द्वितीय के जीवन की सबसे बड़ी राजनैतिक घटना सम्राट चन्द्रगुप्त द्वितीय की पुत्री प्रभावती गुप्त से विवाह होना था। रूद्रसेन द्वितीय के दो पुत्र – दिवाकरसेन एवं दामोदरसेन (प्रवरसेन द्वितीय) थे। राजमाता प्रभावती गुप्ता का संरक्षिका के रूप में शासनकाल :– रूद्रसेन द्वितीय की मृत्यु के बाद अपने अल्पायु पुत्रों दिवाकरसेन एवं दामोदरसेन (प्रवरसेन द्वितीय) की संरक्षिका के रूप में शासन किया। 390 ई0 में प्रभावती गुप्त की आयु मात्र 25 वर्ष थी, इतनी आयु में प्रशासनिक अनुभवहीनता होना स्वाभाविक था, ऊपर से दोनों पुत्रों का भी अल्पायु होना। बड़े पुत्र दिवाकरसेन की आयु 5 वर्ष एवं दामोदरसेन की आयु मात्र 3 वर्ष थी। ऐसी विकट परिस्थिति में प्रभावती गुप्त को उसके पिता सम्राट चन्द्रगुप्त द्वितीय ने आधारभूत मदद प्रदान की।

डॉ0 अल्तेकर ने लिखा है कि ''चन्द्रगुप्त अपनी पुत्री को सांत्वना देने के लिए स्वयं आया। कुशल शासन के लिए विशेष व्यवस्थाएँ की। पाटलिपुत्र से कितने ही सैनिक, नागरिक और सचिवालयी अधिकारी वाकाटकों की राजधानी नंदिवर्धन में भेजे गए।'' इन तथ्यों की पुष्टि प्रभावती गुप्त के पूना एवं ऋद्धपुर (रिद्वपुर) ताम्रपट्टों से होती है। पूना ताम्रपट्ट दिवाकरसेन के शासनकाल के तेरहवें एवं ऋद्धपुर ताम्रपट्ट दामोदरसेन के शासनकाल के उन्नीसवें वर्ष का है। ज्ञातव्य रहे कि, पूना ताम्रपत्र से ही यह विदित हुआ है कि प्रभावतीगुप्त, सम्राट चन्द्रगुप्त द्वितीय की सुपुत्री है। उक्त ताम्रपत्रों की लिखि एवं गुप्त वंशावली के आधार पर इतिहासविदों की धारणा है कि वाकाटक शासन व्यवस्था पर गुप्तों का पर्याप्त प्रभाव था। प्रभावती के संरक्षित के रूप में शासनकाल के दौरान वाकाटकों की बसीम शाखा के दोनों शासकों विंध्यसेन एवं प्रवरसेन द्वितीय से उसके संबंध अच्छे रहे। अभी शासन सुचारू रूप से संचालित हो रहा था, इसी बीच प्रभावती गुप्त के युवराज पुत्र दिवाकरसेन की मृत्यु हो गयी। उसके बाद प्रभावती गुप्त का छोटा पुत्र दामोदरसेन युवराज बना। कालान्तर में दामोदरसेन लगभग 410 ई0 में वयस्क होकर वाकाटक सिंहासन पर प्रवरसेन द्वितीय के नाम से बैठा। इस प्रकार प्रभावतीगुप्त ने 20 वर्षो तक वाकाटक राजवंश की मुख्य शाखा के गृवुक्ष को थामें रखा।

1.5.4 प्रवरसेन द्वितीय

लगभग 410 ई0 में प्रभावती गुप्त का छोटा पुत्र दामोदरसेन, प्रवरसेन द्वितीय के नाम से वाकाटक राजवंश के सिंहासन पर बैठा। ऋद्धपुर ताम्रपत्र में प्रभावतीगुप्त को महाराज दामोदरसेन प्रवरसेन की जननी कहा गया है। प्रवरसेन के दर्जन भर से अधिक ताम्रपत्र मिले हैं। प्राचीन भारत के संभवतः सर्वाधिक ताम्रपत्र जारी करने का श्रेय प्रवरसेन द्वितीय को जाता है किन्तु किसी भी ताम्रपत्र में उसके सैन्य अभियानों या विजयों का कोई उल्लेख नहीं मिलता है। प्रवरसेन द्वितीय ने नंदिवर्धन (नंदपुर,

नागपुर) नामक नई राजधानी बनायी एवं उसका नाम प्रवरपुर रखा। प्रवरसेन द्वितीय के राज्यकाल की प्रमुख घटना कुन्तल राज्य के साथ वैवाहिक संबंध स्थापित करना था। प्रवरसेन ने अपने पुत्र नरेन्द्रसेन का विवाह कुन्तल राजकुमारी अज्जितभट्टारिका के साथ सम्पन्न कराया। डॉ. अल्तेकर के अनुसार यह राजकुमारी कंदव वंशीय राजा काकुत्स्यवर्गन की पुत्री थी, वहीं डॉ0 वी0वी0 मिराशी का मत है कि, कुन्तल में इस समय राष्ट्रकूट वंशीय अविधेय नामक राजा शासन कर रहा था। यह उनकी पुत्री थी। प्रवरसेन बड़ा ही विद्वान राजा था उसने प्राकृत भाषा में सेतुबंध नामक काव्य की रचना की थी। जिसका संशोधन संभवतः कालीदास ने किया था। प्रवरसेन ने लगभग 30 वर्षो तक शासन किया था, उसका पाण्डुर्गा ताम्रपत्र उसके शासनकाल के 29वें वर्ष का है, अतः इतिहासविदों का मत है कि, लगभग 440 ई0 के आसपास प्रवरसेन द्वितीय की मृत्यु हो गयी थी।

1.5.5 नरेन्द्रसेन

प्रवरसेन द्वितीय के बाद उसका पुत्र नरेन्द्रसेन वाकाटक नरेश बना। नरेन्द्रसेन के शासनकाल का कोई अभिलेख उपलब्ध नहीं है, उसके बारे में उसके पुत्र पृत्वीषेण द्वितीय के बालाघाट ताम्रपट्टों से सूचना मिलती है बालाघाट ताम्रपट्टों से विदि हाता है कि, कोसल, मैकल औरमालवा के क्षेत्रों पर उसका आधिपत्य था। कौसल मूलतः दक्षिण कौसल (छत्तीसगढ़ प्रदेश) का क्षेत्र था। डॉ0 वी0 वी0 मिराशी के अनुसार, नरेन्द्रसेन के प्रभाव में भीमसेन प्रथम यहाँ राज्य कर रहा था। मैकल क्षेत्र वर्तमान का अमरकण्टक का भौगोलिक क्षेत्र था। डॉ0 वी0वी0 मिराशी के अनुसार यहाँ पाण्डववंश गुप्तों के अधीन राज्य कर रहा था। बहुत संभव है कि, बाद में नरेन्द्रसेन के प्रभाव में आ गये हो। मालवा नरेन्द्रसेन के प्रभाव में आ गया था किन्तु बाद में स्कंदगुप्त के हाथों में चला गया।

बालाघाट ताम्रपट्टों से विदित होता है कि, राजवंश की लक्ष्मी को पुनः प्राप्त किया। वाकाटकों की राजलक्ष्मी को अपद्धत करने वाला नरेश नल वंश का भवदत्तवर्मा था। जिसकी पुष्टि भवदत्त वर्मा के ऋद्धपुर ताम्रपत्राभिलेख से होती है। भवदत्त वर्मा अपनी सैन्य शक्ति से वाकाटकों को रौंदता हुआ। उनकी राजधानी नंदिवर्धन तक पहुँच गया था। भवदत्तवर्मा ने वाकाटकों की शक्ति को भारी चोट पहुंचायी। नरेन्द्रसेन येन–केन–प्रकरेण एक छोटे से क्षेत्र तक सीमित रह गया। किन्तु भाग्यवश भवदत्त वर्मा अधिक समय तक जीवित नहीं रहा और नरेन्द्रसेन ने उसके पुत्र अर्थपति को हराकर अपनी प्रतिष्ठा पुनः स्थापित कर ली। डॉ0 अल्तेकर मत है कि संकट की घड़ी नरेन्द्रसेन को अपनी पत्नी के कदम्ब वंश से यथेष्ट मदद मिली होगी। क्योंकि नरेन्द्रसेन के पुत्र पृथ्वीसेन द्वितीय ने अपनी वंशावली कदम्ब वंश का विवरण दिया है। नरेन्द्रसेन ने लगभग 20 वर्षो तक शासन किया और उसकी मृत्यु 460 ई0 में हो गयी। द्वितीय वाकाटकों की मुख्य शाखा का लगभग 460 ई0 में शासक बना।

पृथ्वीसेन द्वितीय के बालाघाट ताम्रभिलेखों में उल्लेखित है कि, उसने परिवार की लक्ष्मी का दो–दो उद्धार किया था। इससे प्रकट होता है कि, पृथ्वीसेन के शासनकाल में वाकाटकों को दो बार संकटों का सामना करना पड़ा। प्रथम संकट संभवतः नल वंश के शासकों ने उत्पन्न किया। जिससे पृत्वीसेन ने अपने राजवंश की रक्षा की होगी। द्वितीय संकट पश्चिम से त्रैकूटकों के उत्कर्ष से उत्पन्न हुआ। त्रैकूटवंशीय धारसेन (दहसेन) ने एक अश्वमेध यज्ञ कराया था। संभवतः इसी समय वाकाटकों से उसका युद्ध हुआ हो। बहरहाल पृथ्वीसेन इस संकट से भी अपने राज्य का बचाने में सफल रहा है। पृथ्वीसेन की मृत्यु लगभग 480 ई0 में हो गयी थी। यह वाकाटकों की मुख्य शाखा का अंतिम शासक था। इसके बाद वाकाटकों की मुख्य शाखा वशीम शाखा के हरिजन के हाथों में चली गयी। इस प्रकार वाकाटकों की मुख्य शाखा का वशीम शाला में विलह हो गया।

1.6 वसीम शाखा (वत्समुल्म शाखा)

वाकाटकों की वसीम शाखा (वत्सगुल्म शाखा) प्रथम संस्थापक शासक सर्वसेन तथा अंतिम शासक हरिषेण था। लगभग 335 ई0 से लगभग 510 ई0 तक शासन किया। वाकाटकों की वसीम शाखा (वत्सगुल्म शाखा) की स्थापना लगभग 335 ई0 में प्रवसेन प्रथम के छोटे पुत्र सर्वसेन ने की थी। तत्कालीन 'वत्सगुल्म' अमोल (महाराष्ट्र) का आधुनिक 'बासीम' था। सर्वसेन ने बसीम या वत्सगुल्म में अपने राज्य की स्थापना की। वाकाटकों की वसीम शाखा (वत्सगुल्म शाखा) के अंतिम शासक हरिषेण की लगभग 510 ई0 में मृत्यु हो गयी थी और इसी के साथ वाकाटकों की वसीम शाखा (वत्सगुल्म शाखा) का अंत हो गया।

1.6.1 सर्वसेन

वाकाटकों की वसीम शाखा (वत्सगुल्म शाखा) की स्थापना लगभग 335 ई0 में प्रवसेन प्रथम के छोटे पुत्र सर्वसेन ने की थी। तत्कालीन 'वत्सगुल्म' अमोल (महाराष्ट्र) का आधुनिक 'बासीम' था। सर्वसेन ने बसीम या वत्सगुल्म में अपने राज्य की स्थापना की। इसी कारण यह शाखा वाकाटकों की बसीम (वत्सगुल्म) शाखा कहलायी। वत्सगुल्म ही इसकी राजधानी थी। सर्वसेन के जीवन के बारे में अधिक जानकारी अभी तक उपलब्ध नहीं है। सर्वसेन की मृत्यु लगभग 350 ई0 में हो गयी थी। विंध्य सेन – सर्वसेन की मृत्यु के बाद उसका पुत्र विंध्यसेन या विंध्यशक्ति द्वितीय बसीम शाखा का दूसरा शासक बना। उसने 50 वर्षो तक लगभग 350 –400 ई0 तक शासन किया। इसके शासन की सबसे बड़ी उपलब्धि कुन्तल विजय थी, जिसमें उसे प्रमुख शाखा के वाकाटकों से सैन्य एवं धन संबंधी सहायता मिली थी। डॉ0 आल्तेकर के अनुसार विंध्य शक्ति का अपनी विस्तृत था, जिसमें दक्षिण बरार, उत्तरी हैदराबाद खानदेश और नासिक, पूना, नगर और सतारा जिले शाक्ति थे। विंध्यशक्ति की मृत्यु लगभग 400 ई0 में हो गयी थी।

1.6.2 प्रवरसेन द्वितीय

विंध्यशक्ति के बाद उसका पुत्र प्रवरसेन द्वितीय शासक बना। उसने लगभग 400–415 ई0 तक शासन किया। इसकी मृत्यु के बाद 415 ई0 में उसका अल्पवयस्क पुत्र वाकाटक नरेश बना जिसका नाम अभिलेखों या साहित्य में कहीं नहीं मिलता है। इसने लगभग 455 ई0 तक शासन किया था। डॉ0 अल्तेकर का मत है कि यह अल्प वयस्क 8 वर्षीय नरेश, प्रमुख शाखा के प्रवरसेन द्वितीय के संरक्षण में वयस्क होने तक शासक रहा होगा और उसके बाद उसने स्वयं शासन किया होगा।

1.5.3 देवसेन

देवसेन लगभग 455 ई0 में बसीम शाखा का शासक बना। इसने लगीाग 20 वर्षो तक शासन किया और 475 ई0 में इसकी मृत्यु हो गयी थी। देवसेन राजकाज की अपेक्ष भोग विलास में अधिक संलग्न है। किन्तु अपने शासनकाल में इसे अपने योग्य मंत्री हस्तिभोज से बड़ी सहायता मिली। वस्तुतः शासन की समस्त शक्ति का उपयोग हस्तिभोज ने करके देवसेन के शासनकाल को सुचारू रूप से चलाया।

1.6.4 हरिषेण

देवसेन की मृत्यु के बाद उसका पुत्र हरिषेण लगभग 475 ई0 में शासक बना। हरिषेण बसीम शाखा का सबसे प्रतापी शासक था, इसने वाकाटकों के यश और गौरव को तत्कालीन राजनैतिक पटल पर

स्थापित कर दिया था। समकालीन प्राचीन भारत के राजनैतिक पटल पर हरिषेण से शक्तिशाली कोई शासक नहीं था। हरषिेण के शासनकाल में लगभग 480 ई0 में वाकाटकों की प्रमुख शाखा का विलय भी वसीम शाखा में हो गया था, अतः प्रवरसेन प्रथम के बाद अब पुनः वाकाटक की एक राजनैतिक शक्ति हो गयी थी। हरिषेण अब विशाल साम्राज्य का स्वामी हो गया था, क्योंकि प्रमुख शाखा का राज्य भी उसके अधीन आ गया था। इस समय हरिषेण किसी भी प्रकार से सम्राट प्रवरसेन प्रथम से कम शक्तिशाली नहीं था। लगभग 510 ई0 में हरिषेण की मृत्यु हो गयी थी और इसी के साथ एकाएक वाकाटक साम्राज्य इतिहास के पन्नों में विलीन हो गया। अभी तक यह ज्ञात नहीं हो पाया है कि, वाकाटकों के पतन के क्या कारण थे?

डॉ0 अल्तेकर ने लिखा है कि, हरिषेण की मृत्यु के समय वाकाटकों का प्रभाव, उनकी प्रतिष्ठा और शक्ति अपनी पराकाष्ठा पर थी। करीब–करीब पूरी हैदराबाद रियासत, बंबई– महाराष्ट्र, कर्नाटक, बरार और प्रायः सम्पूर्ण मध्यप्रदेश हरिषेण के प्रत्यक्ष शासनाधीन था। उत्तरी कोंकण, गुजरात मालवा आंध्रप्रदेश, छत्तीसगढ़ उसके प्रभाव क्षेत्र में थे।

1.7 प्रशासन

वाकाटकों का केन्द्रीयकृत राजतंत्रात्मक शासन प्रणाली पर आधारित था। वाकाटकों के प्रशासन वे सारी विशेषताएँ विद्यमान थी, जोकि एक राजतंत्रात्मिक व्यवस्था में निहित होती है। वाकाटकों के साम्राज्य का सर्वोच्च राजा होता था। राजा पद अनुवांशिक होता था। वह प्रशासन के समस्त विभागों का सर्वोच्च पदाधिकारी होता था। वाकाटक प्रशासन में राजकुमारों को भी विभिन्न क्षेत्रों का शासक नियुक्त किया जाता था। वाकाटक राजवंश आंतरिक कलह या उत्तराधिकार युद्ध से बचने के लिए राज्य का बंटबारे के भी प्रमाण मिले हैं, इसका सबसे बड़ा प्रमाण प्रवरसेन प्रथम द्वारा अपने चारों पुत्रों के बीच राज्य के बटवारे का करना है। डॉ0 अल्तेकर का मत है कि 'सातवाहनों, चालुक्यों और राष्ट्रकूटों की अपेक्षा वाकाटक साम्राज्य में सत्ता केन्द्र के हाथों में अधिक थी, उसमें अर्ध स्वतंत्र सामंतों का अस्तित्व न था।

वाकाटक नरेश सम्राट और महाराजाधिकार जैसी पद्धतियों को धारण करते थे, किन्तु उन्होंने कभी भी राजा के दैवीय सिद्धान्त का दावा नहीं किया। वाकाटक राज्य में राजा को सलाह देने के लिए कोई मंत्री परिषद थी या नहीं। इसके कोई प्रमाण नहीं है। हाँ, इतना अवश्य पता है कि, युवराज के अल्पवयस्क होने पर संरक्षण की व्यवस्था अवश्य थी। वाकाटकों की दोनों शाखाओं में इसके प्रमाण हैं। मुख्य शाखा में प्रभावती गुप्ता ने तथा बसीम शाखा में लगभग 415–55 ई0 तक मुख्य शाखा के प्रवरसेन द्वितीय द्वारा वसीम शाखा के 8 वर्षीय अल्पवयस्क युवराज को संरक्षण देना इसके उक्त उदाहरण हैं।

वाकाटक प्रशासन के सलाहकारों, मंत्रियों, विभागों, पदनामों आदि का काई उल्लेख वाकाटक अभिलेखों में नहीं मिलता है। कुल मिलाकर यह कहा जाये तो अतिश्योक्ति नहीं होगी कि, वाकाटक प्रशासन में पदाधिकारी, उनके विभागों, कर्तव्यों आदि की कोई पद श्रेणी प्राप्त नहीं होती है। वाकाटक अभिलेखों सेनापति, सर्वाध्यक्ष, संतक, चाट और भाट का ही उल्लेख मिलता है, कोई ढांचागत प्रशासन की संरचना का अंकन प्राप्त नहीं होता है।

सेनापति – सेनापति वाकाटक साम्राज्य का प्रमुख अधिकारी होता था। वाकाटक नरेश के दान पत्रों में राजा के साथ सेनापति के नाम के उल्लेख से उसकी महत्ता का ज्ञान है। प्रवरसेन द्वितीय के ग्यारहवें वर्ष के ताम्र लेख में वे राजा के साथ सेनापति चित्रवर्धन का उल्लेख है। प्रवरसेन द्वितीय के ही सिवनी ताम्रपट्टों में सेनापति बप्पदेव का उल्लेख है। इससे स्पष्ट है कि, वाकाटक साम्राज्य में राजा के बाद सेनापति का सर्वाधिक महत्व था।

सर्वाध्यक्ष – सर्वाध्यक्ष संभवतः प्रधानमंत्री के समान था और अन्य मंत्रियों एवं आंतरिक प्रशासन का प्रधान था। वह सैन्य कौशल और प्रशासन दोनों में ही दक्ष होता था। सर्वाध्यक्ष संभवतः राजा का बहुत

विश्वसनीय व्यक्ति होता था और विपरीत परिस्थिति में वह समस्त शासन का संचालन भी करता था। वसीम शाखा के देवसेन (लगभग 455–475 ई0) ने अपने शासनकाल में समस्त सत्ता अपने मंत्री 'हस्तिभोग' के हाथों में सौंप रखी थी। जिसका संचालन हस्तिभोग ने बड़ी ही कुशलतः के साथ किया था।

संतक – संभवतः जिला स्तर के जिलाधिकारी रहे होंगे जिले की प्रशासनिक व्यवस्था इनके अधीन रहनी होगी। चाट और भात पुलिस एव सेना के अधिकारी थे। रज्जक रज्जकन्तक एक लिपिक वर्गीय कर्मचारी का उल्लेख आया है।

वाकाटक प्रशासन की **प्रांतीय इकाईयों** के बारे में इतिहासकारों में मतैक्य नहीं है। वाकाटक अभिलेखों में *भुक्ति, राष्ट्र और राज्य* जैसी क्षेत्रीय इकाईयों का उल्लेख हुआ है, जोकि संभवतः एक ही इकाई के विविध नाम थे इनके बारे में अभी तक कोई सूचना नहीं है कि इनका गठन प्रशासनिक कार्य एवं सीमाऐं क्या थीं? अधिकांश इतिहासकार मानते हैं कि वाकाटक राज्य में कोई क्षेत्रीय प्रांतीय इकाई का विभाजन नहीं था। पूरा राज्य **सीधे जिलों** में विभक्त था और भुक्ति, राष्ट्र, राज्य जैसी इकाईयाँ जिलों में विभक्त प्रशासन था। वाकाटक साम्राज्य के प्रशासन की अंतिम इकाई **ग्राम प्रशासन** थी। ग्राम का प्रधान महत्तर कहलाता था। ग्राम प्रशासन के लिए महत्तरों की सभा होती थी, जिसका प्रधान गाम का मुखिया होता था। ग्रामीण प्रशासन की संपूर्ण जिम्मेदारी इनपर होती थी।

1.8 गुप्त–वाकाटक संबंध

प्राचीन भारतीय इतिहास में वाकाटकों एवं गुप्तों का इतिहास स्वर्णियम् पृष्ठों पर अंकित है। सौभाग्य से दोनों शक्तियों का उद्भव एवं विकास समानान्तर हुआ और दुर्भाग्य से दोनों की शक्तियों का पतन छठी शताब्दी में हुआ। गुप्तों ने उत्तर भारत में सार्वभौमिक सत्ता की स्थापना करके एक राजनैतिक एकता के सूत्र में उत्तर भारत को बाँधा। वहीं दक्षिण भारत में वाकाटकों ने सातवाहनों के बाद विखण्डित राजनैतिक शक्ति को अपने अधीन एकसूत्र में बांधा। गुप्तों ने उत्तर भारत में अपना साम्राज्य विस्तार किया और जब दक्षिण विजय के लिए गये, तब उन्होंने आश्चर्यजनक तरीके से वाकाटकों से कोई संघर्ष नहीं किया। ऐसा प्रतीत होता है कि गुप्त यह जानते थे कि, वाकाटक दक्षिण की एक बड़ी शक्ति है और उन्हें नहीं छेड़ते हुए संपूर्ण भारत में अपना साम्राज्य विस्तार करेगें। वहीं वाकाटकों ने भी इस बात का ध्यान रखा होगा कि, गुप्तों से कोई सीधा संघर्ष उत्पन्न नहीं हो। इसीलिए वाकाटकों दक्षिण में अपना साम्राज्य विस्तार किया। वाकाटकों एवं गुप्तों में हम ऐसी राजनैतिक देख पाते हैं कि कहीं भी वाकाटकों और गुप्तों में कोई राजनैतिक या सैन्य टकराव की स्थिति बनी हो।

वाकाटक – गुप्त संबंधों के **प्रथम चरण** की समीक्षा में वाकाटकों एवं गुप्तों के मध्य प्रारंभिक संस्थापक शासकों के मध्य संभवतः किसी भी प्रकार का कोई संघर्ष या संपर्क नहीं रहा होगा। क्योंकि प्रारंभ में दोनों ही राजवंश अपने को स्थापित करने में संलग्न रहे होंगे। वाकाटक नरेश प्रवरसेन प्रथम (लगभग 275–335 ई0) एवं गुप्त शासक चन्द्रगुप्त प्रथम (लगभग 319–350 ई0) दोनों शासक समकालीन थे और दोनों ही अपने राज्य का विस्तार कर रहे थे। प्रवरसेन प्रथम ने अपने राज्य का विस्तार करते हुए अपनी सैन्य सफलताओं के उपलक्ष्य में सम्राट की उपाधि धारण की। वहीं, चन्द्रगुप्त प्रथम अपनी सैन्य सफलताओं और राज्य विस्तार की सफलता पर 'महाराजाधिराज' की उपाधि धारण की। डॉ0 के0 पी0 जायसवाल ने संस्कृत नाटक 'कौमुदी महोत्सव' के कथानक के आधार पर अपना यह मत प्रस्तुत किया है कि मगध नरेश चण्द्रसेन (चन्द्रगुप्त प्रथम) पर वाकाटक नरेश प्रवरसेन प्रथम ने आक्रमण करके युद्ध में मार डाला और मगध पर अपना आधिपत्य स्थापित कर लिया। इतिहासकारों ने अनेक तर्को के आधार पर के0 पी0 जायसवाल के मत का खण्डन किया है अभी तक ऐसा कोई प्रमाण नहीं मिला है कि,

प्रवरसेन प्रथम ने मगध पर आक्रमण किया। इस प्रकार यह स्पष्ट है कि, प्रवरसेन प्रथम एवं चन्द्रगुप्त प्रथम के शासनकाल में वाकाटक एवं गुप्तों में कोई संबंध नहीं था।

वाकाटक – गुप्त संबंधों के **द्वितीय चरण** की समीक्षा में वाकाटकों की मुख्य शाखा के नरेश रूद्रसेन प्रथम (लगभग 335–360 ई0) पृथ्वीसेन प्रथम (लगभग 360 – 385 ई0) के समकक्ष गुप्त नरेश समुद्रगुप्त (लगभग 350–375 ई0) के शासनकाल के मध्य वाकाटक गुप्तों संबंधों की समीक्षा करेगें। वाकाटक – गुप्त संबंधों के इस चरण में गुप्त सम्राट समुद्रगुप्त के पराक्रम की प्रधानता रही। समुद्रगुप्त ने अपनी दिग्विजय की और इस दिग्विजय में सैन्य अभियानों के कदम उत्तर भारत से लेकर दक्षिणापथ तक पड़े। इसी आधार पर डॉ0 के0पी0 जायसवाल, फ्लीट, डी0सी0 सरकार, एस0के0 आयंगर आदि इतिहासविदों ने अनेक साक्ष्यों और तर्को के आधार पर यह सिद्ध करने का प्रयास किया कि, गुप्तों का वाकाटकों से संघर्ष हुआ था और इस संघर्ष में गुप्तों ने वाकाटकों को परास्त किया था। प्रयाग प्रशस्ति के अनुसार समुद्रगुप्त के द्वितीय आर्यावर्त सैन्य अभियान नव नामों का समूल विनाश किया। इन नव नामों में रूद्रसेन प्रथम कानाना भवनाग भी था, अतः ऐसी स्थिति में रूद्रसेन ने गुप्तों के विरूद्ध हथियार उठाया होगा।

के0पी0 जायसवाल का विचार है कि, रूद्रसेन और समुद्रगुप्त के मध्य यह युद्ध 'एरण' आधुनिक जिला– सागर, मध्यप्रदेश में हुआ था और इस युद्ध में समुद्रगुप्त ने रूद्रसेन प्रथम को मार डाला था। दक्षिणापथ के अभियान के दौरान आन्ध्रप्रदेश एवं दक्षिणा कौसल को समुद्रगुप्त ने जीता था। ये दोनों क्षेत्र वाकाटकों के अधीन थे, अतः वाकाटकों एवं गुप्तों में इसके कारण युद्ध हुआ होगा। वाकाटक पृथ्वीसेन प्रथम का सामन्त व्याघ्रदेव महाकान्तार में राज्य कर रहा था, जिसकी पुष्टि गंज एवं नचना के अभिलेख करते हैं। दक्षिणापथ की दिग्विजय में समुद्रगुप्त ने व्याघ्रराज को हराया था, जिसका उल्लेख प्रयोग प्रशस्ति (इलाहाबाद अभिलेख) में हुआ है। अपने सामन्त के रक्षार्थ निश्चित रूप से वाकाटक नरेश पृथ्वीसेन प्रथम ने समुद्रगुप्त से संघर्ष किया होगा। वाकाटक नरेश रूद्रसेन प्रथम ने महाराजा की उपाधि धारण की थी, जबकि इससे पूर्व के वाकाटक राजा प्रवरसेन प्रथम ने सम्राट की उपाधि धारण की थी। सम्राट की उपाधि छोड़कर 'महाराज' की उपाधि धारण करना किसी भी राजा की शक्तिहीनता का प्रतीक है और ऐसा इसीलिए हुआ होगा कि, समुद्रगुप्त ने रूद्रसेन प्रथम को रौंद डाला होगा।

उक्त तर्को के विरूद्ध इतिहासविदों ने अनेक तर्क किये है और इन मतों का तर्को के आधार पर पुरजोर खण्डन किया है– वाकाटक राज्य और उसके शासन रूद्रसेन प्रथम, प्रवरसेन प्रथम के बाद स्वतः ही कमजोर और शक्तिहीन हो गये थे, क्योंकि प्रवरसेन प्रथम ने वाकाटक साम्राज्य का विभाजन चार भागों में कर दिया था, अतः रूद्रसेन प्रथम की शक्ति और साधन दोनों क्षीण हो गये थे, उसके द्वारा शासित भौगोलिक क्षेत्र भी सीमित हो गया था। ऐसी दशा में उसके अनेक सामन्त और अधिकृत क्षेत्र उससे मुक्त हो गये थे। रूद्रसेन प्रथम ने तो येन–केन–प्रकारेण अपने द्वारा शासित वाकाटक क्षेत्र को बचाये रखा। ऐसी विकट परिस्थिति में कोई राजा कैसे 'सम्राट' जैसी महान् उपाधि को धारण कर सकता था, अतः रूद्रसेन प्रथम ने 'महाराज' जैसी सम्मानजनक पद्वी को ही धारण किये रखना उचित समझा होगा। समुद्रगुप्त द्वारा पराजित प्रयाग प्रशस्ति का रूद्रदेव आर्यावर्त के कौशांभी उ0प्र0 के इलाहाबाद के पास का राजा था, जबकि रूद्रसेन प्रथम दक्षिण का राजा था और यह कि, प्रयाग प्रशस्ति के रूद्रदेव की प्रमाणिकता कौशाम्भी के शासक के रूप में हो चुकी है, अतः प्रयाग प्रशस्ति के रूद्रदेव और वाकाटक नरेश रूद्रसेन प्रथम की समानता करना अनुचित है।

इस तथ्य का भी कोई प्रमाण नहीं है कि, रूद्रसेन प्रथम और समुद्रगुप्त का एरण में कोई युद्ध हुआ था। जहाँ तक प्रश्न आंध्रप्रदेश और दक्षिणी कौसल पर समुद्रगुप्त के आधिपत्य का है, तो ये प्रदेश प्रवरसेन की मृत्यु के बाद ही वाकाटकों से अलग हो गये थे, अतः इनके प्रश्न पर युद्ध होना संभव ही नहीं है। एक और बात यह है कि, रूद्रसेन प्रथम सैन्यशक्ति, धनशक्ति और क्षेत्रीय आधिपत्य के मामलों

में इतना शक्तिहीन था कि, वह समुद्रगुप्त से युद्ध के बारे में सोच भी नहीं सकता था। यह भी कि, समुद्रगुप्त ने जिस व्याघ्रराज को हरायाथा वह दक्षिणापथ का शासक था, जबकि गंज और नचना अभिलेखों में उल्लेखित व्याघ्रदेव उत्तरी भारत का शासक था, अतः दोनों की समानता करना अनुचित है। इस प्रकार स्पष्ट है कि वाकाटक नरेश रूद्रसेन प्रथम और समुद्रगुप्त के मध्य कोई युद्ध नहीं हुआ था और नही रूद्रसेन प्रथम के उत्तराधिकारी पृथ्वीसेन प्रथम के साथ समुद्रगुप्त का कोई युद्ध हुआ। डॉ0 वी0सी0 पाण्डेय का मत है कि, समुद्रगुप्त एक दूरदर्शी शासक था। उसने वाकाटकों के साथ संघर्ष से दूरी बनाकर दक्षिणी भारत के पूर्वी तटीय मार्ग से दक्षिणापथ की विजय की थी और उसने वाकाटक शासित क्षेत्रों को छुआ तक नहीं था।

वाकाटक – गुप्त संबंधों के **तीसरे चरण** में हम वाकाटक नरेशों पृथ्वीसेन प्रथम (लगभग 360–385 ई0), रूद्रसेन द्वितीय (लगभग 385–390 ई0) दिवाकरसेन एवं प्रवरसेन द्वितीय (लगभग 410–440 ई0) के समकक्ष गुप्त नरेश चन्द्रगुप्त द्वितीय (375–414 ई0) के शासनकाल के वाकाटक गुप्त संबंधों की समीक्षा करेगें। वाकाटक– गुप्त संबंधों के इस चरण में गुप्त सम्राट चन्द्रगुप्त द्वितीय की कूटनीति और उसका प्रभाव रहा। चन्द्रगुप्त द्वितीय एक प्रतापी साम्राज्य निर्माण शासक था, उसने अपने साम्राज्य के विस्तार की विधिवत् योजना बनायी और इस योजना के तहत पश्चिमी भारत पर विजय के लिए आवश्यक आधारभूत तकनीकी सहायता वाकाटकों से प्राप्त हो सकती थी। वाकाटकों की भौगोलिक स्थिति पश्चिमी भारत के शकों को परास्त करने में महत्वपूर्ण हो सकती थी। रणनीतिक दृष्टि से युद्ध के समय वाकाटकों की सहायता उपयोगी थी, इसके साथ ही वाकाटकों से संभावित खतरा भी नहीं रहेगा। अतः चन्द्रगुप्त द्वितीय ने दूरगामी कूटनीतिक कदम उठाते हुए तत्कालीन वाकाटक नरेश पृथ्वीसेन प्रथम के पुत्र युवराज रूद्रसेन द्वितीय के साथ अपनी पुत्री प्रभावती गुप्त का विवाह कर दिया।

चन्द्रगुप्त द्वितीय ने वाकाटकों की ओर से निश्चिन्त हो जाने के बाद शकों पर आक्रमण किया और विजय प्राप्त की। कतिपय इतिहासकारों का मत है कि शकों से संघर्ष में गुप्तों की सहायता वाकाटकों ने की और शकों के साथ युद्ध करते हुए ही रूद्रसेन द्वितीय की मृत्यु हुई। किन्तु अनेक इतिहासविद् ऐसा नहीं मानते हैं। चन्द्रगुप्त द्वितीय का दामाद रूद्रसेन द्वितीय (385–390 ई0 तक शासक रहा और लगभग 390 ई0 में उसकी मृत्यु हो गयी। उस समय रूद्रसेन द्वितीय और प्रभावती गुप्त के दो पुत्र थे, जिनकी आयु क्रमशः 5 और 3 वर्षो की थी। ऐसी विकट परिस्थिति में चन्द्रगुप्त द्वितीय ने प्रभावती गुप्त की सहायता की। इस प्रकार इस काल में गुप्तों और वामटकों के संबंध मधुर रहे।

वाकाटकों एवं गुप्तों के मध्य संबंधों का **चौथा चरण** वाकाटक नरेश प्रवरसेन द्वितीय (लगभग 410–440) एवं नरेन्द्रसेन द्वितीय (लगीाग 440–460 ई0) तथा गुप्त सम्राट कुमार गुप्त (लगभग 412–455 ई0) के मध्य संबंधों का चरण था। इस चरण में वाकाटक एवं गुप्त संबंधों की मधुरता शनैः–शनैः समाप्त होने लगी थी, किन्तु फिर भी वाकाटक एवं गुप्त संबंध कुल मिलाकर अच्छे बने रहे। वाकाटक नरेश प्रवरसेन द्वितीय, प्रभावती गुप्त का पुत्र था और प्रभावती चन्द्रगुप्त द्वितीय की पुत्री। इस संबंध के नाते जब तक प्रभावती जीवित रही, तब तक वामटकों और गुप्तों के संबंध ठीक रहे। फिर भीचन्द्रगुप्त द्वितीय की लगभग 412 में मृत्यु के बाद प्रवरसेन द्वितीय ने प्रभावती की सलाह पर ही शनैः–शनैः अपनी निर्भरता गुप्त सलाहकारों एवं कर्मचारियों पर कम करनी प्रारंभ कर दी थी। इस प्रमुख कारण चन्द्रगुप्त द्वितीय की मृत्यु और प्रवरसेन द्वितीय का शासन करने में लगातार सक्षम होने के मध्य खोज जा सकता है। कुल मिलाकर ठोस प्रमाणों के आधारपर यह कहा जा सकता है कि, वाकाटक नरेश प्रवरसेन द्वितीय और गुप्त नरेश कुमार गुप्त प्रथम (लगभग 412–455 ई0) के मध्य संबंध अच्छे बने रहे। इसी प्रकार प्रवरसेन द्वितीय के पुत्र नरेन्द्रसेन (440–460 ई0) और कुमार गुप्त प्रथम (लगभग 412–455 ई0) के समय में भी वाकाटक एवं गुप्त संबंधों पर कोई संकट नहीं आया।

वाकाटक – गुप्त संबंधों के **अंतिम चरण** में वाकाटक एवं गुप्त संबंधों में तनाव उत्पन्न हो गया था। इस चरण में वाकाटक नरेश नरेन्द्रसेन (440–460 ई0), पृथ्वीसेन द्वितीय (लगभग 460–480 ई0)

एवं वसीम शाखा के हरिषेण (लगभग 475–510 ई0) तथा गुप्त सम्राट स्कन्दगुप्त (455–467 ई0) के मध्य वाकाटक एवं गुप्त संबंधों की समीक्षा करेगें। वाकाटक नरेश नरेन्द्रसेन ने गुप्त सम्राट स्कंदगुप्त के शासन के प्रारंभिक शासनकाल में पुष्य मित्रों द्वारा गुप्त साम्राज्य के लिए उत्पन्न हुए संकट के समय गुप्तों के आधिपत्य मालवा, शैंकल, कौशल पर अपना प्रभाव स्थापित कर लिया। ऐसी स्थिति में वाकाटकों एवं गुप्तों के मध्य तनातनी होना अवश्यभावी था। नरेन्द्रसेन के प्रभाव की पुष्टि बालाघाट अभिलेख से होती है, जिसमें उसे मालवा कौसल एवं मैंकल का अधिपति बताया गया है। किन्तु संकट से उबरने के बाद स्कन्दगुप्त ने पुनः इन क्षेत्रों पर अपना प्रभाव स्थापित कर लिया। ऐसी स्थिति में वाकाटक एवं गुप्त सेनाओं के बीच युद्ध होना बहुत संभव है, किन्तु इसकी जानकारी किसी तथ्य से होती नहीं है। बहरहाल, नरेन्द्रसेन और स्कन्दगुप्त के शासनकाल में वाकाटक एवं गुप्त संबंधों की मधुरता का अंत हो गया। वाकाटक नरेश पृथ्वीसेन द्वितीय (लगभग 460–480 ई0) के शासनकाल में वाकाटक गुप्त संबंधों के बारे में किसी प्रकार की सूचना नहीं मिलती है। संभवतः पृथ्वीसेन द्वितीय के समय वाकाटकों एवं गुप्तों के मध्य कोई टकराव नहीं हुआ था। पृथ्वीसेन द्वितीय की मृत्यु लगभग 480 ई0 में हो गयी और इसकी मृत्यु के साथ ही, वाकाटकों की मुख्य शाखा का शासन बसीम शाखा में हरिषेण (लगभग 475–510 ई0) के हाथों में आ गया। हरिषेण बहुत ही महत्वाकांक्षी शासक था उसके शासनकाल में वाकाटक साम्राज्य प्रवरसेन प्रथम के शासनकाल से भी अधिक विस्तृत था। स्कन्दगुप्त की मृत्यु और परवर्ती गुप्तां की कमजोर स्थिति होने का लाभ हरिषेण ने उठाया। हरिषेण ने गुप्तों के आधिपत्य के अनेक क्षेत्र वाकाटक साम्राज्य के प्रभाव में ला दिये। किन्तु इसी बीच लगभग 510 ई0 में हरिषेण की मृत्यु हो गयी। हरिषेण के बाद वाकाटक साम्राज्य का एकाएक पतन हो गया और उधर परिवर्ती गुप्तों के काल में गुप्त साम्राज्य पतन की ओर बढ़ रहा था, अतः छठी शताब्दी में वाकाटक गुप्त साम्राज्यों के पतन के साथ ही वाकाटक गुप्त संबंधों का भी पटाक्षेप हो गया।

वस्तुनिष्ठ प्रश्न

1. चन्द्रगुप्त द्वितीय की पुत्री का नाम था।
   (अ) रामवती **(ब) प्रभावती** (स) श्यामावती (द) कुबेरनागा
2. किस अभिलेख से पता चला कि प्रभावती चन्द्रगुप्त द्वितीय की पुत्री है।
   (अ) अजंता लेख (ब) बालाघाट लेख **(स) पूना लेख** (द) रिद्धपुर लेख
3. वाकाटक राजवंश का संस्थापक था–
   (अ) हरिषेण (ब) प्रवरसेन **(स) विन्ध्यशक्ति** (द) रूद्रसेन
4. वाकाटक राजवंश का अंतिम शासक था।
   (अ) हरिषेण (ब) प्रवरसेन (स) विन्ध्यशक्ति (द) रूद्रसेन
5. सेतुबंध का लेखक था–
   (अ) हरिषेण (ब) प्रभावती **(स) प्रवरसेन द्वितीय** (द) दिवाकर सेन
6. बसीम शाखा का प्रथम शासक था–
   (अ) हरिषेण (ब) प्रवरसेन **(स) सर्वसेन** (द) विन्ध्यशक्ति
7. प्रवरसेन प्रथम ने कितने अश्वमेध यज्ञ किये।
   (अ) 1 (ब) 2 (स) 3 **(द) 4**
8. वाकाटक राजवंश में किसने सम्राट की उपाधि धारण की थी–
   (अ) हरिषेण **(ब) प्रवरसेन प्रथम** (स) विन्ध्यशक्ति (द) रूद्रसेन
9. वाकाटक जाति के थे–
   (अ) ब्राह्मण (ब) क्षत्रीय (स) वैश्य (द) शूद्र
10. किस वाकाटक शासक ने वाकाटक साम्राज्य को चार भागों में बांट दिया था–
    (अ) हरिषेण (ब) पृथ्वीषेण द्वितीय (स) नरेन्द्रसेन **(द) प्रवरसेन प्रथम**

नीचे लिखे प्रश्नों के उत्तर दीजिए

प्रश्नः— समुद्र गुप्त और वाकाटक शासकों के संबंधों का विश्लेषण कीजिए?

प्रश्नः— प्रभावती गुप्ता के संरक्षण शासनकाल का उल्लेख कीजिए?

प्रश्नः— वाकाटकों की बसीम शाखा का विवरण दीजिए।

1.9 तकनीकी शब्दावली

1. ताम्रभिलेख — ताँबे पर लिखे अभिलेख
2. राजमुद्राभिलेख — राज्य मुद्रा (Seal) पर लिखे अभिलेख
3. मुद्राभाण्ड — मुद्रा (सिक्कों) से भरा मटका
4. शासनाधिकार— शासन का अधिकार

1.10 संदर्भ ग्रंथ सूची

1. भण्डारकर, आर० जी० — अर्ली हिस्ट्र ऑफ दी डेक्कन,
2. दीक्षितार, वी. आर. आर. — स्टडीज इन तमिल लिटरेचर एण्ड हिस्ट्री, मद्रास, 1936
3. गोपालाचारी, के. — अर्ली हिस्ट्री ऑफ आन्ध्र कन्ट्री, मद्रास, 1941
4. मिराशी, वी.वी. — सातवाहनों और पश्चिमी क्षत्रियों का इतिहास और अभिलेख, 1982
5. मुखर्जी, राधाकुमुद — प्राचीन भारत, नई दिल्ली, 1970
6. मजूमदार, आर0 सी0 — दि क्लासिकल एज, बम्बई, 1954
7. राय, बी.वी.के. — अर्ली डायनेस्टिक्स ऑफ आन्ध्रदेश, मद्रास, 1942
8. सरकार, डी. सी. — सक्सर्स ऑफ द सातवाहंस, कलकत्ता, 1929
9. शास्त्री, ए.एम. — अर्ली हिस्ट्री ऑफ द डेक्कन, दिल्ली, 1987
10. याजदानी, जी. (संपा.) — द अर्ली हिस्ट्री ऑफ द डेक्कन, 1982

1.11 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. मजूमदार, रमेशचन्द्र — प्राचीन भारत, दिल्ली, 1973
2. महाजन, वी.डी. — प्राचीन भारत का इतिहास, नई दिल्ली, 2008
3. पाण्डेय, विमल चन्द्र — प्राचीन भारत का राजनीतिक तथा सांस्कृतिकइतिहास, भाग 2, इलाहाबाद, 1998
4. ओमप्रकाश — प्राचीन भारत का इतिहास, नई दिल्ली, 1986
5. श्रीवास्तव, के० सी० — प्राचीन भारत का इतिहास एवं संस्कृति, इलाहबाद, 2007
6. त्रिपाठी, आर० एस० — प्राचीन भारत का इतिहास, बनारस, 1998

1.12 निबंधात्मक प्रश्न

प्रश्नः— प्रवरसेन प्रथम के साम्राज्य विस्तार का वर्णन कीजिए?

प्रश्नः— वाकाटकों की मुख्य शाखा के शासकों का विवरण दीजिए?

प्रश्नः— वाकाटक गुप्त संबंधों की समीक्षा कीजिए?

प्रश्नः— वाकाटक शासन व्यवस्था पर लेख लिखिए।

ब्लॉक तीन

इकाई दो : मौखरी राज्य

2.1 प्रस्तावना

2.2 उद्देश्य

2.3 प्राचीनता

2.4 उत्पत्ति, आदिपुरूष एवं जाति

2.4.1 गया के भौखरी

2.4.2 कान्यकुब्ज के भौखरी

2.4.2.1 हरिवर्मा

2.4.2.2 आदित्यवर्मा

2.4.2.3 ईश्वरवर्मा

2.4.2.4 ईशान वर्मा

2.4.2.5 सर्ववर्मा

2.4.2.6 अवन्तिवर्मा

2.4.2.7 गृहवर्मा

2.5 तकनीकी शब्दावली

2.6 संदर्भ ग्रंथ सूची

2.7 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

2.8 निबंधात्मक प्रश्न

2.1 प्रस्तावना

उत्तर भारत के राजनैतिक पटल पर महान् गुप्त साम्राज्य के पतन के बाद अनेक राजनैतिक शक्तियों का उदय हुआ। जिन्होंने अपने पराक्रम और कूटनीतिक सूझबूझ से अपने वंश का नाम इतिहास के पन्नों में दर्ज कराया। इन राजवंशों में ''मौखरी वंश'' भी एक था। मौखरियों ने गुप्तों के पतन के बाद शक्ति संचयन करके 'कान्यकुब्ज' में अपनी सत्ता की स्थापना की। मौखरियों ने छठी शताब्दी ई0 में अपना राजनैतिक प्रभुत्व स्थापित किया।

2.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के उद्देश्य निम्नलिखित है –

9. विद्यार्थी मौखरी वंश का इतिहास समझ सकेगें।
10. विद्यार्थी कन्नौज के इतिहास को जान सकेंगे ।
11. विद्यार्थी गया के मौखरी कालीन भारत के इतिहास को समझेंगें।
12. विद्यार्थी कान्यकुब्ज के मौखरी कालीन भारत के इतिहास समझ सकेगें।
13. विद्यार्थी मौखरियों एवं उत्तरकालीन गुप्तों का राजनैतिक संघर्ष समझ सकेगें।
14. विद्यार्थी मौखरियों एवं उत्तरकालीन गुप्तों के वैवाहिक संबंधों को जान सकेंगे।

2.3 प्राचीनता

मौखरी वंश भारत के प्राचीन राजवंशों में से एक था। मौखरियों की प्राचीनता के बारे में अनेक साहित्यिक एवं पुरातात्विक साक्ष्यों से जानकारी मिलती है। इतिहासकारों की धारणा है कि, पाणिनी की अष्टाध्यायी में भी मौखरियों का उल्लेख था क्योंकि पाणिनी की अष्टाध्यायी के आधार पर महर्षि पतंजलि ने 'महाभाष्य' की रचना की। पतंजलि ने महाभाष्य (5.2.107) में भौखरी जाति के लिए 'मुखर' शब्द लिखा है, अतः इतिहासविदों की धारणा है कि, ई0 पू0 द्वितीय शताब्दी में ''मौखरी'' एक जाति के रूप में विद्यमान थे। इसी प्रकार महाभाष्य के टीकाकार कयत (कय्यत) ने मौखर्या शब्द का प्रयोग किया है। इसी प्रकार व्याकरण के विद्वान वामन ने अपने ग्रंथ का शिकावृत्ति में भी 'मौखर्या' शब्द का प्रयोग किया है। उक्त साहित्यिक साक्ष्यों के आधार पर इतिहासविदों की धारणा है कि, पाणिनी के काल के आधार पर मौखरियों की प्राचीनता को भी छठी शताब्दी ई0 पू0 चौथी शताब्दी ई0 पू0 के आसपास रखा जा सकता है।

मौखरियों की प्राचीनता को सिद्ध करने के लिए अनेक पुरातात्विक साक्ष्य प्राप्त हुए हैं गया से मिट्टी की एक मुहर कनिंघम को मिली थी, जिसे 'गया राजमुद्रा' कहा गया। इस मिट्टी राजमुद्रा पर मौर्यकालीन ब्राम्ही लिपि में 'मौखलिनम्' अंकित है। उक्त राजमुद्रा के आधार पर इतिहासविद् मौखरियों की प्राचीनता को ई0पू0 चौथी या तीसरी शताब्दी ई0पू0 रखने का सुझाव देते हैं।

डॉ0 ए0 एस0 अल्तेकर को राजस्थान के कोटा जिले के बड़वा नामक स्थल से एक अभिलेख मिला है। इस अभिलेख में मौखरी वंश के महासेनापति बल एवं उसके तीन पुत्रों के नाम अंकित हैं। अभिलेख पर कृत संवत् की 294 तिथि अंकित है। विद्वानों का मत है कि यह कृत संवत्, मालव संवत् है। इस प्रकार अभिलेख की तिथि तीसरी शताब्दी की प्रतीत होती है। चूंकि यह अभिलेख यज्ञयूप पर अंकित है, अतः इन्हें वैदिक धर्म को मानने वाला माना जा सकता है। बराबर एवं नागार्जुनी गुहा अभिलेखों से मौखरियों के बारे में अधिक सूचना मिलती है। इनमें यज्ञवर्मा, शार्दलवर्मा, अनन्तवर्मा इन तीन मौखरी नरेशों के नाम अंकित है। भाषा और लिपि के आधार पर अभिलेख पाँचवी शताब्दी का माना जा सकता है। उक्त साक्ष्यों के विश्लेषण के आधार पर इन्द्रजी एवं ब्यूलर का मत है कि, भौखरियों को पाँचवी शताब्दी में रखा जा सकता है। कीलहर्न ने मौखरियों को छठवीं शताब्दी में रखने का प्रस्ताव दिया है। प्रसिद्ध इतिहासविद् डॉ0 आर0 सी0 मजूमदार बराबर एवं नागार्जुनी अभिलेखों की लिपि एवं हरहा अभिलेख (554 ई0) की लिपि का तुलनात्मक विश्लेषण करते हुए मत दिया है कि, बराबर एवं नागार्जुनी अभिलेख, हरहा अभिलेख से दृत प्राचीन है। अधिकांश इतिहासविदों की धारणा है कि, मौखरी वंश के प्रथम नरेश यज्ञवर्मा ने पाँचवी शताब्दी में गया के आस – पास अपनी सत्ता स्थापित कर ली थी। मौखरी अपने उदयकाल में उत्तरकालीन गुप्त वंश के सामन्त रहे थे। गया राजमुद्रा के आधार डॉ0 के0पी0 जायसवाल का मानना है कि, मौखरी तीसरी शताब्दी ई0पू0 मैं मौर्यकाल के शासनकाल में एक जाति संघ के रूप

में कार्यरत थे। बहुत संभव है कि प्रारंभिक समय में गया और उसके आसपास मौखरी गणतंत्रात्मक व्यवस्था के रूप में कायम थे।

2.4 उत्पत्ति, आदिपुरूष एवं जाति

मौखरियों उत्पत्ति, आदिपुरूष एवं जाति के बारे में साहित्यिक एवं पुरातात्विक साक्ष्यों से प्रकाश पड़ता है। कैयट (कय्यट) एवं वामन की साहित्य रचनाओं से विदित है कि, मौखरी, मुखर नामक आदि पुरूष की संतान थे। बाण ने हर्षचरित में मौखरियों को 'मुखरवंश' एवं कादम्बरी में 'मौखरीवंश' लिखा है। हरहा अभिलेख में मौखरी वंश के लिए ''मुखरा'' अंकित है। गुजरात अभिलेख में मौखरी वंश का के 'मौखर' अंकित मिला है। वहीं बराबर की गुहा के अभिलेखों में मौखरीवंश का राजा अनन्तवर्मा स्वयं अपने कुल के लिए ''मौखरिणाम् कुलम्'' शब्द का प्रयोग करता है।

उक्त साहित्यिक एवं पुरातात्विक साक्ष्यों का विश्लेषण करने के बाद इतिहासविदों की धारणा है कि, मौखरीवंश का आदिपुरूष 'मुखर' था और उसी के नाम इस वंश का नाम मौखरी पड़ा। मौखरियों की जाति के बारे में भी विद्वानों ने अपने–अपने विचार दिये है – डॉ0 के. पी. जायसवाल का मत है कि, मौखरी, वैश्य जाति के थे। जायसवाल कहते है कि, बिहारप्रान्त के गया जिले की रहने वाली मौहरी जाति के लोग भौखरियों के पूर्वज थे। वर्तमान भौहरी वैश्यजातीय है, अतः भौखरी भी वैश्य थे। निहाररंजन रे एवं सी0वी0 वैद्य का हर्षचरित के वर्णन के आधार पर मत है कि भौखरी चन्द्रवंशीय थे। हर्षचरित में वर्गीत है कि, पुष्यभूमि एवं मुखर के वंशों की ख्याति संपूर्ण जगत् में सूर्य और चन्द्रवंशों की तरह है। अतः निहारंजन रे एवं सी0वी0 वैद्य का मत है कि– भौखरी चन्द्रवंशीय हुए। निहारंजन रे एवं सी0वी0 वैद्य के मत का खण्डन इतिहासकारों ने विभिन्न तर्को के आधार पर किया है, अतः यह मत स्वीकार्य नहीं है।

भौखरी वंश के राजाओं के नाम के अंत में 'वर्मन' शब्द लगे होने के आधार पर इतिहासविदों ने इन्हें 'क्षत्रिय' माना है। इतिहासकारों का मत है कि प्राचीनकाल में भारत में क्षत्रिय जाति के लोगों के नामों के बाद में 'वर्धन' शब्द जुड़ा हुआ मिलता है, अतः भौखरी वंश भी 'क्षत्रिय वंश' था। हरहा अभिलेख से विदित हाता है कि भौखरी वंश की उत्पत्ति वैवस्त मनु के वंशज राजा अश्वपति से हुई थी। हरहा अभिलेख के इस साक्ष्य से तो भौखरी सूर्यवंशी क्षत्रिय प्रमाणित होते हैं। जाति के प्रश्न पर अधिकांश इतिहासकारों का मत है कि, भौखरी सूर्यवंशीय क्षत्रिय थे।

2.4.1 गया के भौखरी

गया के भौखरी वंश का संस्थापक यज्ञवर्मा था। गया से कनिंघम को जो राजमुद्रा मिली है, उसको आधार बनाते हुए डॉ0 के0पी0 जायसवाल ने लिखा है कि, भौखरी, मौर्यवंश के समकालीन थे। मौर्यो के समय में तीसरी –चौथी शताब्दी ई0पू0 में भौखरी एक जाति संघ के रूप में विद्यमान थे। वर्तमान बिहार प्रान्त के गया जिले के आसपास के भौगोलिक क्षेत्र में भौखरियों की राजनीति एक गणतंत्रात्मक व्यवस्था के रूप में रही होगी। शक्तिशाली मौर्यो के समक्ष भौखरी सिर नहीं उठा सके होगें और एक क्षत्रिय संघ के रूप में संगठित रहे होंगे। कालान्तर में पाँचवी–छठवीं शताब्दी में अनुकूल परिस्थिति उत्पन्न होने के कारण भौखरियों का गया के राजवंश के रूप में उदय हुआ होगा। गया के भौखरियों की राजधानी गया ही रही होगी।

गया के भौखरियों की अभिलेखीय सूचना आधुनिक बिहार प्रान्त में बराबर एवं नागार्जुनी गुफाओं पर अंकित अभिलेखों से मिलती है। बराबर एवं नागार्जुनी गुहालेखों में गया के भौखरी राजवंश क तीन शासकों के नाम मिलते हैं– यज्ञवर्मा, शार्दूलवर्मा, अनन्तवर्मा। गया के भौखरी राजवंश की राजनीतिक

एवं सांस्कृति उपलब्धियों के बारे में हमें कोई सूचना नहीं मिलती हे। अतः यह कहना कठिन है कि, गया के भौखरियां का राजनीतिक स्वरूप क्या था? उनका राजनैतक व्यवहार कैसा था? आदि। ऐसा प्रतीत होता है कि गया के भौखरी, गुप्त शासकों के सामन्त रहे होगें। पाँचवी–छठवी शताब्दी में इनके उदय के समय उत्तर भारत में महान गुप्त साम्राज्य शासनरत् था।

डॉ0 निहार रंजन रे ने लिखा है कि गया के भौखरी, कन्नौज के भौखरियों के सामन्त थे। किन्तु अधिकांश इतिहासविद् गया के भौखरियों को गुप्तों का सामन्त बताते हैं। गया के भौखरियों के शासक शार्दूलवर्मा को बराबर एवं नागार्जुनी गुहा लेखों में सामन्त चूड़ामणि की उपाधि से विभूषित किया गया है। अतः इससे यह तो स्पष्ट हो जाता है कि, गया के भौखरियों ने अपनी स्वतंत्र सत्ता स्थापित नहीं कर पायी होगी। वे एक शक्तिशाली सामन्त की अवस्था में ही रहे होगें। यह तथ्य भी उल्लेखनीय है कि, गया के भौखरियों का कन्नौज के भौखरियों से क्या संबंध था? इसकी कोई जानकारी अभी तक किसी साक्ष्य से प्रगट नहीं हो पायी है।

गया के भौखरी वंश के संस्थापक यज्ञवर्मा धार्मिक प्रवृत्ति का शासक प्रतीत होता है। यज्ञवर्मा ने अनेक यज्ञ कराये होगें जैसा कि उसकी उपाधि 'इष्टसमृद्धमहिमा' से विदित होता है। ऐसा प्रतीत होता है कि, यज्ञवर्मा वैदिक धर्म का अवलम्बि था। यज्ञवर्मा को क्षत्रिय राजाओं का उपदेशक (क्षत्रस्थितेर्देशिकः) कहा गया है। इससे प्रतीत होता है कि, यज्ञवर्मा ने अनेक क्षत्रिय राजाओं को अपनी बात मानने के लिए बाध्य किया होगा। वस्तुतः यह शब्द यज्ञवर्मा का एक शक्ति के रूप में उभरने का प्रतीक है।

गया के भौखरी वंश का तीसरा और अंतिम ज्ञात वंशज अनन्तवर्मा था। यह शार्दूलवर्मा का पुत्र था। अनन्तवर्मा एक शक्तिद्वीज शासक प्रतीत होता है। अभिलेखों में अनन्तवर्मा के लिए 'नृप' शब्द प्रयुक्त हुआ है। इससे प्रतीत होता है कि अनन्तवर्मा के काल में गया के भौखरी पतन की ओर अग्रसित हो गये थे। इतिहासविदों की धारणा है कि, गया के भौखरियों की शक्ति को उत्तरकालीन गुप्त शासकों ने कुचल दिया होगा। अतः गया के भौखरी उत्तरकालीन गुप्तवंश के उदय की भेंट चढ़ गये।

2.4.2 कान्यकुब्ज के भौखरी

कान्यकुब्ज के भौखरी, भौखरियों की मुख्य शाखा या सबसे अधिक प्रभावशाली शाखा का प्रतीत होती है। इस शाखा का प्रथम एवं संस्थापक नरेश हरिवर्मा था। इसकी राजधानी कान्यकुब्ज ही थी। कान्यकुब्ज के भौखरियों के विषय में आसीरगढ़ ताम्र मुद्रा, देववरनाक अभिलेख एवं हर्षचरित से सूचना मिलती है। कान्यकुब्ज के भौखरी वंश के सात शासकों की जानकारी हमें मिलती है, इनमें हरिवर्मा पहला एवं ग्रहवर्मा अंतिम शासक था। असीरगढ़ ताम्रमुद्राभिलेख से हमें पाँच भौखरी राजाओं की सूचना मिलती है। हरिवर्मा, आदित्यवर्मा, ईश्वरवर्मा, ईशानवर्मा एवं सर्ववर्मा असीरगढ़ ताम्रमुद्रा भौखरी नरेश सर्ववर्मा के शासनकाल की भौखरियों के छठवें शासक अवन्तिवर्मा की सूचना देवबरनाक अभिलेख से मिलती है। हरिषचरित से भौखरियों के अंतिम शासक ग्रहवर्मा की सूचना मिलती है।

कान्यकुब्ज के भौखरियों में पहले तीन शासकों के लिए अभिलेखों में महाराज की उपाधि मिलती है, इससे इतिहासविदों का मानना है कि, पहले तीन शासक हरिवर्मा, आदित्य वर्मा एवं ईश्वरवर्मा सामन्त थे। ये शासक महान् गुप्तवंश के अधीन सामन्त रहे होगें। कान्यकुब्ज भौखरी वंश के चौथे शासक ईश्वर वर्मा ने अपनी स्वतंत्रता घोषित करके महाराजाधिराज की उपाधि धारण की । इस प्रकार ईश्वरवर्मा कान्यकुब्ज के भौखरी वंश का प्रथम स्वतंत्र शासक था। कान्यकुब्ज के भौखरी वंश के सभी अभिलेख एवं मुद्राएँ (सिक्के) आधुनिक उत्तरप्रदेश से ही मिले हैं। इस आधार पर इतिहासविदों की धारणा है कि, कान्यकुब्ज के भौखरियों का उत्कर्ष उत्तर प्रदेश में ही हुआ होगा। डॉ0आर0एस0 त्रिपाठी का मत है कि, कान्यकुब्ज के भौखरी वंश का उत्कर्ष पाँचवी शताब्दी के अंतिम चरण में हुआ था।

2.4.2.1 हरिवर्मा

हरिवर्मा कान्यकुब्ज के भौखरी वंश का संस्थापक प्रथम पुरूष था। हरिवर्मा ने अपनी शक्ति से तत्कालीन समय में कान्यकुब्ज में अपने वंश की स्थापना की है। अभिलेखों में उसे महाराजा हरिवर्मा कहा गया है। इससे प्रतीत होता है कि, वह सामन्त था। इतिहासविद् हरिवर्मा को 'गुप्त वंश' के अधीन सामन्त मानते हैं। लेकिन जो भी हो इतना तो तय है कि हरिवर्मा व्यक्तिगत रूप से एक शक्तिशाली शासक रहा होगा। उसने तत्कालीन समय में अनेक छोटी–छोटी शक्तियाँ जब अपने राजवंश की स्थापना के लिए संघर्ष थी, तब अपनी तलवार के बल पर कान्यकुब्ज में एक क्षेत्रिय सत्ता की स्थापना की और अपने को स्वतंत्र शासक न घोषित करते हुए गुप्त साम्राज्य के अधीन कार्य करने का निश्चय किया होगा। असीरगढ़ ताम्र राजमुद्रा से हरिवर्मा की शक्ति और सामर्थ्य का ज्ञान होता है। असीरगढ़ राजमुद्रा में अंकित है कि हरिवर्मा ने अपने शौर्य और प्रेम से अनेक नरेशों (राजाओं) को अपने अधीन कर लिया था तथा हरिवर्मा की ख्याति चारों समुद्रों के पार पहुँच गयी थी। हरहा अभिलेख में हरिवर्मा को ज्वालामुख कहा गया है। इतना तो तय है कि हरिवर्मा एक सामन्त था, जिकी उपाधि माहराजा की ही थी, तब तो ये विवरण निश्चित रूप से अनुकूल नहीं है। किन्तु फिर भी बहुत संभव है कि हरिवर्मा ने रणभूमि में अपने स्वामी गुप्तवंश के शासकों के साथ शौर्य प्रदर्शन करके वीरता की कीर्ति अर्जित की हो। यह सब मात्र संभावना ही है।

2.4.2.2 आदित्यवर्मा

आदित्यवर्मा कान्यकुब्ज के भौखरी वंश का दूसरा शासक बना। यह हरिवर्मा का पुत्र था। आदित्यवर्मा के बारे में असीरगढ़ राजमुद्रा, हरहा अभिलेख, जौनपुर अभिलेख आदि से सूचना मिलती है। असीरगढ़ राजमुद्रा में आदित्यवर्मा की माता का नाम भट्टारिकादेवी जयस्वामिनी अंकित है। आदित्यवर्मा के शासनकाल की सबसे बड़ी उपलब्धि उसका उत्तरकालीन गुप्तवंश के साथ वैवाहिक संबंध स्थापित करना था। डॉ0आर0सी0 त्रिपाठी का मत है कि, आदित्यवर्मा ने हर्षगुप्ता के साथ विवाह किया। यह हर्ष गुप्ता उत्तरकालीन गुप्तवंश के हर्षगुप्त की बहिन प्रतीत होती है। इस वैवाहिक संबंध से कान्यकुब्ज के भौखरी वंश को एक शक्तिशाली वंश के रूप में आगे बढ़ने में सहायता मिली होगी। साथ ही, यह तो स्पष्ट हो जाता है कि, शक्तिशाली उत्तरकालीन गुप्त वंश के शासक ने अपनी बहिन की शादी भौखरी वंश में करके मैत्री संबंध स्थापित किये। यह भौखरियों के महत्व को भी प्रमाणित करता है। यह कि, भौखरी शक्ति तेजी से बढ़ रही थी और इसी कारण उत्तर कालीन गुप्त वंश के शासकों ने इनके साथ वैवाहिक संबंध स्थापित करके कूटनीतिक कदम उठाया होगा। इतना तो तय है कि, आदित्य वर्मा के समय भौखरी वंश की शक्ति और साधनों के साथ ही, कीर्ति भी बड़ी होगी। तभी तो हरहा अभिलेख आदित्यवर्मा के अनेक यज्ञों का उल्लेख करता है। जौनपुर अभिलेख में अंकित है कि ईश्वर वर्मा के किसी पूर्वज ने यज्ञों द्वारा पुण्य अर्जित किया। इतिहासविदों का मत है कि, यह पूर्वज आदित्यवर्मा था। इस प्रकार स्पष्ट है कि, आदित्यवर्मा ने भौखरी वंश की यश और कीर्ति को एक सामन्त शासक के रूप में बढ़ाया।

2.4.2.3 ईश्वरवर्मा

ईश्वरर्मा भौखरी वंश का तीसरा शासक था। यह आदित्यवर्मा का पुत्र था। ईश्वरवर्मा के शासनकाल की सूचना जौनपुर अभिलेख असीरगढ़ ताम्र राजमुद्रा, हरहा अभिलेख से मिलती है। जौनपुर अभिलेख ईश्वरर्मा के राज्यकाल की विस्तृत सूचना देता है। ईश्वरवर्मा ने भी उत्तरकालीन गुप्तवंश के साथ

वैवाहिक संबंध स्थापित किया। नवोदित भौखरी वंश और उत्तरकालीन गुप्तवंश क साथ वैवाहिक संबंधों की कूटनीति से दोनों वंशों के मध्य मैत्री संबंध स्थापित हो गये। इससे भौखरियों और उत्तरकालीन गुप्तवंश में आपस में संघर्ष के स्थान पर सहयोग की भावना प्रगट हुई होगी। असीरगढ़ ताम्र राजमुद्रा में ईश्वर वर्मा की पत्नी का नाम उपगुप्ता अंकित है। अतः ईश्वरर्मा का विवाह उत्तर कालीन गुप्तवंश की राजकुमारी उपगुप्ता के साथ हुआ था। जौनपुर अभिलेख ईश्वरवर्मा की सैन्य विजयों का उल्लेख है। इस अभिलेख अनेक भाग टूट गये हैं। इसमें वर्णित है –

कृपानुराग – शमित – क्रूरागमोपदद्रवैर्
लोकानन्द करैर्गुणैर्गुणर्वताम् को नाम
अधिष्ठितां क्षितिभुजां सिंहेन सिंहासनम्
धारामार्गविनिर्गताग्निकणिका
..... दम विन्ध्याद्रेः प्रतिरन्ध्रपतिना
शंका परेणासितं याते रैवतकाचलम्

अर्थात् इसके (ईश्वरवर्मा) भ्य से आंन्ध्रपति विन्ध्याचल के रन्ध्र – प्रतिरन्ध्र में शरण ग्रहण करने के लिए गया। इसने रैवतक पर्वत (सौराष्ट्र) तक अपना नाम किया। अभिलेख में उल्लेखित धारामार्गविनिर्गताग्निकणिका शब्द अंकित है। इस शब्द के अर्थ और व्याख्या में व्यापक मतभेद इतिहासविदों में है। फ्लीट का मत है कि, धारा के उल्लेख से तात्पर्य धारानगरी से है। डॉ0 आर0 एस0 त्रिपाठी का मत है कि, धारा नरेश ने ईश्वरवर्मा पर आक्रमण किया था। डॉ0 आर0 जी0 बसाक एवं डॉ0 डी0 सी0 सरकार का मत है कि, धारा से यहाँ तलवार की धार का अर्थ है। अर्थानुसार भौखरी ईश्वरवर्मा की तलवार की धार से चिन्गारियाँ (अग्नि कणिकायें) निकलती थीं। डॉ0 श्रीराम गोयल का मत है कि, अग्निकणिका का अर्थ यशोधर्मा से है, ईश्वरवर्मा ने यशोधर्मा को परास्त किया था।

इतिहासविदों ने उक्त मत को तर्कों के आधार पर निराधार सिद्ध किया है– फ्लीट और आर0 एस0 त्रिपाठी का धारा से साम्य धारा नगरी करना उचित नहीं है, क्योंकि धारा नगरी को भोज परमार (1000 – 1055 ई0) ने बसाया था। दोनों के काल में बहुत अंतर है। इस प्रकार धारानगरी भौखरियों के समय अस्तित्व में नहीं थी। धारा नगरी भौखरी के अंत हो जाने के बाद लगभग 500 वर्षो बाद अस्तित्व में आयी। डॉ0 बसाउ एवं डी0सी0 सरकार का साम्य भी उचित नहीं है। श्री रामगोयल का यह तर्क की यशोधर्मा को परास्त किया था, उसके कोई साक्ष्य नहीं हैं। इतिहासकारों का मत है कि, धारामार्ग शब्द का प्रयोग जौनपुर अभिलेख में प्रतिकात्मक रूप में प्रयुक्त हुआ है। कौटिल्य के 'अर्थशास्त्र' में धारा और मार्ग शब्दों का प्रयोग हुआ है, जिनका शाब्दिक अर्थ घोड़े की गति से मार्ग पर चलना।

जौनपुर अभिलेख में उल्लेखित 'धारामार्ग विनिर्गताग्निकणिकाः' का शाब्दिक अर्थ वस्तुतः यह है कि, तीव्रगति से घोड़ों की चाल से घोड़े के पैरों के खुरों से निकलती आग की चिन्गारियों से है। कुल मिलाकर इसका सीधा तात्पर्य किसी सैन्य अभियान से है। डॉ0 वी0सी0 पाण्डेय ने जौनपुर एवं हरहा अभिलेखों के आधार पर निष्कर्ष निकाला है कि शूलिकों ने अपने बहुसंख्यक घोड़ों से भौखरियों के विरूद्ध सैनिक अभियान किया होगा। जौनपुर अभिलेख के विन्ध, विन्ध्यांचल रैवतर्क के उल्लेख पर डॉ0 आर0के0 मुकर्जी का मत है कि, ईश्वर वर्मा अत्यधिक शक्तिशाली हो गया था और उसने इस पर विजय हासिलकर ली थी। इन विजयों के फलस्वरूप उसने अपनी स्वतंत्रता घोषित कर दी थी। किन्तु इतिहासविदों का मत है कि ईश्वर वर्मा सामन्त था, उसने यह विजयें रक्षार्थ की होगी न कि राज्य विस्तार के रूप में। अतः ईश्वरवर्मा एक शक्तिशाली भौखरी नरेश था।

2.4.2.4 ईशान वर्मा

ईशान वर्मा भौखरी वंश का सबसे प्रतापी एवं शक्तिशाली शासक था। इसने भौखरी वंश को एक शक्ति के रूप में प्रतिस्थापित करके स्वतंत्र राजवंश के रूप में प्रतिष्ठित किया। ईशानवर्मा भौखरी राजवंश प्रथम शासक था, जिसने 'महाराजाधिराज' की महान् उपाधि धारण करके अपनी स्वतंत्र सत्ता की घोषणा की। ईशानवर्मा, ईश्वरवर्मा एवं उपगुप्ता की संतान था। ईशानवर्मा के शासनकाल की सफलताओं का उल्लेख हरहा अभिलेख विस्तृत रूप से करता है। हरहा अभिलेख में अंकित है –

जित्वान्ध्राधिपति सहस्रगणित त्रेधाक्षरवारणं
व्यावल्गन्नियुतातिसंख्यतुरगान् भड़क्त्वारणे शलिकान्
कृत्वा चायतिमोचितस्थलभुवौ गौड़ान् समुद्राश्रय
नध्यासिष्टनतक्षितीशचरणः सिंहासनं यो जिती।

इस हरहा अभिलेख में ईशानवर्मा को आन्ध्रोः शूलिकों और समुद्रतटीय गौडत्र को परास्त करने का श्रेय दिया है। इससे पूर्व हरहा अभिलेख में अंकित है कि जब ईशानवर्मा सिंहासनारूढ़ हुआ तब पृथ्वी टूटी हुई नौका के समान थी ईशानवर्मा ने अपने गुणों रूपी रस्सियों से इसे बचाया। यह विवरण भौखरी राजवंश पर आये किसी संकट की ओर प्रतिकात्मक ढंग से इशारा करता है। इतिहासकारों का मत है कि, ईश्वरवर्मा के शासनकाल के अंत में और ईशानवर्मा के शासक बनते समय शत्रुओं ने भौखरी वंश के लिए संकट उत्पन्न कर दिया था। ईशानवर्मा ने अपनी तलवार की शक्ति से इस संकट से भौखरीवंश का उद्धार किया होगा।

हरहा अभिलेख में ईशानवर्मा को आन्ध्रों पर विजय का श्रेय दिया गया है। डॉ0 डी0सी0 सरकार एवं डॉ0 एच0सी0 राय चौधरी की धारणा है कि, आन्ध्र का राजा माधववर्मा भौखरी ईशानवर्मा के समकक्ष था। माधव वर्मा, विष्णु कुण्डन राजवंश का शासक था। इसी माधववर्मा का ईशानवर्मा ने परास्त किया था। हरहा अभिलेख में शूलिकों के बारे में डॉ0 आर0 के0 मुकर्जी एवं डॉ0 एच0 सी0 राय चौधरी का मत है कि – शूलिक चालुक्य थे। डॉ0 सुधाकर चट्टोपाध्याय इन्हें हूण तथा फादर हेरार चोल मानते हैं। किन्तु शूलिकों के साम्य के बारे में डॉ0 आर0 एस0 त्रिपाठी का मत ठीक प्रतीत होता है। वृहद्संहिता तथा मार्कण्डेयपुराण के साक्ष्यों के आधार पर त्रिपाठी ने लिखा है कि, शूलिक जाति कलिंग, विदर्भ एवं चेदि के दक्षिण – पश्चिम में रहती थी।

हरहा अभिलेख में ईशानवर्मा को समुद्रतटीय गौड़ पर विजय का उल्लेख है। डॉ0 वी0सी0 पाण्डेय ने अफसढ़ अभिलेख, फरीदपुर एवं मल्लसरूल ताम्रपत्रों के आधार पर कहा है कि, गौड़ नरेश पर विजय ईशानवर्मा एवं उत्तरकालीन गुप्त वंशीय राजा जीवित गुप्त प्रथम ने संयुक्त रूप से की थी। बंगाल में गोपचन्द्र, धर्मादित्य एवं समाचारदेव ने गुप्त साम्राज्य के विरूद्ध स्वतंत्र सत्ता की घोषणा कर दी थी। जीवितगुप्त प्रथम एवं ईशानवर्मा ने गुप्त सम्राट की ओर से सामन्त के रूप गौड़ों को कुचला था। ईशानवर्मा ने अपनी सफलताओं से उत्साहित होकर गुप्त साम्राज्य के विरूद्ध भौखरी राजवंश की स्वतंत्र सत्ता प्रतिष्ठित कर दी और अपने नाम के सिक्के जारी किये। भौखरियों द्वारा अपनी स्वाधीनता की घोषणा से और भौखरियों की शक्ति और प्रतिष्ठा से अन्य राजवंशों के शासकों के कान खड़े होना स्वाभाविक था। भौखरियों की बढ़ती शक्ति और प्रतिष्ठा को उत्तरकालीन गुप्तवंश के शासक कुमारगुप्त ने चुनौती दी।

ज्ञातव्य रहे कि, भौखरियों एवं उत्तरकालीन गुप्तवंश के मध्य मैत्रीपूर्ण वैवाहिक संबंध थे। भौखरी नरेश आदित्यवर्मा का विवाह उत्तरकालीन गुप्तवंश की हर्षागुप्ता तथा ईश्वरवर्मा का उपगुप्ता के साथ हुआ था। भौखरी नरेश ईशानवर्मा की माँ उत्तरकालीन गुप्तवंश की राजकुमारी उपगुप्ता थी। किन्तु उत्तरकालीन गुप्तवंशीय कुमारगुप्त ने अपने वंश की रक्षार्थ भौखरियों पर आक्रमण कर दिया। अफसढ़ अभिलेख में लिखा है कि, एक भयंकर युद्ध में कुमारगुप्त ने ईशानवर्मा को करारी मात दी। कुमारगुप्त ने

भौखरियों से उत्तर–पूर्व के अनेक क्षेत्र छीन लिये थे। इनमें मगध और प्रयाग (इलाहाबाद) जैसे प्रतिष्ठित स्थान भी सम्मिलित थे। ईशानवर्मा वैदिक ब्राह्मण धर्म को मानने वाला था। उसने बौद्धिक धर्म सम्मत कार्य किये। ईशानवर्मा के शासनकाल में वेदों की प्रतिष्ठा को स्थापित किया गया। ईशानवर्मा ने अपने शासनकाल में वर्णाश्रय धर्म को भी स्थापित किया।

2.4.2.5 सर्ववर्मा

ईशानवर्मा की मृत्यु के बाद उसका पुत्र सर्ववर्मा भौखरी राजसिंहासन पर बैठा। सर्ववर्मा एक शक्तिशाली एवं प्रतापी नरेश था। उसने अपनी तलवार की शक्ति से अनेक विजयें प्राप्त की थी। असीरगढ़ राजमुद्रा में सर्ववर्मा को 'महाराजाधिराज' की उपाधि से विभूषित किया गया है। सर्ववर्मा के शासनकाल में भौखरियों उत्तर कालीन गुप्तवंश एवं हूणों से संघर्ष करना पड़ा। सर्ववर्मा ने सर्वप्रथम उत्तरकालीन गुप्तवंश के शासक द्वारा अपने पिता ईशानवर्मा की हार का बदला लेना और अपने खोये हुए क्षेत्रों को वापस प्राप्त करने की योजना बनायी। अफसढ़ अभिलेख से ज्ञात होता है कि, सर्ववर्मा ने अपने समकालीन उत्तरकालीन गुप्त वंशीय दामोदर गुप्त को युद्ध में परास्त किया। यह युद्ध इतना भयंकर था कि उत्तरकालीन गुप्त शासक दामोदर गुप्त जैसा शक्तिशाली शासक भी भौखरी सेना का सामना करते हुए युद्ध भूमि मं मारा गया। सर्ववर्मा ने उत्तरकालीन गुप्तवंश के शासकों से अपने पिता की हार का केवल बदला ही नहीं लिया अपितु उत्तरकालीन गुप्तवंशीय शासकों द्वारा अधिकृत एक बड़े भौगोलिक क्षेत्र को भी हस्तगत कर लिया था। सर्ववर्मा द्वारा सूर्य भगवान के नाम से ग्राम दान देने की पुष्टि देववर्मा के अभिलेख करता है। यह ग्राम दान मगध के भौगोलिक क्षेत्र में दिया गया था सर्ववर्मा के हूणों के साथ संघर्ष के भी प्रमाण मिलते हैं। अफसढ़ अभिलेख से पुष्टि होती है कि सर्ववर्मा ने हूणों को परास्त किया।

अफसढ़ अभिलेख में अंकित है कि सर्ववर्मा की गजसेना ने हूणों की सेना का युद्ध में नाश कर दिया इससे स्पष्ट है कि भौखरी सर्ववर्मा एवं हूणों के मध्य हाथियों की सेना का भीषण युद्ध हुआ होगा। इस संदर्भ में डॉ0 आर0एस0 त्रिपाठी का मत है कि, सर्ववर्मा ने हूणों पर आक्रमण वर्धनवंश की सेना के साथ वर्धन वंश की रक्षार्थ किया होगा। इस प्रकार सर्ववर्मा भौखरियों का एक प्रतापी शासक सिद्ध हुआ। उसके काल में भौखरी राजवंश की यश और कीर्ति चतुर्दिक फैल गयी थी।

2.4.2.6 अवन्तिवर्मा

सर्ववर्मा के बाद अवन्तिवर्मा कान्यकुब्ज के भौखरी वंश का शासक था। अवन्ति वर्मा, सर्ववर्मा का पुत्र था। अवन्तिवर्मा के इतिहास के मुख्य स्त्रोत है– देववरनाक अभिलेख नालन्दा मुद्रलेख, भितौरा मुद्राभाण्ड (फैजाबाद), हर्षचरित, विशाखदत्त (मुद्राराक्षस) आदि। अवन्तिवर्मा भी भौखरी वंश का प्रतापी राजा था। उसने अपने शासनकाल में भौखरी राजवंश का अग्रणी बनाये रखा। बाणभट्ट ने हर्षचरित में लिखा है कि, अवन्तिवर्मा का भौखरी वंश सभी राजवंशों में अग्रणी है तथा शिव के समान आदरणीय एवं पूज्यनीय है। अवन्तिवर्मा ने अपने शासनकाल में हूणों की बढ़ती शक्ति का भी सामना किया था। विशाखदत्त रचित मुद्राराक्षस में अवन्तिवर्मा को (हूणों) से त्रस्त पृथ्वी की रक्षा का श्रेय दिया गया है। इससे स्पष्ट है कि अवन्तिवर्मा ने हूणों को संघर्ष में परास्त किया। अवन्तिवर्मा ने अपने शासनकाल विद्या और विद्वानों को अपना आश्रय प्रदान किया। बाणभट्ट ने कादम्बरी में लिखा है कि, भौखरियों ने मेरे गुरू भत्सु (भर्व) को राजदरबार में सम्मान प्रदान किया। इससे पता लगता है कि, अवन्तिवर्मा के शासनकाल में ही बाणभट्ट के गुरू भत्सु (भर्व) राजदरबार में रहे होगें। इतिहासकार तो विशाखदत्त का आश्रयदाता भी अवन्तिवर्मा को मानते हैं। विद्वानों को मुद्राराक्षस की कतिपय प्रतियों के 'भरत वाक्य' में चन्द्रगुप्त के

स्थान पर रन्तिवर्मा या अवन्तिवर्मा का नाम मिला है। अतः विद्वानों का मत है कि, विशाखदत्त को अवन्तिवर्मा ने अपना संरक्षण दिया हागा। नालन्दा मुद्रालेख में अवन्तिवर्मा को महाराजाधिराज की उपाधि से विभूषित किया गया है।

2.4.2.7 गृहवर्मा

गृहवर्मा, अवन्तिवर्मा का सबसे बड़ा पुत्र था और अवन्तिवर्मा की मृत्यु के बाद भौखरी सिंहासन पर बैठा। गृहवर्मा भौखरी वंश का अंतिम शक्तिशाली शासक था। गृहवर्मा के इतिहास का एक मात्र स्त्रोत बाणभट्ट की हर्षचरित है। गृहवर्मा के शासनकाल की सबसे बड़ी घटना उसका वर्धनवंश के साथ वैवाहिक संबंध स्थापित करना था। गृहवर्मा ने अपनी स्थिति को सुदृढ़ बनाने के लिए वर्धन वंश के शासक प्रभाकर वर्धन के पास उनकी पुत्री राज्यश्री के साथ विवाह करने का प्रस्ताव भेजा। प्रभाकर वर्धन ने इस प्रस्ताव को सहर्ष स्वीकार कर लिया। राज्यश्री एवं गृहवर्मा का विवाह 'वर्धनवंश' की राजधानी थानेश्वर में हुआ। डॉ0 बी0पी0 सिन्हा एवं डॉ0 आर0एस0 त्रिपाठी का मत है कि, राज्यश्री एवं गृहवर्मा के विवाह के अवसर पर गृहवर्मा का पिता अवन्तिवर्मा उपस्थित नहीं था। इस समय अवन्तिवर्मा की मृत्यु हो चुकी थी।

अतः राज्यश्री से विवाह करने का विचार गृहवर्मा ने स्वंय लिया होगा। वस्तुतः यह वैवाहिक संबंध राजनीतिक एवं कूटनीतिक पृष्ठभूमि पर आधारित था। इस विवा संबंध से भौखरी वंश और वर्धनवंश में मैत्री संबंध स्थापित हो गये। जिससे दोनों राजवंशों को तत्कालीन समय में शक्ति प्राप्त हुई होगी। भौखरीवंश को इस विवाह से उत्तरकालीन गुप्तवंश एवं गौड़ नरेश शशांक से सुरक्षा मिल सकी। हर्षचरित में वर्णित है कि, वर्धनवंश के प्रभाकर वर्धन ने मालवा के उत्तरकालीन गुप्तां का नाश किया था अतः मालवा के उत्तरकालीन गुप्त वर्धन वंश एवं भौखरियों दोनों के शत्रु थे। भौखरियों एवं वर्धनवंश की मित्रता से चिन्ति होकर मालवा के उत्तरकालीन गुप्तों ने गौड़ नरेश शशांक से मित्रता कर ली।

इस प्रकार तत्कालीन राजनीतिक पृष्ठभूमि पर दो धड़े स्पष्ट रूप से देखे गये। एक धड़ा था भौखरियों एवं वर्धनों का तथा दूसरा धड़ा गौड़ एवं मालवा राज देवगुप्त का था। अतः यह निष्कर्ष निकालना गलत नहीं होगा कि, दोनों धड़े आपस में एक–दूसरे के प्रति सशक्ति रहते होगे तथा अवसर मिलने पर एक दूसरे के प्रति आक्रामक भी होते रहे होगें। हर्षचरित से ज्ञात है कि, गौड़ नरेश शशांक की सह पर मालवाराज देवगुप्त ने कान्यकुब्ज पर आक्रमण करके गृहवर्मा की हत्या कर दी थी। गृहवर्मा की हत्या के साथ ही, भौखरीवंश का पटाक्षेप हो गया।

वस्तुनिष्ठ प्रश्न

1. मौखरियों का उल्लेख है–

(अ) अर्थशास्त्र (ब) ऋग्वेद (स) उपनिषद **(द) अष्टाध्यायी**

2. गया राजमुद्रा किसको मिली थी –

(अ) फ्लीट (ब) आर0 सी0 मजूमदार **(स) कनिंघम** (द) ग्राण्ड डफ

3. राजस्थान के बड़वा से अभिलेख मिला था–

(अ) फ्लीट (ब) कनिंघम ((ब) आर0 सी0 मजूमदार **(द) ए0 एस0 अल्तेकर**

4. गया के मौखरी वंश का संस्थापक था–

(अ) यज्ञवर्मा (ब) सूर्यवर्मा (स) शार्दुलवर्मा (द) अनंतवर्मा

5. बराबर एवं नागर्जुनम गुहा लेखों में किसकों ''सामन्त चूड़ामणि'' कहा गया है–

(अ) यज्ञवर्मा (ब) सूर्यवर्मा **(स) शार्दुलवर्मा** (द) अनंतवर्मा

6. कान्यकुब्ज के मौखरी वंश का संस्थापक था –

(अ) यज्ञवर्मा **(ब) हरिवर्मा** (स) आदित्यवर्मा (द) सर्ववर्मा

7. कान्यकुब्ज के मौखरी वंश के किस शासक ने सर्वप्रथम महाराजाधिराज की उपाधि धारण की –

(अ) हरिवर्मा **(ब) ईश्वरवर्मा** (स) आदित्यवर्मा (द) गृहवर्मा

8. उत्तरकालीन गुप्त वंशीय राजकुमारी 'हर्षागुप्ता' का किसके साथ विवाह हुआ था –

(अ) हरिवर्मा (ब) ईश्वरवर्मा **(स) आदित्यवर्मा** (द) गृहवर्मा

9. बाणभट्ट के गुरू भत्सु (भर्व) को संरक्षण दिया।

(अ) हरिवर्मा (ब) ईश्वरवर्मा (स) आदित्यवर्मा (द) अवन्तिवर्मा

10. वर्धन वंश की राजकुमारी राज्यश्री का विवाह हुआ था–

(अ) हरिवर्मा (ब) ईश्वरवर्मा (स) आदित्यवर्मा **(द) गृहवर्मा**

नीचे लिखे प्रश्नों के उत्तर दीजिए

प्रश्न–1 मौखरियों कम प्रचीनता पर संक्षिप्त नोट लिखो?

प्रश्न–2 मौखरियों की उत्पत्ति, आदि पुरूष एवं जाति के बारे में आप क्या जानते हो ?

प्रश्न–3 गया के मौखरियों पर संक्षिप्त नोट लिखो?

प्रश्न–6 गृहवर्मा के शासनकाल पर संक्षिप्त नोट लिखो।

2.5 तकनीकी शब्दावली

5. कान्यकुब्ज – कन्नौज
6. अवलम्बी – अनुयायी
7. ताम्रभिलेख – ताँबे के पत्रक पर लिखे अभिलेख
8. राजमुद्राभिलेख – राज्य मुद्रा (Seal) पर लिखे अभिलेख
9. मुद्राभाण्ड – मुद्रा (सिक्कों) से भरा मटका
10. अग्रसित – बढ़ना
11. पटाक्षेप – अंत होना

2.6 संदर्भ ग्रंथ सूची

1. Aravamuthan, T.G. – The Kaveri, the Maukharis and the Sangam Age, Madras, 1937
2. Basak, R.G. - History of Kananj, 1937
3. Pires, E. - The Maukharis, 1934
4. मजूमदार, आर0 सी0 – दि क्लासिकल एज, बम्बई, 1954

पुसालकर, ए0 डी0 (सम्पा0) – दि एज ऑफ इम्पीरियल कन्नौज, बम्बई 1955

5. त्रिपाठी, आर० एस० – प्राचीन भारत का इतिहास, बनारस, 1998
6. त्रिपाठी, आर0 एस0 – हिस्ट्री ऑफ कन्नौज, वाराणसी, 1937

2.7 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. मजूमदार, रमेशचन्द्र – प्राचीन भारत, दिल्ली, 1973
2. महाजन, विद्याधर – प्राचीन भारत का इतिहास, नई दिल्ली, 2008
3. पाण्डेय, विमल चन्द्र – प्राचीन भारत का राजनीतिक तथा सांस्कृतिक इतिहास, भाग 2, इलाहाबाद, 1998
4. ओमप्रकाश – प्राचीन भारत का इतिहास, नई दिल्ली, 1986
5. श्रीवास्तव, के० सी० – प्राचीन भारत का इतिहास एवं संस्कृति, इलाहबाद, 20076

2.8 निबंधात्मक प्रश्न

प्रश्न 1– ईश्वरवर्मा के शासनकाल का विस्तृत विवरण दमजिये।

प्रश्न 2– मौखरियों कम प्राचमनता, उत्पत्ति, आदि पुरूष एवं जाति के बारे में विस्तृत विवरण दीजिये।

ब्लॉक तीन

इकाई तीनः हर्षकालीन भारत

3.1 प्रस्तावना

3.2 उद्देश्य

3.3 वर्धन राजवंश का इतिहास

3.3.1 महाराजाधिराज प्रभाकरवर्धन

3.3.2 महाराजाधिराज राज्यवर्धन

3.3.3 हर्षवर्धन

3.3.3.1 हर्ष की दिग्विजय

3.3.3.2 शशांक से संघर्ष

3.3.3.3 बलभी विजय

3.3.3.4 सिन्ध पर आक्रमण

3.3.3.5 नेपाल से संबंध

3.3.3.6 पुलकेशी द्वितीय से युद्ध

3.3.3.7 कांगोद विजय

3.4 हर्ष का शासन प्रबंध

3.4.1 मंत्रिपरिषद

3.4.2 पदाधिकारी

3.4.3 प्रान्तीय प्रशासन

3.4.4 राजस्व प्रशासन

3.4.5 न्याय प्रशासन

3.4.6 सैन्य प्रशासन

3.5 हर्ष की सांस्कृतिक उपलब्धियाँ

3.5.1 कन्नौज का सम्मेलन

3.5.2 प्रयाग सभा

3.6 साहित्यिक उपलब्धियाँ

3.7 सारांश

3.8 तकनीकी शब्दावली

3.9 संदर्भ ग्रंथ सूची

3.11 निबंधात्मक प्रश्न

3.10 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

3.1 प्रस्तावना

शक्तिशाली गुप्तकाल के पराभव के बाद भारत के राजनैतिक पटल पर अनेक छोटी – छोटी शक्तियों ने अपने क्षेत्रीय राज्यों का निर्माण कर लिया था, इनमें से अनेक शक्तियाँ प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से गुप्त साम्राज्य के अधीन रहीं थी। गुप्तों के पराभव के बाद उत्तर भारत में शक्ति – शून्यता का लाभ थानेश्वर के वर्धन वंश ने उठाया। वर्धन वंश ने अपना साम्राज्य थानेश्वर से बढ़ाकर सारे उत्तर भारत में स्थापित किया। थानेश्वर श्रीकण्ठ जनपद के अंतर्गत आता था, जोकि वर्तमान में हरियाणा प्रान्त के करनाल जिले का थानेश्वर नामक स्थान है। प्रारम्भ में वर्धन वंश का राज्य का भौगोलिक क्षेत्र वर्तमान के हरियाणा और दिल्ली के चतुर्दिक फैला हुआ था।

3.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के उद्देश्य निम्नलिखित है –

- विद्यार्थी वर्धन वंश का इतिहास समझ सकेगें।
- विद्यार्थी हर्षवर्धन के इतिहास को जान सकेंगे ।
- विद्यार्थी हर्षकालीन भारत के इतिहास को समझेंगें।
- विद्यार्थी थानेश्वर एवं कन्नौज का ऐतिहासिक महत्व समझ सकेगें।
- विद्यार्थी राजनैतिक संघर्ष को समझ सकेगें।
- विद्यार्थी प्रयाग एवं कन्नौज की धर्म सभाओं को जान सकेंगे।
- विद्यार्थी हर्षवर्धन की सांस्कृतिक उपलब्धियों को समझ सकेगें।
- विद्यार्थी हर्षवर्धन की दिग्विजय को जान सकेंगे।

3.3 वर्धन राजवंश का इतिहास

वर्धन वंश का संस्थापक पुष्यभूति को माना जाता है। बाणभट्ट ने हर्षचरित में 'पुष्पभूति' को वर्धन वंश का संस्थापक बताया है। बाणभट्ट ने पुष्पभूति को *भूपाल* और *राजा* कहा है, जिससे उसके स्वतंत्र शासक के स्थान पर एक सामन्त होने को प्रमाणित करता है किन्तु हर्षवर्धन के अभिलेखों में पुष्यभूति (पुष्पभूति) का कोई उल्लेख नहीं है अभिलेखों में नरवर्धन का नाम सर्वप्रथम आया है। इस प्रकार वर्धन वंश का प्रमाणिक प्रथम पुरूष नरवर्धन ही था और संभवतः उसके अंत के वर्धन नामाक्षर से ही इस वंश का नाम 'वर्धन वंश' पड़ा। वर्धन राजवंश का राजनैतिक विकास सामन्त शासकों के रूप में हुआ। वर्धन राजवंश समय–समय पर गुप्तों, हूणों और मौखरियों के सामन्त रहे।

वर्धन राजवंश की जातीय उत्पत्ति के संबंध में अधिकांशतः इतिहासविदों की धारणा है कि, वर्धन राजवंश वैश्य जातीय था। चायनीज धर्मयात्री ह्वेनसांग (श्वान्–च्वांग) ने हर्ष वर्धन को वैश्य (फी–शे) तथा आर्यमंजुश्रीमूलकल्प में राज्यवर्धन और हर्ष वर्धन को 'वैश्यावृत्ति' वाला कहा है। अतः वर्धनवंश को 'वैश्य जाति' का मानना उचित है।

थानेश्वर के वर्धन राजवंश में छः प्रमाणिक राजाओं के नाम मिलते हैं। हर्ष के बांसखेड़ा एवं मधुवन ताम्राभिलेखों तथा सोनीपत एवं नालन्दा राजमुद्राभिलेखों में वर्धन राजवंश के चार शासकों एवं उनकी रानियों के नाम मिलते हैं। प्रथम शासक नरवर्धन था, उसकी पत्नी का नाम वज्रिणी देवी था। द्वितीय शासक राज्यवर्धन (प्रथम) तथा उसकी पत्नि का नाम अप्सरादेवी, तृतीय शासक आदित्यवर्धन एवं उसकी पत्नी का नाम महासेनगुप्त देवी चतुर्थ शासक प्रभाकरवर्धन एवं उसकी पत्नी नाम यशोमती देवी मिलता है। प्रथम तीन शासकों के राजनैतिक एवं प्रशासनिक कार्यो की प्रमाणिक जानकारी हमें किसी भी ऐतिहासिक स्रोत से नहीं मिलती है। प्रथम तीन शासकों के अभिलेखों में महाराज कहा गया है। इतिहासविदों की धारणा है कि, ये प्रारंभिक शासक गुप्तो, हूणों एवं मौखरियों के सामन्त रहे होंगे। अतः स्पष्ट है कि, प्रारंभिक तीन शासकों का शासनाधिकार वर्तमान हरियाणा, दिल्ली एवं पंजाब प्रदेशों के उन भौगोलिक क्षेत्रों पर रहा होगा, जो राजधानी थानेश्वर के चतुर्दिक रहे होगें। वर्धन राजवंश के इन तीनों शासकों का शासनकाल इतिहासविदों ने लगभग 500 – 580 ई0 के मध्य रखा है।

3.3.1 महाराजाधिराज प्रभाकरवर्धन

प्रभाकरवर्धन, वर्धनराजवंश का प्रथम स्वतंत्र एवं सम्प्रभु शासक था। उसने वर्धन राजवंश के थानेश्वर के आसपास फैले छोटे से राज्य को अपनी विजयों से एक साम्राज्य में परिवर्तित कर दिया था। इसी कारण प्रभाकरवर्धन को महाराजाधिराज एवं परमभट्टारक जैसी उपाधियों से विभूषित किया गया था। बाणभट्ट ने हर्षचरित में लिखा है कि, प्रभाकरवर्धन 'प्रतापशील' नाम से भी प्रसिद्ध था। 'प्रतापशील' नामक शासक की मुद्राएँ भितौरा मुद्राभाण्ड से भी मिली है। बहुत संभव है कि ये मुद्राएँ प्रभाकरवर्धन की ही हों। प्रभाकरवर्धन की विजयों का उल्लेख बाणभट्ट ने हर्षचरित के चतुर्थ उच्छवास में करते हुए लिखा है कि, *''हूणहरिणकेशरी सिन्धुराजज्वरः गुर्जरप्रजागरः गांधाराधिपगंधद्विपकूटह स्तज्वरः लाटपाटवपाटच्चरः मालवलक्ष्मीलतापरशुः प्रभाकरवर्द्धनों नाम राजाधिराजः।''* अर्थात् महाराजाधिराज प्रभाकर वर्धन हूण रूपी हिरनों के लिए सिंह के समान, सिन्धु नरेश के लिए ज्वर के समान, गुर्जनों की नींद हराम करने वाला, गंधार के राजा रूपी हाथी के लिए घातक महामारी के समान लाटों की कुशलता (चालाकी) को नष्ट करने वाला, मालवा राज्य की राजलक्ष्मी रूपी लता (बेल) के लिए कुल्हाड़ी (कुठार) के समान था।

हर्षचरित् का यह वर्णन निश्चित रूप से प्रभाकरवर्धन की शक्ति और प्रभाव के चतुर्दिक फैलने का प्रमाण है। किन्तु उक्त काव्यात्मक आख्यान से ऐसा प्रतीत होता है कि, तत्कालीन समय में प्रभाकरवर्धन

के समक्ष कोई शक्तिशाली शासक नहीं था, वहीं इतिहासविद् आर० के० मुकर्जी एवं सी० वी० वैद्य की धारणा है कि, प्रभाकरवर्धन के लिए यह अतिश्योक्ति पूर्ण विवरण है, इसे प्रमाणित नहीं माना जा सकता है। क्योंकि सिन्धु, गन्धार, लाट तो प्रभाकरवर्धन से अधिक शक्तिशाली उसके पुत्र हर्षवर्धन के भी अधीन नहीं थे। बहुत संभव है कि, इन सभी राज्यों से प्रभाकरवर्धन की प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष शत्रुता हो या ये राज्य प्रभाकरवर्धन की बढ़ती शक्ति से भयभीत रहे हों। प्रभाकरवर्धन के समय गुर्जरों का राज्य आधुनिक गुजरात एवं राजस्थान (राजपूताना) में फैला हुआ था। गुर्जरों की एक शाखा भृगुकच्छ (भड़ौच, गुजरात) में शासनरत थी। बहुत संभव है कि, इसी शाखा के किसी शासक से प्रभाकरवर्धन का युद्ध हुआ हो। जहाँ तक मालवा का प्रश्न है तो पश्चिमी मालवा पर तो प्रभाकरवर्धन का प्रत्यक्ष अधिकार था। पूर्वी मालवा पर उत्तरगुप्तकालीन शासकों का अधिकार था, जिनसे वर्धनवंश के मधुर संबंध थे, बहुत संभव है कि, उज्जयिनी के प्रश्न पर उत्तरगुप्तों की सहायता प्रभाकरवर्धन ने की हो। इसी ओर हर्षचरित् का संकेत हो।

प्रभाकरवर्धन का हूणों से संघर्ष के प्रमाणित उल्लेख प्राप्त है। तत्कालीन समय में उत्तर–पश्चिमी भारत पर हूणों का आधिपत्य था और वे लगातार अपने साम्राज्य सीमा बढ़ाने के प्रयास में वर्धन राज्य की सीमाओं पर आक्रमण करते रहते थे। प्रभाकरवर्धन से हूणों का संघर्ष अवश्य हुआ होगा और प्रभाकरवर्धन ने हूणों को परास्त किया होगा। प्रभाकरवर्धन के अंतिम समय में लगभग 604 ई0 में पुनः हूणों ने वर्धन साम्राज्य पर आक्रमण किया। हर्षचरित में वर्णित है कि, प्रभाकरवर्धन ने एक बड़ी सेना के साथ राज्यवर्धन एवं हर्षवर्धन को हूणों को कुचलने के लिए भेजा। राज्यवर्धन और हूणों के बीच बड़ा ही भयंकर हुआ। जिसमें राज्यवर्धन के शरीर में बाणों से अनेक घाव हो गये थे। राज्यवर्धन ने संभवतः हूणों को गांधार तक खदेड़ दिया था। इसी बीच राज्यवर्धन को पिता प्रभाकरवर्धन की मृत्यु और माता यशोमति के सती हो जाने की सूचना मिली और राज्यवर्धन राजधानी थानेश्वर लौट आया। प्रभाकरवर्धन की मृत्यु के समय उसका राजनीतिक प्रभाव आसपास के राज्यों पर स्थापित हो चुका था। जैसाकि, हर्ष के मधुवन और बाँसखेड़ा के अभिलेखों में लिखा है कि प्रभाकरवर्धन का यश चारों समुद्रों के पार तक व्याप्त हो गया था और दूसरे राजा उसके सम्मुख प्रेम या शक्ति से झुकते थे।

3.3.2 महाराजाधिराज राज्यवर्धन

प्रभाकरवर्धन की मृत्यु के बाद लगभग 605 ई0 में राज्यवर्धन, वर्धन राजवंश का अगला शासक बना। प्रभाकरवर्धन की मृत्यु के समय हर्षवर्धन युद्ध क्षेत्र से वापस लौटकर थानेश्वर आ गया था। राज्यवर्धन की अनुपस्थिति एवं तत्कालीन संकटकालीन परिस्थिति के कारण राजसिंहासन रिक्त नहीं रखा जा सकता था, संभवतः इसी कारण प्रभाकरवर्धन ने हर्ष को राजसिंहासन पर बैठने को कहा। किन्तु हर्ष ने राजसिंहासन को ग्रहण करने से इंकार कर दिया और राज्यवर्धन के आने का इंतजार करने को कहा। राज्यवर्धन ने राजधानी थानेश्वर लौटने के बाद राजसिंहासन पर बैठने से मना कर दिया और हर्षवर्धन को सत्ता संभालने के लिए कहा। डॉ0 वी0 एस0 पाठक का मानना है कि, राज्यवर्धन स्वभावतः निवृत्तिपरक था। वंशपरम्परा के विपरीत वह बौद्ध धर्मानुयायी भी हो गया था और राज्य शासन के प्रपंचों में पड़ना नहीं चाहता था। उसकी इच्छा थी कि, राजगद्दी हर्ष को दे तथा स्वयं संन्यासी होकर किसी आश्रम में चला जाय। किन्तु हर्ष ने भी बड़ी ही विनम्रता के साथ राजगद्दी पर बैठने से मना कर दिया।

इसी बीच कन्नौज के मौंखरी नरेश ग्रहवर्मा (जो राज्यवर्धन का बहनोई था) की मालवराज द्वारा हत्या और बहिन राज्यश्री के कन्नौज में कैद होने की सूचना थानेश्वर पहुँची। ऐसी विकट परिस्थिति में राज्यवर्धन को राजसिंहासन पर बैठना स्वीकार करना पड़ा। राज्यवर्धन एक बड़ी सेना लेकर कन्नौज की ओर बड़ा और शीघ्र ही उसने कन्नौज पर आधिपत्य स्थापित कर लिया। मधुवन एवं बाँसखेड़ा अभिलेखों

में वर्णित है कि, राज्यवर्धन ने देवगुप्त आदि राजाओं को परास्त किया। उक्त उल्लेख के आधार पर डॉ0 सुधाकर चट्टोपाध्याय का मत है कि, राज्यवर्धन ने अकेले देवगुप्त को नहीं अपितु शत्रुओं के एक संघ को परास्त किया था। इतिहासविदों की धारणा है कि, यह देवगुप्त मालवा का राजा देवगुप्त था, जिसे राज्यवर्धन ने मार डाला। देवगुप्त का मित्र गौड़राज शशांक था, जिसे उखाड़ फैंकने का प्रण राज्यवर्धन ने लिया। किन्तु शशांक ने प्रत्यक्ष युद्ध न करके कूटनीति से राज्यवर्धन को प्रभावित कर लिया और अपने शिविर में बुलाकर धोखे से उसकी हत्या कर दी।

3.3.3 हर्षवर्धन

हर्षवर्धन, वर्धन राजवंश का सर्वाधिक शक्तिशाली और प्रतापी राजा था। गुप्तकाल के पतन के बाद राजनैतिक विखण्डन को एक सूत्र में पिरोने का कार्य भी हर्षवर्धन ने किया। हर्ष ने अपनी तलवार के बल पर उत्तर भारत में एक राजनैतिक एकता स्थापित कर दी थी। हर्षवर्धन लगभग 16 वर्ष की आयु में 606 ई0 में वर्धन राजवंश का शासक बना। इस अवसर पर हर्षवर्धन नया संवतः चलाया। जो *हर्ष संवत्* के नाम से जाना जाता है। हर्षवर्धन का जन्म लगभग 590–91 ई0 में थानेश्वर में हुआ था। उसके पिता का नाम महाराजा प्रभाकरवर्धन तथा माता का नाम यशोमति था। हर्षवर्धन के बड़े भाई का नाम राज्यवर्धन तथा बहिन राज्यश्री (मौखरी नरेश ग्रहवर्मा की पत्नी) थी। हर्ष बड़ी ही विकट परिस्थितियों में सिंहासन संभाला। माता–पिता की मृत्यु, भाई राज्यवर्धन तथा बहनोई कन्नौज नरेश ग्रहवर्मा की हत्या एवं बहिन राज्यश्री का बंदी ग्रह में कैद होना आदि घटनाओं ने हर्ष के हृदय को विचलित कर दिया था, इसका मार्मिक विवरण बाणभट्ट ने हर्षचरित् में दिया है।

हर्षवर्धन ने सिंहासन पर बैठते ही राज्यवर्धन के हत्यारे गौड़ नरेश शशांक को मारने का संकल्प लिया। हर्ष ने एक बड़ी सेना के साथ कन्नौज की ओर प्रस्थान किया। किन्तु रास्ते में ही हर्ष को सूचना मिली कि, शशांक ने राज्यश्री को कैद से मुक्त कर दिया है और राज्यश्री विंध्य के जंगलों में चली गयी है। अब हर्ष का उद्देश्य पहले राज्य को खोजना हो गया। विंध्य के जंगलों में राज्यश्री को खोजते हुए संयोगवश ग्रहवर्मा के बयपन के दोस्त दिवाकर मित्र जो बौद्ध भिक्षु बनकर विंध्य के जंगलों में रह रहा था के सहयोग से हर्षवर्धन ने राज्यश्री को खोज लिया। जब राज्यश्री मिली तब वह अपनी जीवनलीला समाप्त करने के लिए अग्नि में प्रवेश कर रही थी। किसी भी प्रकार से हर्ष और दिवाकरमित्र राज्यश्री को समझाने में सफल रहे। अब हर्ष ने आगे बढ़कर कन्नौज पर आधिपत्य स्थापित कर लिया। हर्ष अपनी बहिन राज्यश्री के साथ कन्नौज का शासन करने लगा। चीनी स्त्रोत शे–किअ–फेंग–चे से सभी ज्ञात है कि हर्ष अपनी बहिन की सहायता से कन्नौज का शासन संचालन कर रहा था। अब हर्ष थानेश्वर और कन्नौज दोनों का शासक बन गया था, कालान्तर में हर्षवर्धन ने थानेश्वर के स्थान पर कन्नौज को ही अपनी राजधानी बनाया और समस्त उपलब्धियाँ कन्नौज के शासक के रूप में ही प्राप्त की।

3.3.3.1 हर्ष की दिग्विजय

ह्वेनसांन ने तो हर्ष को कन्नौज का ही शासक कहा है। हर्ष ने शासक बनने के बाद अपनी दिग्विजय की योजना बनायी। हर्ष की दिग्विजय के बारे में ह्वेनसांग की जीवनी सि–यु–कि में वर्णित है कि हर्ष ने शासक बनते ही एक बड़ी सेना के साथ पंचभारतों की विजय की और अपने साम्राज्य की सीमाओं का विस्तार किया। इस कथन के संदर्भ में इतिहासकारों डॉ0 आर0 एस0 त्रिपाठी, डॉ0 आर0 के0 मुकर्जी, गौरीशंकर चटर्जी आदि का मानना है कि पंचभारतों से तात्पर्य सारस्वत (पंजाब), कान्यकुब्ज (कन्नौज), गौड़, मिथिला एवं उत्कल (उड़ीसा) के भौगोलिक क्षेत्रों से हैं, जो वस्तुतः उत्तर भारत के ब्राह्मणों की

पाँच शाखाओं के केन्द्र थे। डॉ0 विशुद्धानन्द पाठक का मानना है कि, ह्वेनसांग का उक्त कथन प्राचीन भारतीय प्रशस्तिकारों के कथनों से समानता रखता है जिसमें किसी शासक को सभी द्वीपों का विजेता, पूर्वी समुद्र से पश्चिमी समुद्र तक का शासक बताया जाता है। अपनी उत्तर भारतीय दिग्विजय में हर्ष ने अनेक शासकों को परास्त किया।

3.3.3.2 शशांक से संघर्ष

हर्ष के समकालीन उत्तर भारतीय शासकों में सर्वाधिक शक्तिशाली शासक गौड़ नरेश शशांक था। शशांक ने तत्कालीन समय में कन्नौज में हस्तक्षेप करके हर्ष के बहनोई ग्रहवर्मा को मरबा कर कन्नौज के मौखरी राज्य का अंत कर दिया था और शशांक ने ही चालाकी से हर्ष के बड़े भाई राज्यवर्धन की हत्या कर दी थी। हर्ष ने शशांक के विरूद्ध सख्त रूख अपनाते हुए प्रतिज्ञा की कि मैं पृथ्वी से गौड़ों को मिटा दूंगा। हर्षचरित में वर्णित है कि, शशांक को कुचलने के लिए हर्ष एक बड़ी सेना के साथ अगे बड़ा। इसी बीच कामरूप नरेश भास्करवर्मा ने हर्ष से मित्रता करने का प्रस्ताव हर्ष के पास भेजा। भास्कर वर्मा भी शशांक की शक्ति से त्रस्त था, उसे भी शशांक से अपने राज्य की रक्षा का संकट उत्पन्न हो रहा था। अतः अब हर्ष और भास्करवर्मा की संयुक्त सैनाओं ने शशांक से संघर्ष किया। ऐतिहासिक साक्ष्यों से विदित होता है कि, हर्ष एवं भास्करवर्मा की संयुक्त सेवाओं ने अनेक वर्षो के अन्वरत युद्धों के द्वारा भी शशांक की शक्ति को पूर्णतः नष्ट नहीं कर पाया था। शशांक अपने जीवन के अंत समय तक शासक बना रहा। किन्तु यह सत्य है कि, उसकी काफी शक्ति क्षीण हो गयी थी और अंत में वह एक सामन्त के तौर पर अपनी प्राकृतिक मौत मरा।

पुरातात्विक साक्ष्यों 619–20 ई0 के गंजाम अभिलेख एवं 629 ई0 के भिदनापुर अभिलेख से क्रमशः शशांक की राजनैतिक पराकाष्ठा और क्षीणता का पता चलता है। 619–20 ई0 के एक गंजाम अभिलेख में वर्णित है कि, 'शैलोद्भव वंशीय माधवराज महाराजाधिराज श्री शशांक के अधीन सामन्त के रूप में राज्य कर रहा था।'' इस अभिलेख से ज्ञात हो जाता है कि शशांक अपनी राजनैतिक पराकाष्ठा पर था, वह महाराजाधिराज की पदवी के साथ अनेक सामन्तों को अपने अधीन करके पूर्ण शक्ति से राजसत्ता का उपभोग कर रहा था। इस प्रकार साक्ष्यों से स्पष्ट है कि, हर्ष के अनेक प्रयासों के बाबजूद शशांक 619–20 ई0 तक उन्मुक्त रूप से शासनकर रहा था। 629 ई0 के मिदनापुर के एक ताम्रपत्राभिलेख शशांक की शक्ति के क्षीण होने के प्रमाण मिलते हैं। इस लेख में शशांक को 'श्री' लिखा है– ''श्री शशांक महीपातिचतुर्जलधिमेखलाम्''। 619 ई0 के गंजाम अभिलेख में शशांक को महाराजाधिराज एवं 629 ई0 के मिदनापुर अभिलेख में श्री कहा गया है।

अतः स्पष्ट है कि, हर्ष ने 619–20 ई0 और 629 ई0 के मध्य शशांक की शक्ति को कुचल दिया था और शशांक एक सामंत के रूप में हर्ष के अधीन आ गया था। हर्ष की शशांक पर विजय की पुष्टि आर्यमंजुश्रीमूलकल्प और शे–किअ–फैंग–चे करते हैं। आर्यमंजुश्रीमूलकल्प में लिखा है कि, हर्ष ने शशांक को पराजित किया। वहीं शे–किअ–फैंग–चे नामक चीनी साक्ष्य का कहना है कि, हर्ष ने अपने मित्र भास्करवर्मा के साथ मिलकर शशांक और उसके सहयोगियों को नष्ट कर दिया था। भास्करवर्मा के निधानपुर अभिलेख में भी वर्णित है कि सैकड़ों राजाओं के विजेता ने कर्णसुवर्ण पर अधिकार कर लिया था। डॉ0 सुधाकर चट्टोपाध्याय का मत है कि भास्करवर्मा और हर्ष ने मिलकर यह विजय प्राप्त की होगी। इस प्रकार स्पष्ट है कि, हर्ष ने शशांक को हराने का प्रण पूर्ण किया और शशांक की शक्ति कोकुचलकर एक सामन्त के रूप में अपने अधीन शासन करने दिया। शशांक की मृत्यु कब हुई इसकी उचित साक्ष्यों से हमारे पास कोई सूचना नहीं है किन्तु जब 637 ई0 में ह्वेनसांग पूर्वी भारत की यात्रा पर गया तब तक शशांक मर चुका था। अतः ह्वेनसांग से हमें इतना ज्ञात है कि 637 ई0 के पहले शशांक मर गया था।

3.3.3.3 बलभी विजय

बलभी आधुनिक गुजरात राज्य में स्थित है। बलभी राज्य पश्चिमी मालवा और गुजरात के क्षेत्रों में फैला हुआ था। हर्ष ने बलभी विजय के दौरान बलभी नरेश ध्रुवसेन द्वितीय को परास्त किया था। हर्ष की ध्रुवसेन द्वितीय पर विजय की सूचना देते हुए जयभट्ट तृतीय के 706 ई0 के नौसारी (वर्तमान गुजरात राज्य के बड़ौदा जिले में स्थित) अभिलेख में लिखा है कि हर्ष ने हर्ष ने बलभी नरेश ध्रुवसेन द्वितीय को पराजित किया और ध्रुवसेन द्वितीय ने भागकर गुर्जर नरेश दद्द द्वितीय के दरबार में शरण ली। गुर्जर नरेश दद्द द्वितीय का राज्य गुजरात के भड़ौच में स्थित था। गुर्जर नरेश दद्द द्वितीय पुलकेशिन द्वितीय का सामन्त था। गुर्जर नरेश दद्द द्वितीय ध्रुवसन द्वितीय एवं पुलकेशिन द्वितीय के एक साथ होने का भय अब हर्ष को सताने लगा। अतः हर्ष ने दूरगामी कदम उठाते हुए बलभी नरेश धुवसेन द्वितीय से मित्रता स्थापित कर ली और अपनी पुत्री का विवाह ध्रुवसेन द्वितीय के साथ कर दिया। इस प्रकार हर्ष ने अपनी सीमा दक्षिण–पश्चिम की ओर से सुरक्षित कर ली। बलभी और हर्ष के मध्य यह संघर्ष संभवतः 630 – 640 ई0 के मध्य कभी हुआ होगा। ह्वेनसांग भी बलभी नरेश का हर्ष का दामाद बताता है।

3.3.3.4 सिन्ध पर आक्रमण

हर्ष के सिन्ध पर आक्रमण की सूचना बाणभट्ट हर्षचरित में देता है। संभवतः हर्ष ने बलभी पर आक्रमण के समय ही सिन्ध पर आक्रमण किया होगा। बाणभट्ट ने हर्षचरित में लिखा है – ''अत्र पुरूषोत्तमेन सिन्धुराजं प्रमथ्य लक्ष्मीरात्मीकृता''। अर्थात् हर्ष ने सिन्धु देश के राजा को हराकर उसकी राज्यलक्ष्मी को हड़प लिया। विद्धानों का मत है कि हर्ष ने सिन्धु को हराया होगा किन्तु सिन्धु पर प्रत्यक्ष आधिपत्य स्थापित नहीं कर सका था। बहुत संभव है कि, हर्ष, सिन्धु नरेश से अपने प्रति श्रृद्धा प्रकट करने और करढ़ बनने पर उसका राज्य वापस लौटा दिया हो। वस्तुतः यह हर्ष का शक्ति प्रदर्शन मात्र था, जिसमें सिन्धु नरेश ने हर्ष के प्रति अपनी प्रतिबद्धता प्रगट की थी। बाण तो हर्षचरित में उसके पिता प्रभाकर वर्धन को भी सिन्धु का विजेता बताता है। बहुत संभव है कि, हर्ष के सिंहासन रोहण के समय की राजनैतिक परिस्थितियों के कारण सिन्धु नरेश ने अपनी स्वतंत्रता घोषित कर दी हो।

3.3.3.5 नेपाल से संबंध

नेपाल से हर्ष के संबंधों के बारे में बाणभट्ट की हर्षचरित में वर्णन से पता चलता है– ''अत्र परमेश्वरेण तुषारशैलभुवो दुर्गायाः गृहीतः करः''। उक्त लेख के आधार पर इतिहासविदों की धारणा है कि, हर्ष ने बर्फीले पर्वतीय क्षेत्रों से कर संग्रह किया। सर्वप्रथम बूल्हर मत दिया कि, उक्त संदर्भ हर्ष की नेपाल विजय का संकेत देता है। फ्लीट, स्मिथ, वैद्य, भगवानलाल इन्द्रजी आदि का भी मानना है कि, हर्ष ने नेपाल की विजय की थी। डॉ0 राधाकुमुद मुकर्जी का भी मानना है कि, नेपाल पर हर्ष का आधिपत्य था, नेपाल ने हर्ष संवत् चलता था, जो हर्ष के प्रभाव का घोतक है। डॉ0 आर0एस0 त्रिपाठी का मानना है कि, हर्षचरित का उक्त वर्णन हर्ष के किसी शक्तिशाली पहाड़ी राज्य की कन्या के साथ विवाह की ओर संकेत है। वस्तुतः हर्ष के नेपाल के संबंधों के बारे में इतिहासकारों में मतैक्य नहीं है।

3.3.3.6 पुलकेशी द्वितीय से युद्ध

हर्ष ने अपने पराक्रम से उत्तर भारत में अपने साम्राज्य को अजेय बना दिया था। उत्तर भारत में हर्ष को चुनौती देने वाला कोई नहीं था, अतः हर्ष ने अपने साम्राज्य विस्तार की योजना बनाते हुए दक्षिण भारत पर प्रसार का निश्चय किया। चूँकि इस समय हर्ष अपने पराक्रम और प्रतिष्ठा के चर्म पर था, इसीलिए उसके अंदर अति आत्मविश्वास और अहंकार का भाव भी उत्पन्न हो गया थ। जिसकी पुष्टि ह्वेनसांग की जीवनी से होती है। हर्ष ने एक बड़ी सेना एकत्र की और अपने साम्राज्य के चुनिंदा नायकों, सामन्तों को एकत्रित करके, स्वयं सेना का नेतृत्व करते हुए दक्षिण भारत के स्वामी चालुक्य नरेश पुलशिन, द्वितीय पर आक्रमण कर दिया। किन्तु युद्ध में हर्ष की पराजय हुई। जिसकी पुष्टि ह्वेनसांग और पुलकेशी के ऐहोल (अहिहोड़) अभिलेख से होती है। 634 ई0 के पुलकेशी के के ऐहोल अभिलेख में वर्णित है कि ''जिसके चरणकमलों पर अपरिमित समृद्धि से युक्त सामन्तों की सेना नतमस्तक होती थी, उस हर्ष का हर्ष (आनन्द) युद्ध में मारे हुए हाथियों का वीभत्स दृश्य देखकर विचलित हो गया।'' हर्ष और पुलकेशी के मध्य यह युद्ध नर्मदा नदी के किनारे कहीं हुआ होगा।

डॉ0 वी0 ए0 स्मिथ ने लिखा है कि ''पुलकेशी द्वितीय ने नर्मदा के दर्रो को इतनी अच्छी तरह से सुरक्षित रखा कि हर्ष को अपमानित होकर वापस लौटना पड़ा और नर्मदा नदी को सीमा स्वीकारना पड़ा।'' हर्ष और पुलकेशी के मध्य यह युद्ध की तिथि के बारे में इतिहासकारों को डॉ0 ए0एस0 अल्तेकर मत अधिक स्वीकार्य है। अल्तेकर ने युद्ध की तिथि 630–634 ई0 के मध्य रखी है। उनके तर्क हैं कि– 630 ई0 के पुलकेशी के लोहना अभिलेख में उसकी सैन्य विजयों का उल्लेख है किन्तु इन विजयों में हर्ष पर विजय का कोई उल्लेख नहीं है। वहीं 634 ई0 का ऐहोल अभिलेख हर्ष पर पुलकेशी की विजय का उल्लेख करता है। अतः स्पष्ट है कि पुलकेशी एवं हर्ष के मध्य 630–634 ई0 के मध्य कभी युद्ध हुआ होगा।

3.3.3.7 कांगोद विजय

हर्ष ने अपने जीवन की संभवतः अंतिम विजय कांगोद पर की थी। कांगोद आधुनिक उड़ीसा राज्य का गंजाय में था। ऐहोल (अहिहोड़) अभिलेख कांगोद और कोसम पर पुलकेशी द्वितीय का आधिपत्य बताता है। इस प्रकार हर्ष ने कांगोद पर 643 ई0 में विजय प्राप्त करके पुलकेशी से हुई अपनी हार का बदला ले लिया।

3.3.4 हर्ष का शासन प्रबंध

हर्ष का शासन प्रबंध राजतंत्रात्मक था। राज्य की समस्त शक्ति का प्रधान एवं स्त्रोत राजा ही होता था। राजा पृथ्वी पर देवता का साकार रूप माना जाता था। हर्ष चरित में बाणभट्ट ने हर्ष को 'सभी देवताओं का सम्मिलित अवतार' बताया है। वह माराजाधिराज, परमभट्टारक, चक्रवर्ती, परमेश्वर जैसी महान् एवं दैवीय उपाधियों से विभूषित था। राजतंत्रात्मक शासन की तरह ही हर्ष भी अपने प्रशासन का सर्वोच्च अधिकारी था। वह सेना का सर्वोच्च सेनापति, न्याय का सर्वोच्च न्यायाधीश होता था। राजतंत्रात्मक शासन व्यवस्था होने पर भी हर्ष निरंकुश राजा नहीं था। उसका शासन प्राचीन भारतीय परंपराओं पर आधारित एक प्रजा वत्सल्य शासक की तरह था। हर्ष अपनी प्रजा के कुशलक्षेत्र जानने के लिए साम्राज्य का भ्रमण करता था। बासखेड़ा एवं मधुवन ताम्राभिलेखों में क्रमशः वर्धनमानकोटि और कपिथिका के जयस्कन्धवारों का वर्णन ऐसे शिवरों के रूप में है, जहाँ वह रूककर प्रजा से मिलता था। ऐसे ही एक जयस्कन्धवार 'मणितारा' में हर्ष की सर्वप्रथम भैंट बाणभट्ट से हुई थी।

ह्वेनसांग ने हर्ष के पूरे दिन को तीन भागों में बांटा है। दिन के एक भग में वह राजकाज करता था तथा दो भागों में धर्मकर्म में अपना दिन व्यतीत करता था। इस प्रकार स्पष्ट है कि, हर्ष का शासन प्रबंधन सुनिश्चित सुव्यवस्थित, श्रम साध्य नियम कायदों से चलता था। हर्ष का शासन प्रबंधन गुप्तकालीन शासन प्रणालियों पर आधारित था। वस्तुतः हर्ष ने प्रचलित गुप्तकालीन शासन पद्धति में आवश्यकतानुसार कुछ परिवर्तन करके अपना प्रशासनिक ढाँचा खड़ा किया। हर्ष कालीन प्रशासनिक इकाईयों एवं पदाधिकारियों के नाम भी गुप्तकाल के समान ही थे।

3.3.4.1 मंत्रिपरिषद

हर्ष का शासन में सलाह देने के लिए एक केन्द्रीय मंत्री परिषद थी जो समय–समय पर हर्ष को शासन संचालन में महत्वपूर्ण सलाह देती थी। इस मंत्री परिषद में सामन्त, आमात्य, प्रधानामात्य जैसे बड़े–बड़े पदाधिकारी महत्वपूर्ण विषयों पर विचार–विमर्श करके राजा को नीति–निर्धारण में सहयोग प्रदान करते थे। ह्वेनसांग एवं हर्षचरित से भी मंत्रीमण्डल के विधान का संकेत मिलता है। वस्तुतः मंत्रीमण्डल के सदस्यों ने ही हर्ष को कन्नौज के सिंहासन पर बैठने के लिए मानसिक रूप से तैयार किया था।

3.3.4.2 पदाधिकारी

केन्द्रीय प्रशासन के सुचारू संचालन हेतु अनेक पदाधिकारी होते थे। वस्तुतः हर्ष का प्रशासन एक सुव्यवस्थित नौकरशाही पर आधारित था। हर्षचरित, हर्ष के अभिलेखों एवं ह्वेनसांग के विवरण से अनेक पदाधिकारियों का ज्ञान होता है। हर्षचरित में वर्णित है कि, हर्ष का प्रशासन अनेक विभागों में विभक्त था, जिनके पदाधिकारी 'अध्यक्ष' कहलाते थे। ह्वेनसांग के विवरण से पता चलता है कि, उच्च पदाधिकारियों एवं मंत्रियों को वेतन के रूप में जागीरें प्रदान की जाती थी। मुख्य पदाधिकारी निम्नलिखित थे–

1. **महाबलाधिकृत** – यह पैदल सेना का सर्वोच्च सेनापति था। हर्ष के समय सिंहनाद सेनापति था।
2. **महासंधिविग्रहिक**– यह बहुत महत्वपूर्ण पद था, जो युद्ध और संधि से संबंधित था। यह राज्य की प्रशासनिक घोषणाओं एवं आलेखों को लिखता तथा उनका रिकॉर्ड रखता था। हर्ष के समय अवन्ति इस पद पर था।
3. **बृहदश्ववार**– यह घुड़सवार सेना का प्रधान होता था। हर्ष के समय कुन्तल घुड़सवार सेना का प्रमुख था।
4. **कटुक**– यह हाथियों की सेना का सर्वोच्च सेनापति था। हर्ष के समय स्कंदगुप्त कटुक के पद पर पदासीन था।
5. **महाक्षपटलाधिकरणाधिकृत** – यह विभाग साम्राज्य के राजस्व और भूमि का लेखा–जोखा रखता था। हर्ष के समय भान और ईश्वरगुप्त इस विभाग के प्रमुख रहे थे।
6. **महाप्रमातार**– यह राजस्व विभाग का प्रधान अधिकारी होता था। भूमि के मापन आदि कार्यो से संबंधित था। हर्ष के समय स्कंदगुप्त इसका प्रमुख था।

इनके अतिरिक्त दूतक, महासामंत, कुमारामात्य, दौस्साधनिक, उपारिक, राजस्थानीय, विषयपति, चाह भाट सेवक आदि पदाधिकारियों के नाम मिलते हैं।

3.3.4.3 प्रान्तीय प्रशासन

हर्ष का प्रशासन सुव्यवस्थित प्रशासनिक ईकाईयों में विभक्त था। प्रशासन भूक्ति (प्रांत), विषय (जिला), पाठक (तहसील) एवं ग्राम नामक प्रशासनिक ईकाईयों में विभक्त था।

(अ) भुक्ति :– हर्षकालीन प्रांतीय इकाई को भुक्ति कहा गया है। प्रांतीय प्रमुख को राष्ट्रीय, उपरिक, राजस्थानीय आदि कहा जाता था। प्रांतीय प्रमुख को हर्षचरित में 'लोकपाल' कहा गया है। प्रांतीय प्रमुख का कार्यालय 'अधिकरण' कहलाता था। इसका प्रमुख कार्य प्रांत में शांति और सुव्यवस्था कायम रखना था। हर्ष के बाँसखेड़ा एवं मधुवन अभिलेखों में क्रमशः अहिछत्र भुक्ति एवं श्रावस्ती भुक्ति का उल्लेख है। रत्नावली में कौशांबी भुक्ति का उल्लेख हुआ है।

(ब) विषय :– भुक्ति अनेक विषयों (जिलों) में विभक्त होती थी अर्थात् एक प्रांत में अनेक विषय (जिले) होते थे। विषय का सबसे बड़ा अधिकारी 'विषयपति' कहलाता था। विषयपति के कार्यालय को 'विषयाधिकरण' कहा जाता था। हर्ष के बाँसखेड़ा एवं मधुवन अभिलेखों में क्रमशः अंगदीय विषय एवं कुण्डधानी विषय का उल्लेख है।

(स) पाठक (पथक) :– विषय अनेक पाठकों (पथकों) में विभक्त थे। ये पाठक (पथक) वर्तमान की तहसीलों की तरह थे। इनका कार्य पाठकों में शान्ति और सुव्यवस्था बनाये रखना रहा होगा।

(द) ग्राम प्रशासन :– प्रशासन की सबसे छोटी इकाई ग्राम प्रशासन था। ग्राम का राजस्व भूमि एवं अन्य ग्रामीण आवश्यकताओं की पूर्ति ग्राम प्रशासन करता था। ग्राम के छोटे – मोटे झगड़े भी ग्राम प्रशासन सुलझाता था। ग्राम प्रशासन का सबसे बड़ा अधिकारी 'महत्तर' कहलाता था। ग्रामाक्षपटलिका (ग्राम का रिकॉर्ड संधारण होने वाला अधिकारी) एवं करणिकों (रिकॉर्ड लेखन कर्मचारी) भी ग्राम के प्रमुख अधिकारी थे। हर्ष के मधुवन अभिलेख में ग्राम प्रशासनिक इकाई सोमकुण्डा का उल्लेख है।

3.3.4.4 राजस्व प्रशासन

हर्ष का राजस्व प्रशासन सुव्यवस्थित था। प्रजा उसके राजस्व निर्धारण एवं राजस्व प्रशासन से प्रसन्न थी। राजस्व कठोरता के साथ वसूल नहीं किया जाता था। कर व्यवस्था उदार विचारधारा की थी। हर्ष के अभिलेखों में भाग हिरण्य एवं बलि नामक तीन करों का उल्लेख मिलता है। इससे स्पष्ट है कि जनता पर करों का बोझ नहीं था। भागकर– राज्य की आय का प्रमुख साधन था भागकर, भूमि की उपज पर लगने वाला कर था, जोकि उपज का छठवाँ भाग (1/6) था। हिरण्य कर – यह संभवतः व्यापारियों से नगद में लिया जाने वाला कर था। बलि कर :संभवतः यह धार्मिक कर था। इसके अतिरिक्त तुल्यमेय– यह कर माप–तौल पर लगता था।

3.3.4.5 न्याय प्रशासन

हर्ष का न्याय प्रशासन प्राचीन भारतीय परंपराओं और लोक व्यवहार पर आधारित था। न्यायालय को अधिकरण या धर्माधिकरण कहा जाता था। न्यायाधीशों को संभवतः प्रभातार कहा जाता था। सर्वोच्च न्यायाधीश सम्राट होता था। सम्राट के नीचे प्राड़ विवाक होता था। हर्ष का दण्ड विधान अत्यंत कठोर था। राजद्रोह के लिए आजीवन कारावास, सामाजिक अपराधों के लिए अंग–भंग व देश निकाला का दण्ड दिया जाता था। हर्ष के काल में गंभीर अपराधों के लिए मृत्यु दण्ड प्रदान किया जाता था। बाणभट्ट ने हर्षचरित में लिखा है कि विशेष अवसरों पर कैदियों को मुक्ति प्रदान की जाती थी। राज्य में शांति और व्यवस्था को कायम रखने के लिए सक्षम पुलिस की व्यवस्था। दण्डिक और दण्डपाशिक नामक पुलिस अधिकारियों की व्यवस्था थी।

3.3.4.6 सैन्य प्रशासन

हर्ष एक शक्तिशाली शासक था, उसके पास विशाल सेना थी। हर्ष के पास 50 हजार पदावि, 60 हजार हस्त सेना एवं 1 लाख घुड़सवार सेना थी। बांसखेड़ा एवं मधुवन अभिलेखों से नौ सेना का भी पता चलता है। हर्ष की सेना रथ नहीं थे। सेना युद्ध में धनुष – बाण, बर्छे, भाले, ढाल तलवार, परशु आदि अस्त्र – शस्त्रों का प्रयोग किया जाता था। सर्वोच्च सेनापति सम्राट स्वयं होता था सेना के अनेक अधिकारियों के नाम हर्ष काल में मिलते हैं।

3.3.5 हर्ष की सांस्कृतिक उपलब्धियाँ

हर्ष अपने समय का महान शासक था। राजनैतिक क्षेत्र में वह सकल उत्तरापथ स्वामी था। उसने अपनी तलवार से एक बड़ा साम्राज्य खड़ा किया था। हर्ष की उपलब्धियाँ राजनैतिक क्षेत्र के साथ–साथ सांस्कृतिक क्षेत्रों में अधिक सुदृढ़ थी। डॉ0 आर0 सी0 मजूमदार का कथन है कि हर्ष ने राजनीतिक और सांस्कृतिक दोनों ही क्षेत्रों में महत्वपूर्ण उपलब्धियाँ अर्जित की थी। जितनी कुशता से वह तलवार पकड़ता था, उतनी ही कुशलता से लेखनी संभालता था। हर्ष कालीन सांस्कृतिक उपलब्धियाँ चतुर्दिक क्षेत्रों में व्याप्त थीं। डॉ0 आर0 के0 मुकर्जी का कथन है कि ''भारतीय इतिहास में हर्ष ही एक ऐसा शासक है, जिसको धार्मिक और सांस्कृतिक उद्देश्यों से थोड़े–थोड़े समय में विशाल जन सम्मेलनों को आयोजित करने का गौरव प्राप्त है।''

3.3.5.1 कन्नौज का सम्मेलन

कन्नौज का सम्मेलन हर्ष के शासनकाल की प्रमुख सांस्कृतिक उपलब्धि थी। कन्नौज की धर्म सभा उद्देश्य बौद्ध धर्म का प्रचार–प्रसार था। हर्ष ने इस धर्म सभा का सभापति ह्वेनसांग को बनाया। डॉ0 विशुद्धानंद पाठक के अनुसार, ह्वेनसांग की हर्ष से सबसे पहली भेंट उस समय हुई जब वह जंगल में अपना दरबार लगाये था। कन्नौज की इस धर्मसभा में 3000 महायान और हीनयान बौद्ध भिक्षु, 3000 ब्राह्मण और जैन तथा 1000 नालन्दा बिहार के बौद्ध विद्वान ने भाग लिया। सभा के लिए एक विशाल बिहार का निर्माण गंगा के तट पर किया गया। बुद्ध की सोने की मूर्ति एक सौ फुट ऊँचे स्तम्भ पर स्थापित की गयी। सभा प्रतिदिन भव्य जुलूस से प्रारंभ होती थी। ह्वेनसांग ने महायान बौद्ध मत के सिद्धान्तों को अपने तर्को से स्थापित कर दिया। इससे पूर्व हर्ष ने ह्वेनसांग की जान को खतरा होने के कारण घोषणा की कि, यदि कोई ह्वेनसांग को हाथ लगाऐगा या चोट पहुँचाएगा तो उसको मृत्युदण्ड दिया जायेगा तथा जो भी उसके विरूद्ध बोलेगा उसकी जीभ काट ली जायेगी।'' इस घोषणा से सभा की भावना को भारी क्षति पहुँची। यह सभा 23 दिन तक चली। जिसमें महायान बौद्ध धर्म का एक पक्षीय प्रचार हुआ।

3.3.5.2 प्रयाग सभा

हर्ष प्रत्येक पाँच वर्ष में प्रयाग में पुण्य अर्जन के लिए महान् दानोत्सव किया करता था। इसे 'महामोक्षपरिषद' कहा जाता था। ऐसे छठवीं सभा 643 ई0 में प्रयाग में हुई, जिसमें ह्वेनसांग ने हिस्सा लिया था। इस सभा में हर्ष सहित उसके 18 राजसी मित्रों के साथ ही 5 लाख से अधिक लोगों ने भाग लिया था यह सभा 75 दिनों तक चली। इस अवसर पर लोगों के रहने खाने एवं अन्य आवश्यक वस्तुओं की व्यवस्था हर्ष ने की। प्रयाग सभा का शुभारंभ भव्य जुलूस के साथ हुआ। प्रथम दिन देत के

एक टीले पर बुद्ध की प्रतिमा स्थापित की गयी। दूसरे दिन सूर्य (आदित्य) और तीसरे दिन शिव की प्रतिमा स्थापित की गयी। प्रयाग सभा में लगातार बौद्धों, ब्राह्मणों, जैनियों, विविध धर्मालम्बियों, अनाथों, गरीबों, विकलांगों आदि को स्वर्ण वस्त्र एवं अन्य वस्तुएँ दान की गयी। पाँच वर्षो से संचित राजकोष रिक्त हो गया और हर्ष ने अपने स्वयं के आभूषण और वस्त्रों को भी दान कर दिया। अंत में हर्ष ने अपनी बहिन राज्यश्री से पुराने वस्त्र माँगकर धारण किये। डॉ0 आर0एस0 त्रिपाठी ने लिखा है कि हर्ष ने व्यक्तिगत दानशीलता में विश्व का अनूठा कीर्तिमान स्थापित किया।'' डॉ0 विशुद्धानंद पाठक ने लिखा है कि ''पवित्र तीर्थ प्रयाग में पुण्यलाभ की इच्छा से किया गया हर्ष का यह सर्वस्व दोनोत्सव उसकी सर्वधर्मसम्मत की भावनाओं का सबसे बड़ा उदाहरण है।''

3.6 साहित्यिक उपलब्धियाँ

हर्ष विधानुसागी एवं साहित्य प्रेमी विद्धान शासक था। हर्ष विद्धानों को अपने दरबार में आश्रय ही नहीं दिया, अपितु स्वयं ने भी उच्चकोटि की रचनाओं का सृजन किया। इस प्रकार हर्ष को साहित्य, काव्य, अलंकारों आदि की गहरी जानकारी थी। प्रसिद्ध कवि सोड्ढल अपने ग्रंथ अवन्ति सुन्दरी कथा में हर्ष को विक्रमादित्य, मुंज, भोज की श्रेणी में रखता है। स्वयं हर्ष ने नागानंद, रत्नावली एवं प्रियदर्शिका नाटकों का संस्कृत भाषा सृजन किया। हर्ष के दरबार में प्रसिद्ध विद्वान बाणभट्ट रहता था, उसने हर्षचरित, कादम्बरी, चण्डीशतक एवं पार्वती परिणय जैसे ग्रंथों की रचना की। हर्ष के दरबार में ही मयूर भट्ट ने मयूर शतक एवं सूर्यशतक जैसी काव्य रचनाएँ लिखी। हर्ष के दरबार में जयसेन, मातंग, दिवाकर, धवल, हरिदत्त आदि विद्धानों को राजाश्रय प्रदान किया। इस प्रकार स्पष्ट है कि, हर्ष विद्या और विद्धानों का अनुरागी था।

3.8 सारांश

निःसंदेह हर्षवर्धन, वर्धन राजवंश का सर्वाधिक शक्तिशाली और प्रतापी नरेश था। शक्तिशाली गुप्त साम्राज्य के पतन के बाद भारत के राजनैतिक पटल पर शक्ति – शून्यता को भरकर, एक सशक्त राज्य की स्थापना की। राजनैतिक क्षेत्र में वह 'सकल उत्तरापथ स्वामी' था। उसने अपनी तलवार से एक बड़ा साम्राज्य खड़ा किया था। हर्ष की उपलब्धियाँ राजनैतिक क्षेत्र के साथ–साथ सांस्कृतिक क्षेत्रों में अधिक सुदृढ़ थी। स्वयं हर्ष ने नागानंद, रत्नावली एवं प्रियदर्शिका नाटकों का संस्कृत भाषा सृजन किया। हर्ष के दरबार में प्रसिद्ध विद्वान बाणभट्ट रहता था, उसने हर्षचरित, कादम्बरी, चण्डीशतक एवं पार्वती परिणय जैसे ग्रंथों की रचना की। कन्नौज का सम्मेलन एवं प्रयाग सभा हर्षवर्धन की श्रेष्ठ सांस्कृतिक उपलब्धियाँ है।

वस्तुनिष्ठ प्रश्न

1. वर्धनवंश किस जाति का था–

(अ) ब्राह्मण (ब) क्षत्रिय **(स) वैश्य** (द) बौद्ध

2. हर्षचरित का लेखक–

(अ) हर्ष **(ब) हरिषेण** (स) मयूर भट्ट (द) बाणभट्ट

3. ह्वेनसांग किस सभा का सभापति बना–

(अ) कन्नौज की सभा (ब) प्रयाग सभा (स) मंत्रीपरिषद (द) इनमें से कोई नहीं

4. ह्वेनसांग की जीवनी का नाम है–

(अ) फो–क्यो–की **(ब) सी–यू–की** (स) लाइफ (द) इनमें से कोई नहीं

5. हर्ष की बहिन का क्या नाम था–

(अ) भाग्यश्री **(ब) राज्यश्री** (स) श्रीदेवी (द) यशोमती

नीचे लिखे प्रश्नों के उत्तर दीजिए:

प्रश्न – हर्ष की कन्नौज सभा के बारे में आप क्या जानते हैं ?

प्रश्न– हर्ष की प्रयाग सभा का उल्लेख कीजिए ?

प्रश्न– हर्ष एवं शशांक के संघर्ष का उल्लेख कीजिए ?

3.8 तकनीकी शब्दावली

12. चतुर्दिक – चारो ओर
13. पुष्पभूति – पुष्यभूति
14. ताम्रभिलेख – ताँबे पर लिखे अभिलेख
15. राजमुद्राभिलेख – राज्य मुद्रा (Seal) पर लिखे अभिलेख
16. शासनाधिकार– शासन का अधिकार
17. मुद्राभाण्ड – मुद्रा (सिक्कों) से भरा मटका
18. चतुर्थ उच्छवास – चौथ अध्याय
19. कामरूप – असम
20. मतैक्य – एकमत न होना
21. विद्यानुरागी – विद्या (शिक्षक) का प्रेमी

3.9 संदर्भ ग्रंथ सूची

1. चटर्जी, गौरीशंकर – हर्षवर्धन, इलाहाबाद, 1938
2. मुकर्जी, आर0के0 – हर्ष, ऑक्सफोर्ड, 1926
3. मजूमदार, आर0 सी0 – दि क्लासिकल एज, बम्बई, 1954

पुसालकर, ए0 डी0 (सम्पा0) – दि एज ऑफ इम्पीरियल कन्नौज, बम्बई 1955

4. पनिक्कर, के0 एम0 – श्री हर्ष ऑफ कन्नौज, बम्बई, 1932
5. शर्मा, बैजनाथ – हर्ष एण्ड हिज टाइम्स, वाराणसी, 1970
6. त्रिपाठी, आर0 एस0 – हिस्ट्री ऑफ कन्नौज, वाराणसी, 1937

3.10 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. मजूमदार, रमेशचन्द्र प्राचीन भारत, दिल्ली, 1973
2. महाजन, वी.डी. प्राचीन भारत का इतिहास, नई दिल्ली, 2008
3. पाण्डेय, विमल चन्द्र प्राचीन भारत का राजनीतिक तथा सांस्कृतिकइतिहास, भाग 2, इलाहाबाद, 1998
4. पाठक, विशुद्धानंद उत्तर भारत का राजनीतिक इतिहास, लखनऊ,1990
5. श्रीवास्तव, के० सी० प्राचीन भारत का इतिहास एवं संस्कृति, इलाहबाद, 2007
6. त्रिपाठी, आर० एस० प्राचीन भारत का इतिहास, बनारस, 1998

3.11 निबंधात्मक प्रश्न

प्रश्न 1. हर्ष की सांस्कृतिक उपलब्धियों का विस्तृत विवरण दीजिए ?

प्रश्न 2. हर्षकालीन प्रशासनिक व्यवस्था या शासन प्रबंध का मूल्यांकन कीजिए ?

प्रश्न 3. हर्ष की दिग्विजय का विस्तृत विवरण दीजिए ?